दारा शिकोह - विरचित

मज्म 'उल् बह्रैन

(समुद्र - सङ्गमः)

जगन्नाथ पाठक

मज्म 'उल् बह्रैन

(समुद्र-सङ्गमः)

दारा शिकोह - विरचित

मज्म 'उल् बह्रैन

(समुद्र-सङ्गमः)

जगन्नाथ पाठक

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान
शिमला

राका प्रकाशन
इलाहाबाद

ISBN 81-88216-39-9

कॉपीराइट :
डॉ० जगन्नाथ पाठक

*

प्रकाशक :
भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान
राष्ट्रपति निवास, शिमला
एवं
राका प्रकाशन
४०ए, मोतीलाल नेहरू रोड
इलाहाबाद-२, फोन : २४६६७९१
बिक्री केन्द्र : राका बुक शॉप
२५ए, महात्मा गांधी मार्ग, सिविल लाइन्स,
इलाहाबाद-१, दूरभाष : २४२११९५

*

प्रथम संस्करण : २००५

*

मुद्रक : केशव प्रकाशन
सिविल लाइन्स, इलाहाबाद

मूल्य : २५०.०० रुपए

Samudra Sangamaḥ by Muhammad Dārā Ṣikoh Rs. 250/=

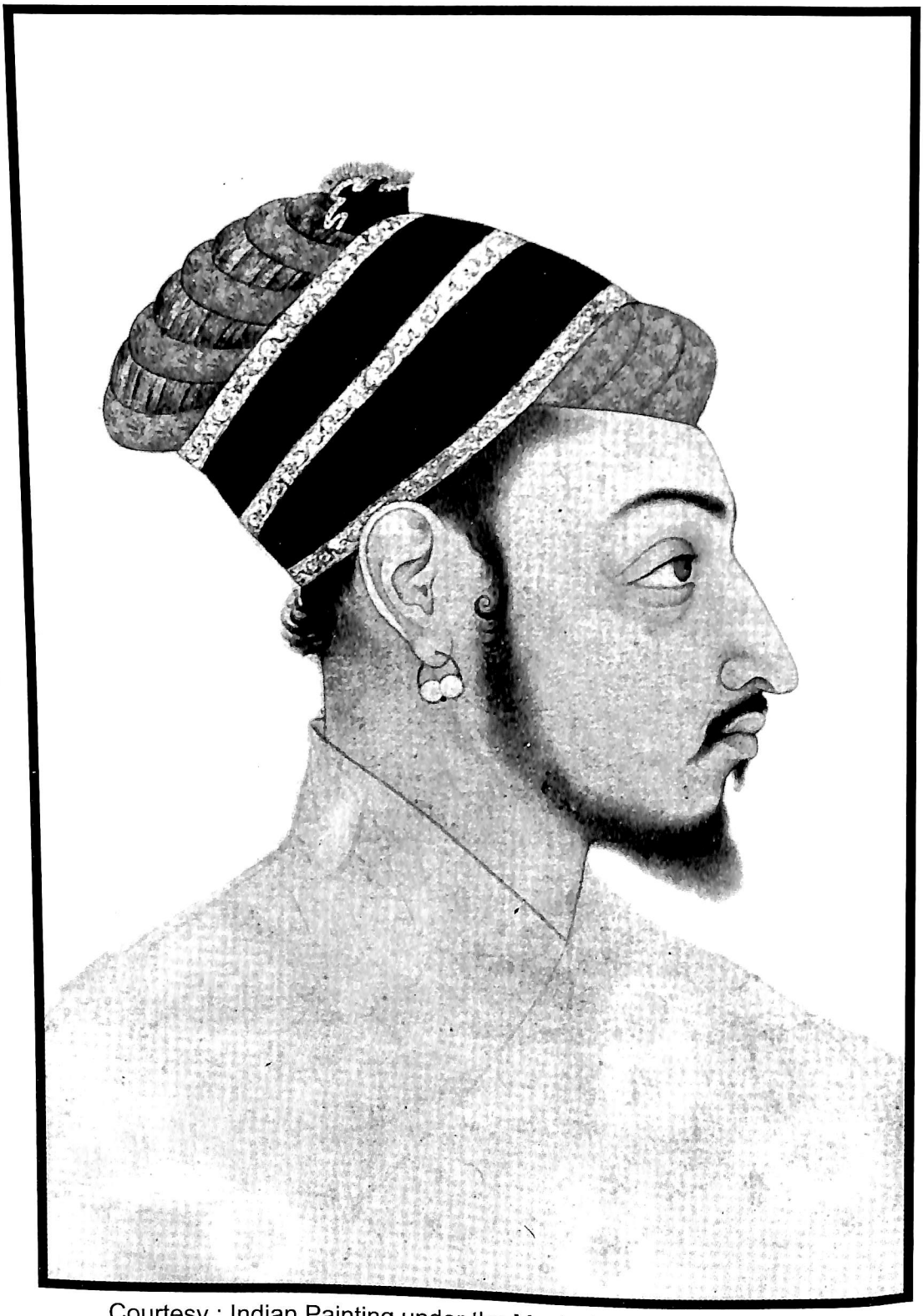

Courtesy : Indian Painting under the Mughals.
XXIX. Portrait of Prince Dara Shikoh, eldest son of Shah Jahan
Painted by Hunhar *c.* A.D. 1650; size 8"x6½".

जिन्होंने
मज्म 'उल् बह्रैन और समुद्र-सङ्गमः
का
निर्माण कर, विश्व के धार्मिक-दार्शनिक इतिहास में
एक सर्वथा नवीन अध्याय जोड़ा
तथा
साम्प्रदायिक सामञ्जस्य के लिए
अपने को अर्पित कर दिया
उन
शाहज़ादा मुहम्मद दारा शिकोह
की स्मृति में

प्ररोचना

मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद दारा शिकोह द्वारा रचित फ़ारसी ग्रन्थ मज्म 'उल् बह्रैन और उसके संस्कृत रूपान्तर समुद्र-सङ्गमः का हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत संस्करण भारतीय धर्म-दर्शन के अध्ययन के क्षेत्र में एक विशेष अभाव की पूर्ति करेगा, ऐसा कहा जा सकता है। बहुत पहले मूल फ़ारसी संस्करण कलकत्ता और तेहरान (ईरान) से प्रकाशित हुए थे और समुद्रसङ्गमः का प्रकाशन भी जतीन बिमल चौधुरी ने किया था; किन्तु प्रस्तुत संस्करण न केवल दोनों ग्रन्थों के हिन्दी-अनुवाद के साथ प्रकाशित किया जा रहा है, अपितु मूल फ़ारसी रचना को नागरी में लिप्यन्तरण करके संस्कृत रूपान्तर को पुणे और बीकानेर की प्रतियों के आधार पर सम्पादन करके प्रथम बार प्रस्तुत करने का श्रेय जगन्नाथ पाठक को जाता है।

दारा शिकोह एक विनम्र जिज्ञासु था। उसकी गूढ़ इस्लाम और उदार भारतीय परम्परा की समझ अपने समय में सूफ़ियों और सन्तों के सत्सङ्ग से विकसित हो चुकी थी। उसने अपनी अल्प वयस् में विद्वानों की सहायता से नाना धर्मों और सम्प्रदायों का अध्ययन किया था। पचास उपनिषदों का फ़ारसी अनुवाद 'सिर्रे अक्बर' दारा शिकोह का महत्त्वपूर्ण अवदान है।

केवल भारत में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में, इन दिनों नाना संस्कृतियों के बीच 'संवाद' की आवश्यकता महसूस की जा रही है। भारत नाना धर्मों, सम्प्रदायों का प्राचीन देश है। विभिन्नता में एकता सबसे बड़ी इसकी विशेषता मानी जाती है। हमारी परम्परा में, बहुत पहले से अनेक चिन्तकों, सन्तों द्वारा सबको भावनात्मक स्तर पर एक सूत्र में जोड़ने का प्रयास होता रहा है। इस दिशा में, दारा शिकोह का यह कहना, नाना धर्मों में परिभाषा-भेद के अतिरिक्त कुछ नहीं, निश्चय ही विचारणीय है। दारा शिकोह के अध्ययन के इस निष्कर्ष के साथ मतभेद हो सकता है; किन्तु उसके उद्देश्य की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अतः दारा शिकोह आज भी

प्रासङ्गिक बन चुका है। यही कारण है कि अब तक उसके व्यक्तित्व-कृतित्व को लेकर साहित्य जगत् में अनेक उपन्यास, नाटक आदि निर्मित होते रहे हैं।

जगन्नाथ पाठक का कुछ समय पूर्व 'दीवाने ग़ालिब' का संस्कृत पद्यानुवाद प्रकाशित हो चुका है। अब दारा शिकोह की फ़ारसी मूल और संस्कृत में रूपान्तरित कृतियों का हिन्दी-अनुवाद और व्याख्यान के साथ प्रकाशित होना एक स्पृहणीय कार्य है। मैं आशा करता हूँ सुधी समाज इस कार्य का स्वागत करेगा।

गोविन्द चन्द्र पाण्डे

अनुक्रम

प्ररोचना

निवेदन xi

भूमिका xv

मज़्म 'उल् बह्रैन १

हिन्दी-अनुवाद ३१

समुद्र-सङ्गमः ६३

हिन्दी-अनुवाद ८७

म०ब०/स०सं० व्याख्या-भाग ११५

परिशिष्ट

दारा शिकोह द्वारा उल्लिखित महापुरुष ११७

शब्दानुक्रमणी तथा नामानुक्रमणी २०३

निवेदन

फ़ारसी 'मज्म 'उल् बह्रैन' और संस्कृत 'समुद्रसङ्गमः' के हिन्दी-अनुवाद-सहित इस संस्करण के प्रकाशनार्थ प्रस्तुत होने के अवसर पर मुझे सहज ही आन्तरिक प्रसन्नता हो रही है। साथ ही, अपने ज्ञान और सामर्थ्य की सीमाओं और इस रचनाद्वय की गम्भीरता के कारण भीतर ही भीतर, विद्वानों के सम्भावित अपरितोष की कल्पना से आशङ्कित भी हूँ।

राजकुमार दारा शिकोह (१६१५-१६५९ ई०) ने अपने लघु जीवन-काल में जिस उच्च आदर्श को लेकर इनका निर्माण किया है उसकी प्रासङ्गिकता आज भी बरक़रार है और प्रत्येक उदारचेता सहिष्णु विचारशील के लिए अब भी वह प्रेरक का काम कर सकता है।

स्व० डॉ० हर्ष नारायण ने अपने एक लेख में लिखा है- "दारा शिकोह के 'मज्म 'उल् बह्रैन' और 'समुद्रसङ्गमः' भी अप्राप्य हैं। ऐसे ग्रन्थों का पुनर्मुद्रण, प्रकाशन और अनुवाद सांस्कृतिक और भावात्मक एकता की सिद्धियों में महत्त्वपूर्ण क़दम होगा। आश्चर्य है कि भारतीय धर्म और दर्शन के इतिहासकार आज भी दारा शिकोह के ग्रन्थ से असुपरिचित हैं!"

मैं यहाँ अत्यन्त विनम्रता के साथ स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मुझमें जिस मूल आधारभूत ग्रन्थ से इस कार्य को सम्पन्न करने की प्रवृत्ति जागरित हुई वह है 'मज्म 'उल बह्रैन' का मूल फ़ारसी और अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ एम० महफ़ूजुल् हक़ महाशय द्वारा सम्पादित और एशियाटिक सोसाइटी, कोलकाता से प्रकाशित संस्करण। हालाँकि तेहरान (ईरान) का संस्करण भी मुझे प्राप्त हुआ, किन्तु मुझे कोलकाता-संस्करण इस कार्य के लिए विशेष उपयुक्त लगा। म०ब० का हिन्दी अनुवाद भी मैंने हक़ महाशय के अंग्रेज़ी अनुवाद के आधार पर किया। खेद है कि मुझे डॉ० अतहर अब्बास रिज़्वी का प्रकाशित हिन्दी-अनुवाद हासिल न हो सका!

अपने इस कार्य में मुझे अनेक ग्रन्थों, जैसे- डॉ० कालिका रञ्जन क़ानूनगो द्वारा लिखित 'दारा शिकोह', विक्रमाजीत 'हसरत' द्वारा लिखित 'दारा शिकूह- लाइफ़ एण्ड वर्क्स्' आदि से विशेष सहायता मिली है। यथास्थान मैंने उन ग्रन्थों के लेखकों का उल्लेख किया है।

म०ब० को नागरी अक्षरों में मेरे द्वारा किए गए लिप्यन्तर को प्रथम दृष्टया आदरणीय मौ० मुहम्मद इर्तेज़ाउद्दीन (सहसरामी) महोदय ने ठीक करने की कृपा की। तत्पश्चात् काशी के स्व० नारायण दास जी की प्रेरणा से फ़ारसी-अरबी भाषाओं के विशेषज्ञ वयोवृद्ध आदरणीय सरस्वती सरन 'क़ैफ' साहब ने आद्योपान्त दुरुस्त करने का कष्ट किया। इसके लिए इन दोनों विद्वानों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। इसके बावजूद मेरे द्वारा किए गए लिप्यन्तर और हिन्दी अनुवाद में अनेक त्रुटियाँ होने की सम्भावना है, इसे मैं विद्वानों से क्षमा-प्रार्थनापूर्वक स्वीकार करता हूँ, साथ ही उनसे संशोधन सुझाने के लिए अनुरोध करता हूँ।

इस कार्य में मेरे प्रेरक पी०के० गोडे महाशय का 'समुद्रसङ्गमः' पर प्रकाशित अंग्रेज़ी लेख भी रहा, जिसके कारण मुझे भाण्डारकर शोध संस्थान, पुणे में सुरक्षित पाण्डुलिपि की छायाप्रति प्राप्त करने में सफलता मिली और अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर की पाण्डुलिपि का उपयोग कर सका। बीकानेर की प्रति के उपयोग में मुझे सहायता दी श्रीगङ्गासिंहजी ट्रस्ट के कोआर्डिनेटर श्रीयुत् ठाकुर दलीप सिंह जी तथा उनके सहयोगी श्री दलपत सिंह ने। एतदर्थ इन दोनों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

मेरे इस कार्य के प्रकाशन की स्वीकृति और मेरे लिए आर्थिक सहयोग प्राप्त कराने के लिए मैं सम्मान्य आचार्य गोविन्द चन्द्र पाण्डे अध्यक्ष, उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला (हि०प्र०) के प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता व्यक्त करूँ ? वस्तुतः इस कार्य को प्रकाशन की स्थिति तक पहुँचाने में उनका विशेष अनुग्रह मेरा संबल रहा।

यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं कि स्वतंत्र भारत में दारा शिकोह के जीवन ने हिन्दी, उर्दू, बॉङ्ला और अंग्रेज़ी के अनेक लेखकों को उपन्यास और नाटक लिखने के लिए प्रेरित किया- जैसे, दारा शुकोह (हिन्दी उपन्यास १९६२ ई०) ले० अवध प्रसाद वाजपेयी, दारा शिकूह (उर्दू उपन्यास, १९६७

ई) ले० क़ाज़ी अब्दुस्सत्तार, स्वप्नभंग (हिन्दी नाटक, १९७० ई०), ले० हरिकृष्ण प्रेमी; गोपाल गान्धी, दारा शिकोह (अंग्रेज़ी पद्य नाटक, १९९३ ई०), और शाहज़ादा दारा शिकोह (बांग्ला उपन्यास का दो खण्डों में हिन्दी अनुवाद, १९९९ ई०), ले० श्यामल गंगोपाध्याय आदि।

इस कार्य में यथासमय मुझे नाना प्रकार से सहायता देने वाले विद्वानों और मित्रों की एक लम्बी सूची है, उनमें से कुछ का यहाँ साभार उल्लेख आवश्यक समझता हूँ–

आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी (उज्जैन)
डॉ० श्री रञ्जन सूरिदेव (पटना)
श्री अरविन्द शर्मा (मोन्ट्रियल, कनाडा)
प्रो० सत्य प्रकाश मिश्र (इलाहाबाद)
श्री ज़फर इफ़्तेख़ार तथा श्रीमती डॉ० फ़राह ज़फ़र (अलीगढ़)
आचार्य विश्वनाथ मिश्र (बीकानेर)
प्रो० शिवकुमार मिश्र (इलाहाबाद)
प्रो० अशोक कुमार कालिया (लखनऊ)
श्री रमेश प्रसाद शुक्ल (इलाहाबाद)
डॉ० मु० हनीफ़ (राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नयी दिल्ली)
श्री उदय शङ्कर तिवारी (इलाहाबाद संग्रहालय)

राका प्रकाशन, इलाहाबाद के श्री राकेश तिवारी की यदि विशेष तत्परता न होती तो इस ग्रन्थ का प्रस्तुत स्वरूप में प्रकाशन न हो पाता। उनके अभ्युदय की कामना करता हूँ।

जगन्नाथ पाठक

३/१४, एम०आई०जी,
आवास विकास कालोनी
योजना–३, झूंसी, इलाहाबाद – २११ ०१९

भूमिका

प्रस्तुत संस्करण

यह ग्रन्थ राजकुमार मुहम्मद दारा शिकोह[१] द्वारा फ़ारसी भाषा में रचित "मज्म 'उल् बहरैन" और उसके संस्कृत रूपान्तर "समुद्रसङ्गमः" का सम्मिलित संस्करण रूप है। इसमें नागरी लिपि में मूल फ़ारसी ग्रन्थ का संयोजन यथासम्भव प्रथम बार हुआ है, जब कि संस्कृत रूपान्तर का प्रकाशन पहले भी हो चुका है। साथ ही, इसमें हिन्दी अनुवाद और विषय के स्पष्टीकरण के निमित्त अपेक्षित व्याख्या-भाग का समावेश भी किया गया है।

"दो समुद्रों का सङ्गम" रूप यह ग्रन्थ दारा शिकोह की, वेदान्त और तसव्वुफ़, दोनों पर समान अधिकार तो व्यक्त करता ही है, साथ ही "उन्हें समन्वित कर एक नई भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठापना" की ओर भी सङ्केतित करता है। आपाततः परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाले हिन्दू धर्म और मुस्लिम धर्म के मूल तथ्यों को एक साथ रख कर, इसमें न केवल उनका तुलनात्मक दृष्टि से आकलन किया गया है, बल्कि उनमें अन्तर्निहित सङ्गति को भी उजागर करने का प्रयास किया गया है। कुछ ऐसा भी नहीं कि एक जागरूक विचारशील अध्येता उन तथ्यों से सर्वथा सहमत हो, तथापि उन दोनों के इस तुलनात्मक अध्ययन के प्रयास के पीछे दारा शिकोह की उस उदार दृष्टि को भी अनिवार्यतः अनुभव किया जा सकता है, जो परम्परा से भारतीय संस्कृति की पहचान मानी जाती रही है, और है।

---

१. शिकोह के स्थान पर 'शुकोह' या 'शिकूह' भी पढ़ा और लिखा जाता है। शिकोह (अर्थात् भय) की अपेक्षा 'शुकोह' (अर्थात् प्रताप/तेज) पाठ समुचित है। 'समुद्रसङ्गमः' में 'महम्मद शुकोह' उल्लिखित मिलता है, किन्तु दारा के एक संस्कृत पत्र में उसने अपना नाम 'दारा शिकोह' लिखा है। डॉ० हर्ष नारायण जैसे विद्वान् ने 'दारा शिकोह' नाम को अधिक प्रचलित होने के कारण प्रश्रय दिया है और हमने भी ऐसा ही किया है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' का उद्घोष वैदिक चिन्तकों/ऋषियों ने किया था और 'एक सत्' (= सत्य) के सम्बन्ध में सुधी लोगों द्वारा बहुत तरह से विचार प्रकट किये जाने के फलस्वरूप काल-क्रम से नाना विचार सम्प्रदायों के रूप लेते गए और एक गन्तव्य की ओर जाने वाले अनेक मार्ग के रूप में स्वीकृत हुए। इसी की प्रतिध्वनि कालिदास के इस पद्य में मिलती है :

बहुधाऽप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे।। (रघु० १०/२६)

(भगवन्! जिस प्रकार गङ्गा की धाराएँ समुद्र में ही जाकर गिरती हैं वैसे ही सिद्धि के हेतु सभी मार्ग, जो शास्त्रों में अलग-अलग बताये गए होने पर भी आप ही तक पहुँचते हैं।)

गन्धर्वराज पुष्पदन्त के इस पद्यार्ध से प्रायः बहुत लोग परिचित ही हैं :

''रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।'' (शिवमहिम्नःस्तोत्र)

(हे ईश्वर! रुचि-वैचित्र्यवश ऋजु और कुटिल, नाना मार्गों से चलने वाले पथिकों के लिए, जलों के लिए समुद्र की भाँति आप ही एक गन्तव्य/मंज़िल हैं।)

प्रस्तुत **'मज्म 'उल् बहरैन'** (म०ब०) का मूल आधार एम० महफ़ूज़ुल् हक़ एम० ए० महाशय द्वारा सम्पादित तथा एशियाटिक सोसाइटी, कोलकाता द्वारा १९२९ ई० में प्रकाशित संस्करण है, जिसका यहाँ नागरी में लिप्यन्तर किया गया है। और, 'समुद्रसङ्गमः'(स०सं०) की मूल आधारभूत मातृका है, जो भाण्डारकर संस्थान, पुणे में सुरक्षित है (पाण्डुलिपि सं० १०४३, १८९१-९५)। सामान्य संस्कृत भाषा की प्रकृति से संस्कृत अनुवाद पारसीक शैली से प्रभावित होने के कारण कृत्रिम होने के साथ ही लिपिकार की ओर से की गई नाना त्रुटियों से ग्रस्त भी है और कहीं-कहीं उसे ठीक-ठीक पढ़ा भी नहीं जाता। फिर भी, यथासम्भव अपनी ओर से, सम्पादकीय सीमा को ध्यान में रखते हुए उसे व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही यहाँ पवित्र

क़ुरआन के उद्धरणों को भी नागरी में लिप्यन्तरित करने का तथा उसके प्राप्त हिन्दी अनुवाद को यथास्थान सम्मिलित करने का प्रयत्न भी किया गया है।

म०ब० का दूसरा संस्करण ईरान के तेहरान से १९५९ में डॉ० सय्यद मुहम्मद रिज़ा द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ। इसमें डॉ० ताराचन्द की अंग्रेज़ी में प्रस्तावना है। एशियाटिक सोसाइटी कोलकाता का संस्करण पांच पाण्डुलिपियों पर आधारित है, जब कि तेहरान का संस्करण मात्र एक पाण्डुलिपि पर।

अच्छा होता कि इस ग्रन्थ में मूल फ़ारसी ग्रन्थ मज्म 'उल् बहरैन का अनेक पाण्डुलिपियों के आधार पर सम्पादन होता, जैसा कि हक़ महाशय ने किया है, किन्तु ऐसा करना मेरी सीमा के बाहर था; किन्तु 'समुद्रसङ्गमः' का अपेक्षित सम्पादन बीकानेर की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में सुरक्षित पाण्डुलिपि के प्राप्त होने से कुछ सम्भव हो सका, इसे यहां 'एक उपलब्धि' कह सकता हूँ।

समुद्रसङ्गमः म०ब० का बहुत कुछ संस्कृत रूपान्तर है। पुणे की पाण्डुलिपि का लेखन पी० के० गोडे महाशय के अनुमान से १६५५ ई. में हुआ था जबकि उसकी प्रतिलिपि ५४-५५ वर्ष बाद, १७०८ में की गई थी। बीकानेर-प्रति का लेखन साहजिहानाबाद (दिल्ली) में हुआ। लिपिकार ने सं १३१४ दिया है। इससे ठीक वर्ष के निर्णय में कठिनाई होती है। लिपिकार अपना नाम 'पं पदनिधान' लिखता है। इसे 'विपद्यनिधान' भी पढ़ा जा सकता है। इससे कवीन्द्राचार्य सरस्वती, जिन्हे शाहजहां ने 'सर्वविद्यानिधान' की उपाधि प्रदान की थी, का लिपिकार होना प्रतीत होता है।

हिन्दी-अनुवाद के कार्य में हक़ महाशय के अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ 'समुद्रसङ्गमः' के छायानुवाद की भी सहायता ली गई है। और, नाना सम्बद्ध ग्रन्थों से सहायता लेकर, व्याख्याओं को भी प्रस्तुत करने में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय सुधी जनों पर छोड़ता हूँ।

दारा शिकोह : व्यक्तित्व

शाहज़ादा सुल्तान मुहम्मद दारा शिकोह मुगल सम्राट शाहजहाँ का ज्येष्ठ पुत्र और सम्राट् अकबर महान् का प्रपौत्र था। उसका जीवन दो भागों में विभक्त था- राजनैतिक और धार्मिक/दार्शनिक। जहाँ अपने राजनैतिक जीवन

में, वह तख़्तेताऊस/मयूर-सिंहासन (= उत्तराधिकार) के लिए संघर्षरत रहा, वहाँ अपने धार्मिक/दार्शनिक जीवन में एक विनम्र जिज्ञासु के रूप में सूफ़ी सन्तों, विद्वानों और मनस्वियों के पास पहुंच कर 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) की जिज्ञासा करता रहा। उसने अपने को एक 'फ़क़ीर' (भिक्षुक) कहा है। दारा के जीवन के दोनों पक्षों पर, वर्षों से विद्वान् लोग मनन-चिन्तन और लेखन करते रहे हैं।

दारा को मुमताज़महल (मृ० १६३१ ई०) ने अजमेर के निकट सागर ताल के परिसर में २० मार्च १६१५, सोमवार की रात, जन्म दिया। अजमेर के सिद्ध सूफ़ी सन्त ख़्वाजा मु'ईनुद्दीन चिश्ती के दरबार में पिता शाहजहाँ ने पुत्र के लिए प्रार्थना की थी, क्योंकि तब तक उनकी दो पुत्रियाँ थीं। उस समय, शाहजहाँ की अवस्था २४ वर्ष थी। दादा सम्राट् जहाँगीर (मृ० १६२७ ई०) ने अपने पुत्र के उत्तराधिकारी का नाम मुहम्मद दारा शिकोह रखा और उसे 'गुले अव्वलीने गुलिस्ताने शाही' अर्थात् 'साम्राज्य के उपवन का प्रथम पुष्प' कह कर स्वागत किया। स्वभावतः उसके जन्मोत्सव को आमोद-प्रमोद तथा धूमधाम से मनाया गया। स्वयं दारा ने अपने एक ग्रन्थ 'सफ़ीनत-उल-औलिया' में ख़्वाज़ा मु'ईनुद्दीन चिश्ती के जीवन की चर्चा के प्रसंग में अपने जन्म-काल के सम्बन्ध में इसका उल्लेख किया है।

शाहजहाँ ने दक्षिण में, १६२३ ई० में अपने पिता से विद्रोह कर दिया था और मुमताज़ और अपनी सन्तानों के साथ भटकता रहा। अन्ततः उसने शान्ति का प्रस्ताव किया तथा दारा और औरंगज़ेब को बन्धक के रूप में भेजने पर राज़ी हुआ। शुज़ा पहले से ही जहाँगीर के पास था। जहाँगीर की मृत्यु के बाद शाहजहाँ को राजसिंहासन पर बैठने का अवसर मिला। तब उसके राजकुमार दरबार में लाए गए।

"दारा ने राजसिंहासन के सम्मुख प्रणाम किया और रीत्यनुसार 'नज़र' और 'निसार' भेंट किया। एक हज़ार रुपये का दैनिक, उसके अनुदान में दिया गया। इसके अतिरिक्त दो लाख नकद रुपये उसे प्राप्त हुए जो अभिषेक के समय के राजकीय दान में उसके हिस्से के थे।" दारा की शिक्षा की व्यवस्था किन्हीं मुल्ला अब्दुल लतीफ़ सुल्तानपुरी की देख-रेख में हुई। सम्भवतः, मुग़ल राजकुमारों के समान, क़ुरआन, फ़ारसी काव्य और तैमूर का इतिहास उसके अध्ययन के विषय थे। उसके सुलेख तथा सुन्दर पत्र-लेखन के लिए

अबुल फ़ज्ल को लगाया गया। फ़ारसी कवियों में उसकी रुचि के विषय थे रूमी और जामी। कहते हैं कि दारा आजीवन विद्यार्थी रहा।

शाहजहाँ ने उसे दरबार में रखा, फिर भी वह शासन के कर्त्तव्य की जानकारी तथा अनुभव हासिल नहीं कर सका। वह अपने शासन के क्षेत्रों में स्वयं नहीं जाकर अपने अधिकारियों के माध्यम से ही शासन करता रहा।

दारा का विवाह नादिरा बेगम के साथ हुआ। उससे उसकी कई सन्तानें हुईं।

दारा को शासन के लिए न केवल इलाहाबाद का सूबा, बल्कि पंजाब और गुजरात के भी सूबे मिले। बाद में उसे गुजरात के भार से मुक्त कर, बदले में काबुल और मुल्तान मिले। बंगाल और उड़ीसा के सूबेदार शाहज़ादा शुजा की बिहार के सूबे पर भी दृष्टि थी, किन्तु वह दारा को दे दिया गया। कहते हैं कि औरंगज़ेब ने अपने अन्य भाइयों को मिला लिया और राजधानी पर धावा बोल दिया। दारा शिकोह पर काफ़िर (विधर्मी) होने का आरोप लगा कर उसने ३० अगस्त १६५९ को दारा का वध करा दिया और शाहज़हाँ के जीते जी सम्राट् बन बैठा। इस प्रकार दारा शिकोह अपने राजनैतिक जीवन में असफल सिद्ध हुआ। "चाहे इलाहाबाद की सूबेदारी हो, चाहे क़ंधार के संग्राम में मुग़ल सेना का सेनापतित्व और चाहे उत्तराधिकार के लिए युद्ध, सफलता उसे कहीं नहीं मिली।" किन्तु वह अपने कृतित्व और आध्यात्मिक जीवन के लिए एक स्मरणीय पुरुष बन गया। कहते हैं कि "जिस दिन दारा शिकोह मारा गया उस दिन हलाहल जीता और अमृत हार गया।"

दारा के धार्मिक/दार्शनिक जीवन पर गहरा प्रभाव किसने डाला, इस प्रश्न का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं है, फिर भी कारक हेतुओं में उसके परदादा सम्राट् अकबर की उदारवादी दृष्टि के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। वैसे सभी मुग़ल सम्राट् सूफ़ी सन्तों, जैसे मु'ईनुद्दीन चिश्ती आदि के प्रति आस्थावान् थे, किन्तु उनमें अकबर का अपना वैशिष्ट्य माना जा सकता है। उनका 'तौहीदे इलाही' का प्रवर्तन क्या था? क्या वह राजनैतिक था अथवा धार्मिक? भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों पर शासन के लिए जब तक पक्षपातरहित शासन-पद्धति अपनाई नहीं जा सकती थी तब तक सुचारु शासन का प्रवर्तन कठिन था। दूसरे, हिन्दू चेतना बाहर से आये आक्रमणकारियों के अत्याचारों और बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन आदि को लेकर

बहुत आहत हो चुकी थी। उसे उदारता और सहानुभूति से भरे शासक की आवश्यकता थी। ये दोनों ही बातें सूफ़ी सन्तों के माध्यम से प्रचारित हो सकीं, क्योंकि उन पर हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही समान श्रद्धा रखते थे। सम्राट् अकबर ने ऐसे कुछ प्रयोग किए, जिनसे दोनों क़ौमों की परस्पर मैत्री स्थापित हो सके। एक तो अकबर ने इस्लाम के विद्वानों के बीच परस्पर विचार-विमर्श की प्रवृत्ति को जगाने और स्वयं उनके विचार-विमर्श से धर्म के सम्बन्ध में अनुकूल निष्कर्ष निकालने के लिए फ़तेहपुर सीकरी में एक इबादत-ख़ाना (प्रार्थना-गृह) स्थापित किया और सभापति का पद-भार स्वयं ग्रहण किया। कहते हैं कि अन्य धर्मों की ओर अकबर का झुकाव बढ़ने लगा। जैसे, वह सूर्य को प्रणाम करने लगा। "उसने सब धर्मों का सामञ्जस्य करके एक व्यापक धर्म बनाने की कोशिश की। उसने लिखा- 'जिस साम्राज्य में, जिसका एक शासक हो, यह अच्छा नहीं है कि प्रजा एक दूसरे के विरोधी मतों में बँटी रहे। इसलिए, हमें उन सब को मिला कर एक करना चाहिए। किन्तु, इस प्रकार कि वे एक भी हो जायें और अनेक भी बने रहें।'

ज़ाहिर है कि उस समय के कट्टर लोगों को अकबर का मत मान्य नहीं था। बदायूनी उसका प्रबल विरोधी था, जबकि अबुल फ़ज़्ल उसका समर्थक।

यहाँ उल्लेखनीय है कि अकबर ने हिन्दुओं और मुसलमानों के सामान्य उपयोग के लिए ईश्वर के चिन्तन के लिए काश्मीर में एक विशाल भवन बनवाया था और अबुल फ़ज़्ल द्वारा लिखित पंक्तियाँ लिखवाई थीं, जिनका आशय था-

"हे ईश्वर, जिस घर में देखता हूँ, सब तुमको ही ढूँढ़ते हैं और जिसके मुँह से सुनता हूँ, तेरी प्रशंसा सुनता हूँ। मुसलमान और अन्य धर्म वाले यही कहते हैं कि तू एक है और तेरे समान कोई दूसरा नहीं है। मस्जिद में तुझे ही लोग स्मरण करते हैं और तेरे लिए ही शंख बजाते हैं। सब तुमको स्मरण करते हैं और तेरा उनमें पता नहीं हैं। मैं कभी मन्दिर में जाता हूँ और कभी मस्जिद में। तुझको ही मैं घर-घर ढूँढ़ता हूँ। जो तेरे सच्चे सेवक हैं, उनके लिए इस्लाम और ग़ैर इस्लाम से कोई झगड़ा नहीं है। प्रत्येक धर्म उनके अनुयायियों के सन्तोष और समाधान मात्र के लिए है।. . ."

मुग़ल वंश में अकबर के बाद, दारा शिकोह ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक एकता को महत्त्व दिया और अकबर से कुछ अलग हट कर

अपना निर्णय लिया। क़ानूनगो महोदय ने उसके अपने निर्णय को इन शब्दों में प्रकट किया- "दारा को बोध हुआ कि किसी नवीन धर्म का विकास करना निरर्थक होगा जो हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों के लिए समान रूप से अस्पष्ट और अस्वीकार्य होगा। वह इसका कभी विचार न कर सका कि इस्लाम के चक्र से बाहर निकल कर वह प्रेम और मैत्री भाव से मनुष्य मात्र का आलिङ्गन कर सके। इस्लाम के हृदय स्थल में ठहर कर ही प्रतिद्वन्द्वी सम्प्रदायों के लिए वह समान मिलन-स्थल की खोज करना चाहता था। उसने निश्चय किया कि मुहम्मद के प्रति वह अपनी निष्ठा को स्थिर रखेगा और साथ-साथ एकता और शान्ति के उदार-हृदय अभिवर्धक का कार्य करेगा और संसार की उन्नति, संस्कृति और सभ्यता की आत्मा से इस्लाम को संयुक्त करेगा। इस्लाम की दीक्षा के मार्ग को उसने ग्रहण किया और अपने पर्याप्त अवकाश को उसने धर्म के तुलनात्मक अध्ययन के निमित्त अर्पित कर दिया।"

दारा शिकोह के दूसरे विचारक बिक्रमाजीत हसरत मानते हैं कि दारा ने क़ुरआन और हदीस, दोनों का अध्ययन किया, किन्तु उसने परम्परागत पद्धति की व्याख्याओं को नहीं स्वीकारा। उसकी इस बौद्धिक उन्नति के पीछे मुल्ला अब्दुल लतीफ़ का योगदान था। आरम्भ में दारा ने तसव्वुफ़ (सूफ़ीज़्म/ब्रह्मज्ञान) के ग्रन्थों का अध्ययन किया। उसका विस्तृत अध्ययन सिर्रे-अक्बर की भूमिका, सफ़ीनतुल औलिया, रिसाल:-ए-हक़नुमा और दूसरे ग्रन्थों में दिए गए उद्धरणों से विदित होता है। यह तथ्य यहाँ केवल पचास उपनिषदों के फ़ारसी अनुवाद "सिर्रे अक्बर" की 'भूमिका' के इस अंश से विदित किया जा सकता है- "उसने (दारा ने) तौरात, इंजील, ज़बूर और अन्य ग्रन्थों पर दृष्टि डाली, परन्तु अद्वैत का प्रवचन उनमें भी गूढ़ था।"

दारा की जिज्ञासा ने उसे अनेक महान् सूफ़ी विचारकों और साधकों तथा बाबा लाल बैरागी जैसे साधु-सन्त के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। इसी 'भूमिका' में दारा ने अपनी कश्मीर-यात्रा में सूफ़ी सन्त मुल्ला शाह के शिष्य होने की बात कही है और अपनी जिज्ञासा-वृत्ति की भी चर्चा की है। उसका कुछ ईसाई पादरियों के साथ भी सम्पर्क हुआ।

दारा ने अपने दोनों ग्रन्थों, सफ़ीनतुल औलिया और सकीनतुल औलिया, में अनेक सूफ़ी सिलसिलों के सन्तों की चर्चा की है। मियाँ मीर

(मृत्यु १६३५) और मुल्ला शाह बदख़्शानी (मृत्यु १६६१) की तो उसने विशेष चर्चा की है और उनके विशेष प्रभाव से वह क़ादिरी सिलसिले में दीक्षित भी हुआ। इस तथ्य का संकेत उसके 'रिसालै हक़नुमा'' में मिलता है- ''यह फ़क़ीर दारा शिकोह उपासकों के उस वर्ग से सम्बन्ध रखता है, जो स्वाभाविक रूप से ईश्वर की ओर आकृष्ट हैं. . . वह ईश्वरत्व के मर्मों/गूढ़ार्थों की ओर सन्तों और ईश्वर के मित्रों की कृपा से आया, तब वह गुरुओं के समाज से लाभान्वित हुआ और उनकी शिक्षाओं के सत्य की जिज्ञासा की।... एक रात उसने अन्तःप्रेरणा प्राप्त की कि दिव्यता तक पहुँचने का सर्वोत्तम मार्ग क़ादिरी सिलसिला है।''

अरब में पैगम्बर हज़रत मुहम्मद द्वारा इस्लाम का प्रवर्तन हुआ। ईसा की सातवीं शताब्दी के आरम्भ में उसका फैलाव हुआ। उसके अन्तर्गत शाम, फिलिस्तीन, मिस्र, ईरान, स्पेन और तुर्किस्तान आ गए। हज़रत मुहम्मद के बाद ख़लीफ़ाओं- अबू बक्र, उमर, उसमान और अली के युग में यह विस्तार हुआ। इस्लाम में एक ईश्वर पर विश्वास (तौहीद) और नमाज़ को प्रश्रय मिला। इसमें बहुदेववाद का प्रबल विरोध था। आरम्भ में कुछ सम्प्रदाय इसमें विकसित हुए, जैसे ख़ारिजी, मुरीजी, शिया और क़ादिरी। सभी ख़लीफ़ा शासन सम्बन्धी बाह्य झंझटों के बाद भी ''अपनी शुद्धहृदयता, कर्तव्यशीलता, त्याग और धैर्य के लिए विख्यात रहते आये।'' बाद में इस प्रकार के उच्च आदर्शों का क्रमशः क्षरण होता गया। धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन और अनुशीलन की प्रवृत्ति विकसित हुई। क़ुरआन और हदीस के भाष्य रचे जाने लगे। शासकों के साथ समन्वय के उद्देश्य से धर्माध्यक्ष के रूप में मान्यता प्राप्त लोग-शेख़ और उलेमा फ़तवे देने लगे। कहते हैं कि ऐसी स्थिति में सूफ़ी मत का आरम्भ हुआ। सूफ़ियों ने अपने को इनसे बचाये रखा।

सूफ़ियों का जीवन प्रदर्शन से रहित और सादगी से भरा होता था। अधिकतर वे फहनावे के रूप में मोटे ऊनी वस्त्र धारण करते थे। वे 'निर्धन' और 'निष्काम' भी हुआ करते थे। ये लोग परमेश्वर की उपलब्धि को ही अपना एक मात्र ध्येय मानते थे और इस प्रकार धन-वैभव अथवा अपने गृह-परिवारादि के प्रति उदासीनता का भाव रखते हुए उसी के ध्यान और चिन्तन में सदा लगे रहते थे। परमेश्वर के साथ निर्बाध मिलन तथा उसके प्रति सच्चे अनुराग में ही कालयापन करना उनके जीवन का सर्वोच्च आदर्श था और

इसके अतिरिक्त सभी बातों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा करना उनके लिए स्वाभाविक हो गया था।

सूफ़ियों की धारणा को लेकर यह कहा जाता है कि उन्हें "इस बात में भी पूर्ण विश्वास था कि जिन वाणियों को हज़रत मुहम्मद ने परमेश्वर के यहाँ से प्राप्त किया था, वे उनके साथ दो भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट हुई थीं, जिनका संग्रह 'क़ुरआन शरीफ़' में किया गया और वे इसी कारण "इल्मे सफ़ीना' अर्थात् 'ग्रन्थ निहित' ज्ञान कहलाती हैं और दूसरी वे हैं, जो रसूल के हृदय-पट पर अंकित हो गयी थीं और जिन्हें इसी कारण, 'इल्मे सीना' या 'हृदय-निहित ज्ञान' कहा जाता है।. . . सूफ़ी लोग इन बातों को हज़रत मुहम्मद की कतिपय उक्तियों में से ढूँढ़ निकालने का प्रयास करते हैं और इन्हें ही वास्तविक सत्य का नाम देकर प्रायः कहा करते हैं कि रसूल ने इन्हें अपने हृदय में रहस्य के रूप में सुरक्षित रख छोड़ा था।"

आरम्भ में, एक तो बाहरी प्रभाव, दूसरे आन्तरिक प्रेरणा से तसव्वुफ़ या सूफ़ीमत उत्प्रेरित हुआ। तब सूफियों ने पैग़म्बर मुहम्मद के जीवन और उपदेशों में रहस्यवादी तत्त्वों पर ध्यान केन्द्रित किया और उन्होंने क़ुरआन की शाब्दिक व्याख्या की अपेक्षा तथाकथित रहस्यवादी अथवा गूढ़ व्याख्या को प्रश्रय दिया। उन्होंने क़ुरआन की कुछ 'आयतों' को मुख्य आधार बनाया, उनमें से एक, जैसे,-

"अल्लाह आकाशों और धरती का प्रकाश है। उसके प्रकाश की मिसाल ऐसी है जैसे एक ताक़ हो जिसमें एक चिराग़ हो। वह चिराग़ एक फ़ानूस में हो। वह फ़ानूस ऐसा हो मानों वह चमकता हुआ तारा है। वह (चिराग़) जैतून के एक बरकत वाले वृक्ष (के तेल) से प्रदीप्त किया जाता हो, जो न पूर्वी हो और न पश्चिमी, जिसका तेल भड़का चाहता हो, यद्यपि आग उसे न लगी हो। इस प्रकार प्रकाश-पर-प्रकाश (बढ़ने के सभी साधन संचित हो गए हों), अल्लाह अपने प्रकाश की ओर जिसे चाहता है मार्ग दिखाता है। और अल्लाह लोगों के लिए मिसालें बयान करता है, और अल्लाह हर चीज़ का जानने वाला है।" (२४ अन-नूर ३५)

सूफ़ियों के कई सिलसिले विकसित हुए, उनमें क़ादिरिया सिलसिले से दारा शिकोह जुड़ गया, हालाँकि चिश्तिया सिलसिले से, उसके पूर्वज जुड़े हुए थे। कहते हैं कि भारत में यह सम्प्रदाय अपने मूल प्रवर्तक अब्दुल क़ादिर

ज़िलानी की मृत्यु (११६५ ई०) के लगभग ३०० वर्ष बाद स्थापित हुआ। भारत में इसके प्रचारक सैयद मुहम्मद ग़ौस 'वाला पीर' थे। कहते हैं कि "इस सम्प्रदाय के मानने वाले भाव-स्वातन्त्र्य के समर्थक थे तथा सर्वप्रथम इन लोगों ने धर्म में दार्शनिक तर्क-प्रणाली का प्रयोग प्रारम्भ किया।"

इसी परम्परा में मियाँ मीर (१५५०-१६३५ ई०) हुए। उनके उत्तराधिकारी मुल्ला शाह बदख़्शानी थे। शाहज़ादा दारा शिकोह ने इनका शिष्यत्व ग्रहण किया। वह अपने पिता के साथ पहले मियाँ मीर से दो बार मिला था। बाद में उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्य मुल्ला शाह से उसने दीक्षा ली।

जैसा कि दारा शिकोह ने अपनी 'सिर्रे अक्बर' की 'भूमिका' में स्वीकार किया है, क़ादिरिया सम्प्रदाय के अपने गुरुओं के सम्पर्क से उसकी आध्यात्मिक उपलब्धि के और आत्ममन्थन के मार्ग खुले तथा अनेक मुस्लिम और हिन्दू सन्तों के साथ विचार-विमर्श में वह प्रवृत्त हुआ। इसका ही कुछ प्रभाव था कि वह इस्लामिक रहस्यवाद और हिन्दू दर्शन के बीच मिलन-बिन्दुओं की खोज में प्रवृत्त हुआ। वह तसव्वुफ़ और दूसरे धर्मों के रहस्यवादी निकायों की ओर प्रवृत्त हुआ। उसने संरक्षण देकर विद्वान् पण्डितों, सूफ़ियों और ईसाई पादरियों को एकत्र किया। उसने संस्कृत भाषा का अध्ययन और वाराणसी के पण्डितों की सहायता से उपनिषदों, योगवासिष्ठ और भगवद्गीता का अनुवाद किया।

हसरत महोदय के अनुसार, यह नहीं सोचना चाहिए, जैसा कि बहुत लोगों ने दावा किया है, कि दारा शिकोह का ब्रह्म-विद्या सम्बन्धी दृष्टिकोण और उसका हिन्दुत्व के प्रति झुकाव राजनैतिक उद्देश्य से प्रेरित था, उसने उत्तराधिकारी के रूप में दिल्ली के अत्यधिक लोभनीय सिंहासन के लिए घोर प्रयास किया, उन कठिनाइयों पर विजय पाने के लिए, जिन्हें उसके पूर्वाधिकारियों ने उसे वसीयत के रूप में दे रखा था। हिन्दू धर्म की ओर उसका झुकाव अकबर महान् की अपेक्षा, भिन्न दृष्टिकोण से था। वह अन्वेषक/जिज्ञासु था। उसके हृदय में एक प्रबल ज्ञान-पिपासा थी।

आरम्भ में दारा ने धार्मिक रहस्यवाद की ओर प्रवृत्त होकर सूफ़ियों के विषय में अध्ययन को प्रश्रय दिया और क्रमशः "ब्रह्म-विज्ञान की पारम्परिक प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए वह अपने आन्तरिक हर्षातिरेक और

अनिर्वचनीय के प्रति उत्कट आकाङ्क्षा अभिव्यक्त करता है। सामान्यतः निरूपण/प्रतिपादन का ढंग सहजानुभूत है और उसके विचार की प्रवृत्ति तत्त्वतः सर्वेश्वरवादात्मक है।''

सूफ़ी सन्तों की जीवनियों पर लिखे ग्रन्थों द्वारा दारा ने धर्म के मार्ग में एक सच्चे पथिक के रूप में चलना आरम्भ किया और क्रमशः इस्लाम के गुह्य पक्ष की ओर प्रवृत्त हुआ। मानवीय चेतना के स्तरों- आलमे नासूत (भौतिक स्तर), आलमे मलकूत/आलमे अर्वाह (चित् जगत् या आत्म जगत् का स्तर), आलमे जबरूत (आनन्द स्तर) और आलमे लाहूत (सत्य जगत् या दिव्यता का स्तर) का वर्णन उसने अपने ''रिसालः-ए-हक़नुमा'' में किया। हसरत महाशय का कहना है कि उसके पूर्व के ग्रन्थ हिन्दू सिद्धान्त के प्रति उसके सम्मान को प्रकट नहीं करते हैं। जैसा कि उसके कथन से विदित होता है- ''पवित्र पैग़म्बर के आडम्बरहीन अभ्यासों, ध्यानों, घूमने, कार्य करने की प्रक्रिया के बाल बराबर भी फ़र्क़ नहीं।''

धीरे-धीरे दारा अपने अध्ययन-चिन्तन, अभ्यास के बहुत से स्तरों को पार करता रहा, क्योंकि आध्यात्मिक विकास के लिए रहस्यवादी ध्यान, प्रार्थना और अन्तर्वीक्षा में निपुण होने के लिए वह इन्हें आवश्यक मानता था।

तब उसने नाना धर्मों का अध्ययन किया। ज्ञान और सत्य के लिए एक अतर्पणीय प्यास के साथ उसने इन्हें उपलब्ध करने का प्रयास किया। सभी सम्प्रदायों के मनीषियों को उसने संरक्षण दिया। उसके यहाँ प्रत्येक जाति- मुस्लिम, हिन्दू, क्रिश्चियन और यहूदी आदि के सन्त, धर्म-तत्त्वज्ञ, दार्शनिक, कवि और रहस्यवादी थे। उसकी संस्कृत के अध्ययन के साथ, वेदान्त और योग-दर्शन में गहरी अभिरुचि हुई। तब काशी के योग्य पण्डितों से भारतीय चिन्तन के रहस्य सीखे और योगियों और संन्यासियों के साहचर्य में वह योगाभ्यास में प्रवृत्त हुआ।

हसरत महाशय का मानना है कि भारतीय चिन्तन में जो सर्वोत्तम था उसके ज्ञान के लिए, सत्य के लिए उसने नौ वर्ष बिताये। फलतः उसका धार्मिक दृष्टिकोण विशाल से विशालतर होता गया। उसके ध्यान में वैश्विक भाईचारे का नया विचार अवतरित हुआ। इस अवधि में मज्म 'उल् बह्रैन / समुद्रसङ्गमः प्रकाश में आया।

रिज़्वी महाशय ने अपने ग्रन्थ हिस्ट्री ऑफ सूफ़ीज्म (द्वितीय) में सूचित किया है कि मज्म 'उल् बह्रैन से पहले शेख़ अब्दुल क़ुद्दुस गंगोही (१५३६ ई०) ने "रुश्दनामा" लिखा था, जिसमें नाथ-सम्प्रदाय की पारिभाषिक शब्दावली और द्वैताद्वैत-विलक्षणवाद तथा सूफ़ीमत की पारिभाषिक शब्दावली और वहदतुल वुजूद की तुलना की थी। दारा शिकोह इससे परिचित नहीं था। रिज़्वी महाशय का यह भी कहना है कि "रुश्दनामा" की तुलना में दारा शिकोह की रचना में गहराई और तर्क-सङ्गतता की कमी है, वह नीरस तुलनात्मक सारणियों/तालिकाओं की सूची लगती है। यहाँ यह भी सूचनीय है कि डॉ० रिज़्वी और एस० ज़ैदी ने रुश्दनामा का हिन्दी अनुवाद 'अलखबानी' नाम से अलीगढ़ से १९७० ई० में प्रकाशित किया था।

दारा शिकोह पर, उसकी शुद्धहृदयता पर परम्परावादी लेखकों ने नाना आरोप लगाये और उसे 'विधर्मी' सिद्ध करने और उसका अन्त कराने में सफल हुए, किन्तु इतना कहा जा सकता है कि दारा के मन में इस्लाम के प्रति, जैसा कि उसके ग्रन्थों की 'प्रस्तावनाओं' से विदित होता है प्रगाढ़ आस्था थी। उसने अल्लाह, पैग़म्बर, उनके साथियों और वंशजों की प्रार्थना की है। क्या यह इसका प्रमाण नहीं कि वह अपने धर्म के प्रति दृढ़ आस्थावान् था? उसने ध्यान में एक विलक्षण आदर्शवाद को रख कर युग की हठधर्मिता से धर्म की आत्मा को मुक्त करने का प्रयास किया है।... अपने निजी विश्वास के मौलिक सिद्धान्तों के सतही अनुपालन को कभी अस्वीकार न करते हुए, खुल कर दूसरे धर्मों के विचार स्वीकार किए और सबके साथ शान्ति/सुल्हेकुल की पॉलिसी अख्तियार की।

यह आवश्यक नहीं कि हम उसके प्रत्येक विचार और तर्क से सहमत हों, उसकी विवेचनाओं को सही मानें, फिर भी दारा की मूल प्रवृत्ति में जो एक सहज विश्वजनीनता लक्षित होती है उसका निषेध नहीं किया जाना चाहिए।

दारा के आध्यात्मिक क्रियाकलाप और चिन्तन

हम कह चुके हैं कि दारा के मन में इस्लाम के प्रति गहरी आस्था थी। वह पवित्र क़ुरआन और ह० मुहम्मद की शिक्षाओं से तो प्रेरित था ही, साथ ही, इस्लाम के अङ्गीभूज सूफ़ी-सिद्धान्तों के प्रति आकृष्ट हुआ। उसने अपनी पुस्तक 'रिसालै हक़नुमा' में ज़ोर देकर लिखा है- "यह अवश्य ज्ञात होना चाहिए कि जो कुछ इस 'रिसाले' में लिखा है और पैग़म्बर द्वारा अङ्गीकृत

क्रियाओं, ध्यान-विधियों और बैठने, चलने, फिरने और कार्य करने की शैलियों में बाल बराबर भी अन्तर नहीं है।" दारा ने अपनी पुस्तिका (रिसालै हक़नुमा) को "सूफ़ी सम्प्रदाय के प्रमाण-ग्रन्थों का सार" कहा है।

योग पर दारा के विचारों के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए डॉ० क़ानूनगो का अनुमान है कि दारा को संन्यास की अपेक्षा नैतिक त्याग अधिक पसंद था। उसकी सम्मति में "ईश्वर का स्मरण न करना सांसारिकता है। वेषभूषा से या पुत्रों तथा स्त्रियों के होने से कोई सम्बन्ध नहीं है।" उसके अनुसार, "उसका मार्ग प्रसाद का मार्ग है, न कि ताप या प्रयास का।" वह यह कहता है- "लेखक के सम्प्रदाय के अनुशासन में, अन्य सम्प्रदायों में विहित क्रियाओं के विपरीत, कोई वेदना और कष्ट नहीं है. . . इसमें कोई तपश्चर्या नहीं है, प्रत्येक वस्तु सरल, दयापूर्ण है- वह ईश्वर का स्वतन्त्र उपहार है। यह प्रेम, स्नेह, आनन्द और सुविधा का मार्ग है।"

दारा क़ादिरिया था और क़ादिरिया-सम्प्रदाय के महान् सूफ़ी-सन्त मियां मीर पर उसकी श्रद्धा थी। 'अल्लाह' के नाम-जप को लेकर बहुत ही मन्द गति से मन ही मन जप का वह समर्थन करता था।

डॉ० क़ानूनगो ने दारा के 'अद्वैतवाद' के सम्बन्ध में बहुत उपयोगी और कुछ विस्तृत चर्चा की है। वे लिखते हैं- "इस्लाम में सूफ़ी अद्वैतवादी हैं और तौहीद या एकत्व-प्राप्ति उनका उद्देश्य है। ईश्वर के एकत्व का पूर्ण ज्ञान करने के बाद, ईश्वर के एकत्व का साक्षात्कार करना ही तौहीद है। . . .ख़ुरासान का प्रसिद्ध सन्त अबु सईद फ़ज़्लुल्लाह कहता है- 'ईश्वर को प्राप्त करने के लिए अनेक मार्ग हैं, परन्तु मार्ग की लम्बाई केवल एक डग है। अपने बाहर एक डग रखो और तुम ईश्वर को प्राप्त हो जाओगे।' अपनेपन से बाहर निकल जाना (फ़ना) यह साक्षात्कार करना है, कि अपनेपन का अस्तित्व नहीं, और सिवाय ईश्वर के किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं (तौहीद)।"

तौहीद का सिद्धान्त दारा का, आजीवन अध्ययन का विषय बना रहा। ज्ञान और ध्यान द्वारा इसका पूर्ण साक्षात्कार उसके अध्यात्मवाद का उद्देश्य बन गया।

"सफ़ीनतुल् औलिया" में दारा लिखता है-

"अपने ही कर्मों और क्रियाओं द्वारा अपना उद्देश्य प्राप्त करने की मुझको कोई आशा नहीं है। हे ईश्वर, मेरा एकमात्र आश्रय तेरी दया है।"

एकेश्वरवाद (तौहीद) के सिद्धान्त को जानने के लिए अपने युग के अनेक सन्तों की शरण में जाकर उनके प्रवचन सुनने की उसकी उत्कण्ठा बहुत बढ़ गई, हालांकि उसने मौलाना शाह के आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन की सहायता से ध्यान द्वारा 'एकत्व' का अनुभव किया।

डॉ० क़ानूनगो का मानना है कि 'रिसालै हक़नुमा' "अद्वैत के उन्माद की अवस्था में लिखा गया। उन्हीं के शब्दों में, देखें-

(१) इस विश्व में तुझसे कोई अपरिचित नहीं है; जिस किसी पर तेरी छाया पड़ जाती है, वह स्वयं तू बन कर तेरे सम्मुख उपस्थित होता है।

(२) हे मनुष्य! तू प्रत्येक स्थल पर ईश्वर की खोज करता है, परन्तु वास्तव में तू ही ईश्वर है और इस अवस्था में उससे भिन्न है। यह तेरी खोज सागर के लिये बूँद की खोज के यथार्थतः समान है, जबकि वह सागर के जल में पहले ही से वर्तमान है।

पुनः, डॉ० क़ानूनगो के अनुसार, 'अनेकत्व' में 'एकत्व' के नियमानुसार समझा हुआ क़ुरआन का निश्चल एकेश्वरवाद दारा के ईश्वरवाद की कुंजी है। मुसलमान के हृदय में एक से अधिक के लिए कोई स्थान नहीं है।. . . मुसलमान का यह धर्म है कि 'जिहाद' (धर्म युद्ध) करता रहे- अन्दर की ओर अपनी नीच प्रकृति (नफ़्स) के विरुद्ध और बाहर की ओर अन्यों से, जो ईश्वर का एकत्व नहीं मानते हैं।. . . (किन्तु) सूफ़ी प्रेमी है।. . . वह अपने प्रिय के द्वार पर अधीर होकर खटखटाता है और चिल्लाता है- "मैं हूँ।" परन्तु कोई उत्तर नहीं प्राप्त होता है। प्रवेश नहीं मिलता है जब तक कि प्रेमी अपने आपको नहीं भूल जाता है और दीन-भाव से नहीं कहता है- "तू है।". . . 'मैं' और 'वह' में, "एक" और "अनेक" में भिन्नता सूफ़ी के लिए सबसे गम्भीर समस्या है।. . . अतः आत्मनिर्दाहक प्रेम द्वारा सूफ़ी इस संघर्ष का अन्त कर देता है। अन्त में उसको इस सत्य का साक्षात्कार होता है कि 'वह मैं हूँ।'

. . . अपनी आध्यात्मिक दिव्य-दृष्टि से सूफ़ी वह रहस्य देखता है जिसको जन साधारण नहीं देखते हैं और वह जगत् को घोषित करता है- "धर्म तो अनेक हैं, परन्तु ईश्वर एक ही है; मार्ग भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु उद्देश्य एक ही है।" (निकल्सन का 'इस्लामी रहस्यवाद का अध्ययन, पृ० २३)

"वाहिद्दिया अर्थात् बहुत्व में एकत्व का यह नियम दारा के अध्यात्म-दर्शन की आधारशिला था। दारा शिकोह के जन्म के अनेक शताब्दियों पहले संसार इस नियम पर एकमत हो गया था, परन्तु वह लेशमात्र सुखी न था और न उनमें ऐक्य का कोई लक्षण दृष्टिगोचर होता था। लोगों में छाया के पीछे संघर्ष हो सकता है, चाहे वास्तविकता के विषय में परस्पर कोई मतभेद न हो और ईश्वर के नाम में वे रक्तपात करते थे। अतः नाम-विशेष से ईश्वर की पूजा पर मनुष्य-जाति सहमत नहीं हो सकती है, क्योंकि प्रत्येक सम्प्रदाय उसको भिन्न नाम से पुकारेगा। अतः दार्शनिक राजकुमार ने अब से तीन सौ वर्ष पहले भारत की नव शुभ वार्ता का उद्घोष किया और इस्लाम और हिन्दू-धर्म रूपी दो महासागरों को एक करने में अपने दैवी ध्येय के प्रति ईश्वर के आशीर्वाद का आह्वान किया। उसने कहा- "उनके नाम में, जो अ-नाम है; परन्तु जो किसी अभीष्ट नाम से अपने को प्रकट करता है; उस प्रियतम की असीम स्तुति की जाये जो अनुपम सुन्दर मुख पर हिन्दू धर्म और इस्लाम को धारण किये हुए है। जो दो अभिमुखी बिन्दुओं की भाँति एक दूसरे के विपरीत है, जो परमात्मा इन दोनों में से किसी को अपने मधुर मुख पर आवरण नहीं बनने देता है। हिन्दू धर्म और इस्लाम, दोनों उसकी खोज में हैं, दोनों यह घोषित करते हैं- "वह एक अद्वितीय है, वह सर्वत्र विराजमान है, वह आदि है, वह अन्त है और उसके अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नहीं है। वह पड़ोसी है, मित्र है, सहयात्री है। वह फ़क़ीर के फटे-पुराने चिथड़ों में है और वह राजा के रेशमी वस्त्रों में है। सभ्य जनों की सभा में और संसार के उपेक्षित कोणों में ऐसे लोग हैं जो उसको पहचानते हैं।" ('मज्म 'उल् बह्रैन' की प्रस्तावना)

दारा शिकोह का कृतित्व

१. सफ़ीनतुल् औलिया

यह दारा शिकोह की फ़ारसी में रचित प्रथम पुस्तक है। इसे उसने २५वें वर्ष में अर्थात् १६४० ई० में लिख कर पूरा किया था। इसमें, इस्लाम के आगमन से लेकर अपने समय तक के मुसलमान सन्तों, प्रसिद्ध सूफ़ियों की जीवनियाँ तथा उपदेश हैं। भूमिका के साथ यह कई अध्यायों में विभक्त है। विक्रमाजीत हसरत महाशय के अनुसार, दारा ने इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में सन्तों के धार्मिक संघ के प्रति आदर तथा उन स्थितियों का लेखा-जोखा दिया है जिन्होंने इस ग्रन्थ को उपनिबद्ध करने के लिए उसे प्रवृत्त किया। वह

अनुभव करता है कि उसने सन्तों के पवित्र धर्म-तन्त्र के प्रति प्रेम और श्रद्धा को संजो रखा है तथा उनके (सन्तों के) द्वारा उपलब्ध विलक्षण शक्तियों में उसे दृढ़ विश्वास है, फिर वह उनकी एकान्त मण्डली तक पहुँचने का आकांक्षी हुआ। यही कारण है कि उसने उनके जीवन और उपदेश को लेकर पुस्तक तैयार की, क्योंकि व्यक्ति उनके व्यक्तिगत सम्पर्क में आने की सुविधा और सौभाग्य हासिल नहीं करता तो कम से कम उनके उत्तम गुणों के ज्ञान से भाव-विभोर करने वाला आनन्द उपलब्ध करेगा।

आगे, मार्ग-प्रदर्शन के लिए गुरु या पीर की आवश्यकता बतलाई है। दारा की मान्यता है कि ईश्वर अपने लोगों को सन्तों के मार्ग-दर्शन के बिना नहीं छोड़ता। पैग़म्बर के बाद सर्वशक्तिमान् ईश्वर की उपस्थिति के निकट, सन्तों के अतिरिक्त कोई नहीं होता। धर्म-संघ के इन सदस्यों से बढ़ कर कोई दयालु, उदार, बहुश्रुत, व्यावहारिक, विनीत और भद्र नहीं होता।

दारा ने सन्तों के कई भेद भी बताये हैं। सन्तों में कुछ अपने निजी भिन्न मार्ग से चलते हैं। कुछ छिपे होते हैं, जब कि अन्य प्रकट होते हैं। ईश्वर के निर्देशानुसार, कुछ सन्त चमत्कार दिखाते हैं, किन्तु आश्चर्य दिखाना उनका सही उद्देश्य नहीं होता। जबकि वे, जो अपने अस्तित्व को छिपाये रखते हैं, श्रमपूर्वक अपनी लोकोत्तर शक्तियों को भी अप्रकट रखते हैं। कुछ सन्त ईश्वर के आदेशानुसार, केवल प्रभु की सीधे अन्तःप्रेरणा से काम करते हैं। वे कुछ नहीं करते, कुछ नहीं बोलते, जब तक कि वह नहीं बोलने के लिए प्रवृत्त करता है। वे भोजन नहीं करते जब तक वे भोजन के लिए आदिष्ट नहीं होते, वे वस्त्र नहीं धारण करते, जब तक उन्हें वस्त्र पहना नहीं दिये जाते। कुछ ऐसे सन्त होते हैं जो पूर्ण त्याग और विविक्तता का मार्ग अपनाते हैं, और इस ढंग से काम करते हैं कि उनका चित्त दुःख और चिन्ता से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार और भी सन्तों के भेद निर्दिष्ट किए हैं। प्राचीन ऋषियों के ग्रन्थों से, दारा ने निश्चयपूर्वक ईश्वर के चालीस हज़ार मित्रों के होने की बात लिखी है, जिन्हें 'मुख़्तुम' कहते हैं। वे एक दूसरे को नहीं जानते, न ही उन्हें अपनी स्थिति का ही पता है। एक सौ तीस लोग हैं, जो ईश्वर के दरबार के रक्षक हैं, जिन्हें 'अख़्बार' कहा जाता है। इनसे उच्च स्थिति वाले चालीस लोगों के दो ग्रुप हैं, जिन्हें रहय्यूँ और अबदाल कहते हैं। इनसे भी ऊपर वाले 'अब्रार', इनसे ऊपर के चार लोग औवताद कहलाते हैं। इनसे ऊपर वाले तीन

नक़ब और इनसे ऊपर वाले दो इमाम कहलाते हैं। ये इमाम क़ुतुब के दायें और बायें रहते हैं। इस धर्म-संघ का वह क़ुतुब प्रधान होता है। इस प्रधान को घौस भी कहा जाता है। सन्तों का एक और वर्ग होता है जिसे मुफ़रिद या निःसंग (एकान्तवासी) कहते हैं, वे किसी के अधीन नहीं होते तथा जिनका किसी ग्रुप या धर्म-संघ से सम्बन्ध नहीं होता। वे अकेले शान से पुच्छल तारे की भाँति विचरण करते हैं।

दारा ने सन्तों की सूक्तियाँ भी दी हैं; जैसे,

शेख़ अब्दुल क़ादिर : "इस समुदाय के सदस्य इस तथा उस जगत् के भी राजा हैं।"

शेख़ अबू अब्दुल्लाह मग़रिबी : "सन्त सम्पूर्ण मानवता के लिए, ईश्वर के ट्रस्टी (न्यासी) हैं। उनके आशीर्वाद से मानव-जाति की भयंकर आपदाएं निवारित होती हैं।"

शेख़ जुन्नून मिस्री : "वह जो ईश्वर के मित्रों की वाणियों पर विश्वास रखता है और उन वाणियों के प्रति प्रेम रखता है, मैं उसे नमन करता हूँ।"

इब्राहीम क़स्सार : "दो चीज़ें तुम्हें संसार के जाल से रक्षा कर सकती हैं, सन्तों का साथ और ईश्वर के मित्रों (= सन्तों) की निःसङ्ग सेवा।"

इनके अतिरिक्त भी सन्तों के जीवन का वर्गीकरण इस ग्रन्थ में किया गया है। काल-क्रमानुसार, उन्हें आठ भागों में विभक्त किया गया है। निश्चय ही उस युग के लिए यह एक दुष्कर कार्य कहा जा सकता है।

यह ग्रन्थ नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से १८०० ई० में प्रकाशित हुआ था।

२. सकीनतुल् औलिया

दारा द्वारा सूफ़ी सन्तों पर लिखित यह दूसरा जीवनी-ग्रन्थ है। इसमें भारत के क़ादिरी सम्प्रदाय के उन सन्तों की जीवनी है, जिनसे दारा अपने जीवन-काल में सम्बद्ध हुआ। यह लेखक के जीवन के २८वें वर्ष (१६४२ ई०) में पूरा हुआ। इसमें दारा के "धार्मिक जीवन की अधिक परिपक्व अवस्था" की सूचना मिलती है।

इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से लाहौर के विख्यात सन्त मियाँ मीर के जीवन का वर्णन है। मियाँ मीर क़ादिरिया सम्प्रदाय के सूफ़ी थे। इस सम्प्रदाय का प्रवर्तन सन्त अब्दुल क़ादिर जीलानी ने किया था। राजकुमार दारा मिया मीर से अपने पिता सम्राट् शाहजहाँ के साथ ७ अप्रैल १६३४ को मिला था। डॉ० क़ानूनगो के अनुसार, "१६३५ के हेमन्त ऋतु में जब दरबार लाहौर में एकत्र था, बहुत सम्भव है कि दारा शिकोह को मियाँ मीर से आध्यात्मिक जीवन के प्रति स्वस्थ प्रेरणा प्राप्त हुई और इससे अधिक महत्त्व की यह घटना हुई कि उसका परिचय उसके भविष्य के पीर (आध्यात्मिक गुरु) मुल्ला शाह बदख़्शी से हो गया जो शेख़ का शिष्य था।" उसी वर्ष मियाँ मीर का देहान्त हो गया।

दारा ने इन दोनों गुरुओं का अपने पर पूर्ण प्रभाव स्वीकार किया है। उनके साथ सत्सङ्ग से प्राप्त उत्प्रेरणा से उसकी कल्पनाओं को विस्तार मिला। उनकी भक्ति ने उसके मन को आध्यात्मिकता की ओर मोड़ दिया, यहाँ तक कि मियाँ मीर के देहान्त के बाद, छः वर्षों तक मुल्ला शाह से वह अपने आध्यात्मिक जीवन के लिए स्वस्थ प्रोत्साहन प्राप्त करता रहा और उसने सन्तों के जीवन और चमत्कारों के अध्ययन में अपने को अर्पित कर दिया।

"सकीनतुल् औलिया" तीन भागों में विभक्त है। पहले भाग में मियाँ मीर के जीवन, चमत्कार और लोकोत्तर उपहारों की चर्चा है। दूसरे में, उनकी बहन बीबी जमाल ख़ातून के जीवन और चमत्कारों की चर्चा की गई है। और तीसरे भाग में, उनके शिष्यों की चर्चा है जो इस रचना के पूर्ण होने के पूर्व चल बसे थे और समसामयिक थे। मुल्ला शाह के बारे में अन्तिम भाग में बयान है। यह कहा जा चुका है कि मुल्ला शाह दारा के आध्यात्मिक मार्गदर्शक तथा उपदेशक थे।

हसरत महाशय का कहना है कि यह ग्रन्थ दारा की धार्मिक खोज को आगे बढ़ाता है। यह उसके परिपक्व विचार और अनुभव का परिणाम है। यह रूढ़िवादी प्राचीन वाङ्मय का सङ्कलन न होकर दारा के क़ादिरियों में विश्वास और अभ्यास की वास्तविकताओं के अन्तरङ्ग ज्ञान की उपलब्धि को तथा धार्मिक विचार के विशेष निजी लक्षणों को उजागर करता है।

दारा चमत्कारों पर अधिक विश्वास करता था, यह उसकी कमज़ोरी भी कही जा सकती है।

इस ग्रन्थ में दारा ने क़ादिरियों द्वारा अभ्यस्त धार्मिक उपासना 'ज़िक्र' (स्मरण) जैसी परिभाषिक शब्दावली की चर्चा की है। ज़िक्र दो प्रकार का होता है- ज़िक्रे जली और ज़िक्रे ख़ाफ़ी। पहले को उच्च स्वर से लोगों के बीच उच्चरित किया जाता है, दूसरे को मौन अथवा ध्यान में पूरा किया जाता है। ज़िक्र के साथ सदैव उपासना की दूसरी स्थिति मराक़िब रहती है। यह पवित्र क़ुरआन के निर्धारित मन्त्रों पर आधारित होती है।

क़ादिरियों के धार्मिक अभ्यासों की पद्धति शरीर और मन के कठोर अनुशासन में उलझी हुई थी, किन्तु दारा का उन पर विश्वास न था। उसने सोचा कि तपस्याएँ और आत्मदमन, नियमित योगी के लिए तो असंख्य लाभ हैं, वस्तुतः नव दीक्षित के मार्ग की बाधा हैं। उस पद्धति में अपने दीक्षित होने के तुरन्त बाद उसने लिखा- इस समय, ईश्वर ने मेरे लिए एकता और बुद्धि के द्वार खोल दिये हैं. . . और मेरा 'पूर्ण' के सम्प्रदाय में प्रवेश पूरा हुआ।

इस ग्रन्थ में मियाँ मीर की विशेष चर्चा है। उन प्रसिद्ध सन्त को मियाँ मीर अथवा मियाँ जीव कहते थे। वे ख़लीफ़ा उमर के वंशज थे और उनके पूर्वज सीस्तान के निवासी थे। वे सीस्तान में १५५० ई० में उत्पन्न हुए। बाहर वर्ष की उम्र में वे क़ादिरी सम्प्रदाय के शेख़ ख़िजर के प्रवचनों में भाग लेने लगे। पच्चीस वर्ष की आयु में वे लाहौर में आ बसे और वहाँ पैंसठ वर्षों तक निवास किया।

दारा ने जहाँगीर और मियाँ मीर के विषय में भी चर्चा की है। उसका यह भी कहना था कि जहाँगीर का, सन्तों और दरवेशों के प्रति विश्वास न था, वह उन्हें कष्ट भी दिया करता था, इसके बावजूद उसके मन में मियाँ मीर के लिए सम्मान था। एक बार जहाँगीर ने उन्हें आगरा आने के लिए आमन्त्रित किया और उनके साथ बहुत सम्मान के साथ पेश आया। शेख़ ने सम्राट् के साथ बहुत विस्तृत बातचीत की, जिसमें उन्होंने सांसारिक जीवन की अस्थिरता पर बल दिया। उनके सुझाव ने सम्राट् को इस प्रकार प्रभावित किया कि सम्राट् ने उनका शिष्यत्व ग्रहण करने की और संसार से अलग हो जाने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की। मियाँ मीर ने सम्राट् को समझाया कि राजा ईश्वर की प्रजा की रक्षा के लिए बनाया गया है और उन पर शासन करते हुए वह सिरजनहार द्वारा उस पर निक्षिप्त महत्वपूर्ण कर्त्तव्य का निर्वाह करता है। सम्राट् यह सुनकर प्रसन्न हुआ और उनसे बोला- हे शेख़, क्या आप कुछ

चाहते हैं ? शेख़ बोले- मैं तुमसे एक चीज़ चाहता हूँ, क्या तुम उसे देने का वचन देते हो ? जहाँगीर ने कहा- अवश्य, मैं उसे दूँगा। तब पवित्र शेख़ ने फ़र्माया- मेरी यही एक इच्छा है कि सम्राट् मुझे फिर आने का कष्ट न दें।"

शेख़ सम्राट् से वचन लेकर बिदा हुए। सम्राट् उनके पास स्वहस्तलिखित पत्र लिखता रहा।

इस ग्रन्थ में दारा ने अपने आध्यात्मिक गुरु मुल्ला शाह के जीवन पर विस्तार से लिखा है। उनके जीवन को चार भागों में विभक्त किया है- उनका जन्म और उनके पिता-माता; उनकी आध्यात्मिक प्रतिभा और चमत्कार; दारा को लिखित उनके पत्र और उनकी कविताओं का संग्रह। उनकी प्रसिद्धि 'लिसानुल्लाह' (ईश्वर की जिह्वा) के रूप में थी। मुल्ला शाह मुहम्मद बदख़्शाँ के निवासी थे। उनके पिता क़ाज़ी मुल्ला अब्द मुहम्मद बदख़्शाँ में अर्कसा गाँव में रहते थे। उनका जन्म वर्ष विदित नहीं। दारा उनका मृत्यु वर्ष १६४२ ई० देता है, जब कि तवक्कुल बेग के अनुसार उनकी मृत्यु १६६७ ई० में हुई थी और लाहौर में अपने गुरु मियाँ मीर के बगल में दफ़नाये गये थे। १६१४ ई० में भारत में आकर वे लाहौर गये और मियाँ मीर के शिष्य हुए। उन्होंने बदख़्शाँ में ही गुरु की कीर्ति सुन रखी थी। दो वर्ष बाद वे कश्मीर चले गये और अपने अनेक क़ादिरी शिष्यों के साथ वहीं बस गये। किन्तु जहाँआरा बेगम के हिसाब से वे पचीस साल की उम्र में भारत आये और कश्मीर चले गये। वहाँ वे छात्र के रूप में तीन साल रहे। तत्पश्चात् वे लाहौर गये और उन्नीस वर्ष मियाँ मीर की सेवा में रहे। इन्हीं वर्षों में वे ग्रीष्म काल में कश्मीर चले जाया करते थे।

दारा की बहन जहाँआरा उसकी प्रेरणा से मुल्ला शाह की शिष्या हुई और उसने उनकी जीवनी लिखी।

तवक्कुल बेग के अनुसार १६४० ई० में दारा ने मुल्ला शाह के शिष्य के रूप में उनकी स्वीकृति पा ली। उस घटना का उसने स्पष्ट वर्णन किया है :

"जब मैंने उन्हें पहली बार देखा, उससे पहले उन्होंने मुझे नहीं देखा था। उन्होंने मुझसे पूछा- मैं कौन हूँ ? मैंने आदरपूर्वक उत्तर दिया- मैं एक फ़क़ीर हूँ। उन्होंने पूछा- फ़क़ीर का नाम होता है। 'आपसे कुछ भी नहीं छिपा है' - मैंने उत्तर दिया। 'अब मैं तुम्हें जान गया।' कहते हुए उन्होंने मेरा हाथ पकड़ कर अपने पास बैठाया।"

दारा की दृष्टि में मुल्ला शाह की ज्ञान-दृष्टि विस्तीर्ण थी, वे मानव-प्रेमी प्रवृत्तियों के तथा विशाल कल्पना के सर्वेश्वरवादी थे। उन्होंने बड़ी धार्मिकता और कठोर उपासनात्मक अभ्यासों से आध्यात्मिक प्रकाश अर्जित किया था।

डॉ० क़ानूनगो लिखते हैं कि दारा शिकोह को मुल्ला शाह से प्रेरणा प्राप्त हुई थी कि वह अन-इस्लामी ग्रन्थों में तौहीद (एकत्व) के सिद्धान्त की खोज करे। दारा ने उपनिषदों के फ़ारसी अनुवाद की भूमिका में गुरु के प्रति अपने ऋण को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है। दारा और मुल्ला शाह के मध्य पत्र-व्यवहार हुआ करता था। क़ानूनगो महाशय ने गुरु के एक पत्र को उद्धृत किया है :

"ईश्वर उसको साक्षात्कार का परम आनन्द प्रदान करे। ज्ञानियों के हृदय का दीपक शत्रुओं की श्वास से सुरक्षित रहे। आपने सुना होगा कि बाह्य मनुष्यों से रहस्य को गुप्त रखना चाहिए - अतः उनको गुप्त रखो। यह आप जानते होंगे कि उन लोगों की मण्डली में जिन पर ईश्वर की दया कम है, अपने को कम ही ज्ञान-प्रेरित प्रतीत होना चाहिए। अतः अति उत्साह न दिखाओ। यह आपसे छिपा नहीं है कि किसी कार्य को सम्पूर्ण पूर्णता तक पहुँचाने में मनुष्य को कष्ट सहन करना होता है- अतः आप पूरा परिश्रम करें। जो मनुष्य अपने कार्य में दत्तचित्त रहता है, वह निश्चय ही (ईश्वर का) भक्त है तथा जो भक्त है वह साक्षात्कार के परमानन्द रूपी आशीर्वाद का पात्र है। 'सम्पूर्ण मनुष्य' (इन्साने कामिल) वह है जिसकी कोई भी निन्दा नहीं करता है- चाहे जन-साधारण, चाहे अन्तरङ्ग और अतिअन्तरङ्ग मण्डल के घनिष्ठ मित्र; अर्थात् (सम्पूर्ण मनुष्य वह है) जो किसी भी कार्य का करना नहीं भूलता है- उसका विधान चाहे शरीयत (इस्लामी सिद्धान्त) ने किया हो, तरीक़त (रहस्यात्मक इस्लाम के मार्ग) ने या हक़ीक़त (सत्य) ने। सर्वप्रथम ईश्वर का ज्ञान (मारिफ़त) है जो सुसंगति का प्रभाव (असर) है। द्वितीय स्थान पर चित्त की एकाग्रता है जो आत्म-नियन्त्रण का फल है। तथा तृतीय स्थान पर शरीयत है जिसका अर्थ है जनसाधारण के प्रति ढर्रे के अनुसार आचरण करना। अन्दर से हमारा प्रत्येक कर्म हक़ीक़त के अनुरूप होना चाहिए तथा बाह्य रूप से हमारे सब कर्म जनसाधारण के कर्मों के सदृश होने चाहिएं। उनसे प्रेम करो जो सदृश विचार रखते हों तथा उनसे दूर रहो जो दम्भी हैं।"

दारा ने अपने समकालीनों, शाह मुहीबुल्ला (इलाहाबादी), शाह दिलरूबा शेख़ मुहसिन फ़ानी, रहस्यवादी सरमद के सम्बन्ध में भी चर्चा की है।

इसका उर्दू अनुवाद लाहौर से प्रकाशित हुआ था। इधर एक और दूसरा अनुवाद नाज़ पब्लिशिंग हाउस, पहाड़ी भोजला, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। अनुवादक हैं प्रोफ़ेसर मक़बूल बेग बदख़्शानी।

३. हसनातुल् आरफ़ीन

यह सन्तों पर दारा की तीसरी रचना है जो एक सौ सात सन्तों की सूक्तियों का संग्रह है। इसे दारा ने अपनी आयु के ३८वें वर्ष में लिखा था। वह 'पन्थ' के लोगों के तरीक़ों पर पुस्तकों के अध्ययन में अनुरक्त हो गया। ईश्वर के एकत्व को उपलब्ध करने के अतिरिक्त उसके विचार में कुछ नहीं रहा। उस पर संकीर्ण दृष्टि के लोगों ने विधर्म और स्वधर्म-त्याग के आरोप लगाये। तब उसने ईश्वर के एकत्व के विश्वासी तथा सन्तों, जिन्होंने इसके पूर्व सत्य का ज्ञान उपलब्ध कर लिया था, के सुभाषितों का संग्रह/संकलन करने की आवश्यकता अनुभव की, जिससे कि ये सुभाषित उन लोगों के तर्कों के विरोध में मात्र आयें, जो सचमुच कपटी हैं, भले ही वे क्राइस्ट का रूप धारण किये हों, मूसा के पहनावे में हों, और पैग़म्बर के अनुगामी हों।

यहाँ, एक उद्धरण के रूप में, दारा के एक गुरु हज़रत बारी के सम्बन्ध में निवेदन है। वे त्याग, अनासक्ति और एकता में बेजोड़ थे। दारा ने उनकी वर्षों तक सेवा की और उनसे उनका नाम बताने के लिए बराबर आग्रह करता रहा। इस पर वे सदा निषेध करते रहे और उत्तर दिया "सभी उसके नाम हैं, फ़क़ीर नाम नहीं रखते।" इसके प्रभाव से दारा ने यह शे'र कहा :

(मूल फारसी व्याख्या-भाग में, 'प्रस्तावना' के अन्तर्गत द्रष्टव्य है)

"Never have I found a single atom separate from the sun,
Every drop is in itself the ocean.
With what name can one invoke God?
Whatever name exists, is His name."

"अणुरेकोऽपि न लब्धः पृथगस्तित्वं बिभर्ति सूर्याद् यः।
प्रत्येकमपि च बिन्दुर्जलस्य जलधिर्मतः स्वस्मिन्।।
नाम्ना केनाप्येव प्रार्थयितुं शक्नुयाः प्रभुं मन्ये।
प्रत्येकं नामैव प्रभोस्तदस्तीह तस्यैव।।"

(यह ग्रन्थ दिल्ली से प्रकाशित हुआ था)

४. तरीक़तुल् हक़ीक़त

यह छोटा निबन्ध आध्यात्मिक मार्ग की नाना प्रकार की स्थितियों/भूमियों पर प्रस्तुत है। यह अल्प-ज्ञात है, किन्तु बहुत मूल्यवान् है। इसकी रचना का समय नहीं दिया गया है और न ही इसमें प्रस्तावना है। इसका प्रकाशन १८५७ में तीन छोटी पुस्तिकाओं में हुआ था। इसका उर्दू अनुवाद लाहौर से छपा था!

इसमें, गद्य और पद्य (कविता) दोनों हैं। स्वरूप में व्याख्यात्मक और भावनात्मक, दार्शनिक नहीं। हसरत महाशय इन्हें दारा के आरम्भिक लेखन के क्रम में गिनने योग्य समझते हैं।

इसकी दूसरी कविता है :

''तुम ही रहते हो काबा और सोमनात में,
और आसक्त प्रेमी के हृदय में,
तुम गुलाब हो और प्रेमी बुलबुल हो,
तुम अपने ही हुस्न के चिराग़ पर परवाना हो।''

दारा ने पुस्तक के निर्माण का उद्देश्य संक्षेप में इन शब्दों में बताया है : ''विश्वास और विश्व के मालिक की प्रार्थना और गुणानुवाद के बाद, प्रकाश और गूढ ज्ञान को प्रदीप्त करने वाली प्रतिभा के लोगों के वदान्य मन में, यह स्पष्ट हो जाय कि जब सत्य का फ़रिश्ता और पूर्ण मार्गदर्शक मेरी कल्पना के दर्पण में प्रतिबिम्बित हुआ, तब मेरे पास इसके सिवा कोई उपाय नहीं रहा कि ध्यानावस्था के गूढ़ार्थों से भरे इन शब्दों को लिपिबद्ध करूँ, जिससे कि अभिव्यक्ति के क्षेत्र में उन्हें व्यक्त किया जाय। मैंने इस आशा से इस पुस्तिका का नाम 'तरीक़त उल् हक़ीक़त' दिया कि 'विश्वास' के दूरदर्शी लोग इसे अनुमोदन और स्वीकृति प्रदान करेंगे।''

इसमें विचार और मान्यता की एकरूपता का अभाव है। इसमें 'आरिफ़' के मार्ग की विभिन्न रहस्यमय भूमियों की चर्चा है। यह तीस भागों / 'मंज़िलों' में विभक्त है : (१) मंज़िल, ''यह संसार मृगजल है, यह तुम्हारी प्यास नहीं बुझायेगा।'' (२) अनभिज्ञाता के परिवर्जन और ज्ञान की उपलब्धि के सम्बन्ध में, जो कि समय के मूल्य की शाश्वत सुख-शान्ति के रूप में एक अनिवार्य घटक है, इत्यादि।

५. रिसालः-ए-हक़नुमा (= सत्यार्थ दर्शन)

यह पुस्तिका, लेखक के अनुसार १६४६ ई० में पूर्ण हुई। सूफ़ीवाद के मार्ग में नव दीक्षितों के शिक्षण के लिए इसका निर्माण हुआ। 'परिचय' में दारा ने कहा है- "यह ध्यान रखो कि इस पुस्तिका में चार अध्याय हैं, और प्रत्येक अध्याय में एक 'आलम' (जीवन लोक) का वर्णन है।" किन्तु प्रकाशित पुस्तिका में ६ अध्याय हैं। इसमें शोभा और कार्य की क्रमिक स्थितियों द्वारा आध्यात्मिक पूर्णता को उपलब्ध करने के लिए नाना उपायों पर विचार किया गया है। पहली स्थिति में आध्यात्मिक गुरु की शिष्यता प्राप्त करनी होती है। इसमें गुरु शिष्य को सांसारिक निद्रा और उदासीनता से जगाता है, अहंभाव के फंदे से छुड़ाता है और सच्चे प्रियतम के स्वरूप को दर्शाता है, जबकि दूसरी स्थिति आयास और तप का विषय है, जो अन्ततः इच्छुक को 'सच्चे प्रियतम' का साक्षात्कार कराती है।

'रिसालः' का प्रकाशन नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से और बाद में एस०सी० बसु के अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ पाणिनि कार्यालय, इलाहाबाद से १९१२ ई० में और दूसरे संस्करण का तेहरान (ईरान) से १९५७ ई० में हुआ था।

दारा ने इस पुस्तिका का निर्माण क़ादिरी सम्प्रदाय में अपनी औपचारिक दीक्षा के बाद किया। सन्तों के साथ अपने गहरे सम्बन्ध और तज्नीद (विच्छेद), तफ़रीद (अनासक्ति), इर्फ़ान (गूढ़ ज्ञान की सूक्ष्मताओं) और 'तौहीद' (एकत्व) की विभिन्न भूमियों के ज्ञान के पश्चात् एक रात (शुक्रवार, ८ रजब १०५५ हिजरी) दारा ने 'दिव्य आदेश' प्राप्त किया कि सभी धार्मिक सम्प्रदायों में क़ादिरी सम्प्रदाय श्रेष्ठ है। यह पैग़म्बर से आरम्भ होकर, उनसे अब्दुल क़ादिर जीलानी और उनसे 'पीरे दस्तगीर' और उनसे शेख़ मियाँ मीर और उनसे उसके गुरु (मुल्ला) शाह और उनसे उसे प्राप्त हुआ है। 'दिव्य आदेश' की उस रात, इस पुस्तक को, जो सत्य की तलाश में हैं उनकी सहायता और मार्गदर्शन के लिए लिखने के लिए आज्ञा मिली है।

डॉ० क़ानूनगो ने इस पुस्तक के सम्बन्ध में अपना विचार इन शब्दों में व्यक्त किया है- "अपने समस्त अवगुणों और शुभ गुणों सहित 'रिसालः-ए-हक़नुमा' दारा के व्यक्तित्व और चरित्र का सच्चा दर्पण है। उसके प्रति पूर्ण रूप से न्यायशील होने पर यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि लेखक के

प्रति न्याय केवल वे लोग कर सकते हैं जिनके पास आध्यात्मिक दृष्टि है। इतने अल्प विस्तार में इससे अधिक आवश्यक और सुगम रूप में किसी अन्य लेखक ने किसी समय में सूफ़ीवाद के मूल तत्त्वों का वर्णन नहीं किया था।"

चार लोकों से, 'सालिक' की यात्रा

(क) आलमे नासूत

यह संवेदन और प्रत्यक्ष ज्ञान का लोक है। इसे 'दृश्य लोक' (आलमे शहादत) भी कहा गया है। जागृत चेतना का अथवा बोध का लोक। इसमें अस्तित्व उच्चतम अवस्था तक पहुँच जाता है और आनन्द अत्यधिक गहरा और तेजस्वी होता है।

ध्यान का तरीक़ा : पहला अपेक्षित है पूर्ण एकाकीपन और मन की शान्ति। दूसरा अपेक्षित है, अपने आध्यात्मिक गुरु के चित्र पर दृष्टि को केन्द्रित करना। तीसरा अपेक्षित है हृदय पर एकतान चिन्तन और तीन केन्द्रों पर ध्यान केन्द्रित करना।

एकाग्रता अवश्य ही पहले सूक्ष्म शरीर के केन्द्र से आरम्भ होती है और क्रमशः Lily हृदय तक पहुँचायी जाती है। परिणाम स्वरूप विचार-रूपों का दर्शन और 'आलमे मिसाल' की भूमि में अन्तिम प्रवेश होता है। यह (आलमे मिसाल) दृश्य शरीर लोक और astromental लोक के मध्य मार्ग में रहता है।

(ख) आलमे मलकूत (Astromental Plane)

इसके अनेक नाम हैं : 'आलमे अर्वाह' (रूहों का लोक) 'आलमे ग़ैब' (अदृश्य लोक), 'आलमे लतीफ़' (सूक्ष्म लोक), 'आलमे ख़्वाब' (स्वप्नलोक)।

यह लोक 'आलमे मिसाल' से ऊँचा है। इसमें विचार-रूप एक आकार प्राप्त करता है, जो विचार-रूप का आत्मा है, शरीर नहीं। 'सालिक' की रूह एक शुद्ध शरीर प्राप्त करती है और अदृश्य लोक में भ्रमण करती है। अपने आस-पास के ज्ञान और अज्ञान, दोनों स्थितियों में होती है। इस उच्चतर लोक में वह गुरु से मिलती है जो उसे पवित्र पैग़म्बर, पैग़म्बर के साथियों, सन्तों

और मित्रों से मिलाते हैं। 'आलमे मलकूत' सालिक को दृश्य लोक के अतीन्द्रिय होने की स्थिति को बताता है।

ध्यान की प्रक्रिया : अब सालिक चमत्कार प्रदर्शित कर सकता है, किन्तु उसे सूक्ष्म-लोक, कामना के दृश्य-प्रपञ्च, परोक्ष-दर्शन और चमत्कारों में अपने को उलझाना नहीं चाहिए। उसके लिए ध्यान की प्रक्रियाएं हैं : ईश्वर के नामों का मन और वाणी के स्तर पर जप; astral-heading का आभास; हब्से दम अर्थात् श्वास-प्रश्वास के आवागमन के अभ्यास के साथ प्राणायाम; सुल्तानुल अज़कार।

ध्यान का अभाव : १. निद्रा अनपेक्षित हो जाती है और सालिक (मियाँ मीर की भाँति) तीस सालों तक इसके बिना रह सकता है। २. मांस और रक्त का भौतिक शरीर अपरिष्कृत कणों से रहित हो जाता है, उसे अधिक परिशुद्ध रूप प्राप्त होता है। ३. सूक्ष्म की अजनबी bouyancy, सूक्ष्म ज्योति उस पर हावी हो जाती है, ४. अन्तर्नाद मौन का स्वर या अन्तरिक्षीय ध्वनि को सुनता है।

नाद-ध्वनि के सुनने की प्रक्रिया सुलतानुल अज़कार में पहुँचा देती है, जिसका अभ्यास मानसिक/आत्मिक/अतीन्द्रिय नाद को श्रव्य बना देता है जो कि सीमा रहित, intinate, स्वयं अस्तित्वमय और असीम विशालता का होता है। जब एक बार वह सुनाई पड़ जाता है, तब "सब कुछ भूल जाता है।"

(ग) 'आलमे जबरूत' (शक्तिसम्पन्न / आनन्द लोक)

इसे आकस्मिक लोक ('आलमे लाज़िम), श्वास-रहित जगत् ('आलमे बेनफ़स'), एकत्व और सन्तोष का लोक ('आलमे अहदियत व तौकीन') कहा जाता है। इसे नामों और गुणों का लोक (आलमे इस्म व सिफ़ात) कहना सही नहीं है। एक व्यक्ति जबरूत में पहुँचा हुआ तब कहलाता है जब "वह दुःख और शोक से मुक्त हो जाता है" और "जब चैतन्य की स्थिति में उसके मन रूप को, चाहे 'वह आलमे नासूत' या 'आलमे मलकूत' का हो, पार कर जाता है, तब मनुष्य आनन्द-लोक में होता है।

जो सचेतन रूप में 'जबरूत' में होता है और जो अचेतन रूप में वहाँ होता है उनके बीच अन्तर इस प्रकार है- पहला जब चाहता है, अपनी स्वतन्त्र इच्छा से, चाहे वह निद्रा में हो या जागृत अवस्था में, किसी भी जबरूत में

प्रवेश पा सकता है, जबकि दूसरा, तब जबरूत में प्रवेश करता है, जब वह गम्भीर स्वप्नरहित निद्रा में प्रवेश पा सकता है, वह भी स्वेच्छा से नहीं, बल्कि आवश्यक है।

ध्यान की प्रक्रिया : शरीर की सभी इन्द्रियों को पूर्ण शान्त हो जाना चाहिए, गति के प्रत्येक प्रकार को अलग हो जाना चाहिए। दोनों आँखें अवश्य मुँद जाएं। दाहिनी हथेली बाईं ओर रखनी चाहिए और हृदय को शारीरिक और चैतसिक लोकों से शून्य होना चाहिए। शान्त और विश्राम की स्थिति में बैठना, भौतिक और आभ्यन्तर दर्शन में रूप/आकार का बनना नहीं चाहिए। इस प्रकार, जब वह बिना किसी विचार या विचार-रूप के बैठ सकता है, तब उसे लोक पर विजय मिलती है।

(घ) 'आलमे लाहूत' (अन्तिम सत्य का लोक)

इसे He-ness ('आलमे हुविय्य'), The Plane of Essence ('आलमे ज़ात'), वर्ण-शून्य ('आलमे बेरंग) आदि भी कहा जाता है। यह लोक तीनों लोकों- नासूत, मलकूत और जबरूत का मूल-स्रोत कहा जाता है। यह उन सब को आच्छादित रखता है। सभी लोक इसमें विलीन हो जाते हैं, तथा इनसे निर्गत होते हैं। यह अपनी तात्त्विक प्रकृति में एकरूप/अविकारी बना रहता है। इसमें परिवर्तन और संशोधन नहीं होते।

जब सालिक का आभ्यन्तर सौभाग्य उसे इस लोक में प्रवेश करा देता है तब उसका सामान्य निजी चैतन्य से सम्पर्क छूट जाता है।

६. फ़ारसी कविताओं का संग्रह (दीवान)

दारा की फ़ारसी कविताओं का एक सङ्ग्रह है जो 'अक्सीरे आज़म' नाम से उपलब्ध है। इसमें १३३ ग़ज़लें और २८ रुबाइयाँ हैं। यह अब तक अप्रकाशित है। कहते हैं कि 'ख़ज़ीनतुल् औलिया' का लेखक उसकी कविता को 'अद्वैत का समुद्र' (दरिया-ए-तौहीद) और 'अद्वैत का अंशुमाली' (ख़ुर्शीदे वहदानियत) कहता था। 'क़ादिरी' तख़ल्लुस (उपनाम) से दारा ने स्वयं लिखा है कि १०२० ग़ज़लें कही हैं-

हज़ारो बीस्त ग़ज़ल गुफ़्त क़ादरी दर इश्क़
मगर चिः सूद कि कस मुन्तबः न मीगर्दद

इश्क़ पर 'क़ादिरी' ने एक हज़ार बीस ग़ज़लें कही हैं, लेकिन क्या फायदा? किसी ने (उन पर) ध्यान नहीं दिया!

दारा शिकोह के कवित्व के सम्बन्ध में, जैसा कि बिक्रमाजीत हसरत महाशय ने संकेत किया है, बहुत कम लिखा गया है। स्वयं दारा के गुरु मुल्ला शाह ने अपने एक पत्र में, दारा के कवित्व की प्रशंसा की थी। पत्र 'सकीनतुल औलिया' में उद्धृत है, जिसे अंग्रेज़ी में, हसरत महाशय ने इन शब्दों में प्रस्तुत किया है-

"All the excellences are under the subjugation of an 'Arif, and this is well established that your are in possession of some degree of hamoniousness." He writes to the Prince, "what shall I say of your incomparable and heart-pleasing verse? What sweet fruits cannot be borne by this pure clay!"

"ख़ज़ीनतुल् आस्फ़िया" के लेखक ने भी अपनी 'टिप्पणी' इन शब्दों में दी है-

His poetry is like the ocean of Unitarianism, flowing out of his perl-scattering tongue; or like the sum of Monotheism, rising from the horizon in the manner of his luminous opening verse (मतला).

दारा ने फ़ारसी के अनेक महान् शायरों की रचनाओं का अध्ययन किया था और अपनी रचनाओं में यथास्थान उनके शे'र उसने उद्धृत किये हैं। मौलाना रूम से वह, कहते हैं कि सर्वाधिक प्रभावित था।

७. मज्म 'उल् बह्रैन (समुद्रसङ्गमः)

इस ग्रन्थ के बारे में डॉ० क़ानूनगो के विचार को, उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करने की इच्छा का संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। क़ानूनगो महाशय लिखते हैं-

"दारा शिकोह द्वारा हिन्दु-धर्म और इस्लाम धर्म के तुलनात्मक अध्ययन का प्रथम फल यह पुस्तिका है। इसकी रचना की तिथि निश्चित नहीं है; परन्तु इसमें बहुत कम सन्देह है कि यह १६५०-१६५६ के बीच में लिखी

गई। इसका परिचय राजकुमार विशुद्ध शास्त्रीय शैली में लिखता है। आरम्भ में ईश्वर की स्तुति है, जो इस्लाम और हिन्दू धर्म की सम्मिलन-भूमि है। इसके बाद मुस्तफ़ा (पैग़म्बर), उनके परिवार और उनके मुख्य साथियों के कल्याण और शान्ति के निमित्त आशीर्वचन हैं। ये वचन यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि दारा ने ईश्वर और उनके रसूल के प्रति अपनी निष्ठा का त्याग नहीं कर दिया था। राजकुमार कहता है कि हिन्दुओं की निरन्तर संगति से और उनके साथ नित्य प्रति वार्तालाप से उसको पता लगा कि ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के सम्बन्ध में उपायों और साधनों के विषय में हिन्दुओं और मुसलमानों में केवल शब्द मात्र का भेद था। भाषा और अभिव्यक्ति का ही झगड़ा था (इख़्तलाफेलफ़्जी = शाब्दिक भेद)।

"इस ग्रन्थ में सृष्टि-वाद के उन मूल सिद्धान्तों का उसने संकलन किया है, जो ब्राह्मण-धर्म और इस्लाम-धर्म में समान हैं। रचयिता के गर्व में राजकुमार कहता है कि वह दोनों जातियों के चुनिंदा लोगों के लिए इस पुस्तक को लिख रहा है, केवल जिनको उसके परिश्रम और अनुसन्धान से लाभ हो सकता है। दोनों धर्मों के जन साधारण, ज्योतिहीन मूर्खों - (कुन्द फ़हमाने ग़ैरबीन) के प्रति घृणा के अतिरिक्त और कोई भावना उसके पास नहीं है।. . . दारा शिकोह का यह ग्रन्थ इस दिशा में प्रथम गम्भीर और विद्वत्तापूर्ण प्रयास है और इस दशा में भारतीय इतिहास के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए इसमें अद्भुत आकर्षण है। अल्बेरूनी की भाँति दारा कोई महान् संस्कृतज्ञ न था और न उस प्रसिद्ध विद्वान् की प्रशान्त निर्णायक शक्ति और विवेचनात्मक योग्यता दारा में थी। अधिकतर उसको पण्डितों का सहारा लेना पड़ता था जो अपने साहित्य और दर्शन का अर्थ करने में कभी-कभी ही एकमत हो सकते हैं। इन कमियों के कारण राजकुमार के निर्णय आधुनिक समय के विशेषज्ञों को सर्वथा स्वीकार्य नहीं हो सकते हैं। इस पुस्तक में राजकुमार का मुख्य मन्तव्य यह सिद्ध करना था कि सृष्टि-रचना के विषय में हिन्दुओं के विचार उन विचारों के सदृश हैं जो कि क़ुरआन में पाये जाते हैं। राजकुमार का कार्य अत्यन्त कष्ट-साध्य था। अतः इसमें आश्चर्य न होना चाहिए यदि कभी-कभी उसकी उपामायें तथा समानताएं असंगत और ऊपरी हों।"

इस पुस्तक के सम्बन्ध में डॉ० हर्ष नारायण के विचार हैं- ". . . और हिन्दुत्व और इस्लाम, अथवा वेदान्त और तसव्वुफ़, के समन्वय के प्रयत्न में तो उसने (दारा ने) एक पूरी पुस्तक ही लिख डाली!. . . अपने ढंग का

अकेला ग्रन्थ है। इससे पता चलता है कि दारा का वेदान्त और तसव्वुफ़ दोनों पर कितना अधिकार था और उन्हें समन्वित कर एक नयी संश्लिष्ट भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठापना की उसे कितनी स्पृहा थी। आज संयुक्त संस्कृति का नारा तो रोज़ लगता है, किन्तु दारा वह महापुरुष है जिसने उसकी वैचारिक-दार्शनिक आधारशिला के निर्माण का सुनियोजित (यद्यपि असफल) प्रयास किया था।" ('सिर्रे अक्बर' के हिन्दी अनुवाद (प्र०खं०) की भूमिका से)

म०ब० दारा की आयु के ४२वें वर्ष में पूरा हुआ। 'हसरत' महाशय कहते हैं कि यद्यपि भारतीय सर्वेश्वरवाद के पारिभाषिक शब्द और उनके समानार्थी सूफ़ी शब्दावली पर लिखित पुस्तक प्राणतत्त्व (spirit) की दृष्टि से अपर्याप्त है, अधिक मात्रा में शाब्दिक तथा किसी प्रकार की गम्भीर अन्तर्दृष्टि और आध्यात्मिकता से रहित है, फिर भी यह तुलनात्मक धर्म के छात्रों के लिए अत्यधिक आकर्षण का विषय है, क्योंकि यह ऊपरी तौर पर भिन्न दो धर्मों, सिद्धान्तों में अपने ढंग से सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयास है। इसमें हिन्दुत्व और इस्लाम के बीच समानता और एकता को दिखाने का प्रयत्न है तथा उन बिन्दुओं को उजागर किया गया है, जहाँ धार्मिक विचार के दो समुद्र मिलते हैं।

'हसरत' महाशय ने म०ब० के तुलनात्मक मूल्य को लेकर चर्चा आरम्भ करते हुए लिखा है : "तुलनात्मक प्रक्रिया को स्थापित करने का दारा शिकोह का प्रयास, कि भारतीय ब्रह्माण्डोत्पत्ति के विचार क़ुरआन में समान रूप से प्रस्तुत हुए हैं, प्रायः 'इस्लाम के ऊपर हिन्दुत्व के उत्कर्ष को प्रस्तुत करने के अधार्मिक और वेतुका प्रयास' कहकर व्याख्यात हुए हैं। लेकिन शाहज़ादा के विरुद्ध आरोप इससे बढ़कर सत्य की अनुचित व्यप्ति नहीं हो सकती। उस (शाहज़ादा) की सुरक्षा करना हमारे उद्देश्य से बहुत दूर है, किन्तु एक क्षण के लिए हम सन्देह नहीं कर सकते, इस प्रकार के एक प्रयास में मूलगत उद्देश्य की ईमानदानी, जो धर्म को एक विशाल आधारशिला पर रखती थी, और परस्पर शुभेच्छा के तात्पर्य से एक दूसरे की समझ को उजागर करने की ओर प्रवृत्त थी। हिन्दुओं और मुसलमानों की एकरूपता के सामान्य बन्धन ने उन्हें दिखाया कि दोनों धर्मों में अभिव्यक्ति के नाना प्रकार, कुछ नहीं, बल्कि एक परिवर्तनरहित सत्य की भाँति-भाँति की अवस्थाएँ हैं। दूसरों को विद्या और धार्मिक ज्ञान देने में जिस प्रकार 'पण्डित' कुछ-कुछ निरुत्साह और प्रायः कंजूसी प्रवृत्ति के, विरुद्ध होते हैं, अकल्पनीय और हठधर्मी मुल्ला ने,

यह भूलते हुए कि इस्लाम के पास धार्मिक सहिष्णुता और विद्या तथा विज्ञान के आश्रय देने का अभिलेख है, एक प्रबुद्ध राजकुमार के उस प्रकार के प्रयासों की 'भयप्रद नवाचार' और नितान्त अपधर्म कह कर निन्दा की। दुर्भाग्य से, अविश्वास और धार्मिक प्रतिरोध की यह चेतना, इधर, राजनैतिक उलझन के समयों में और बलवती हुई। किन्तु वस्तुओं के विशाल दृष्टिकोण को लेते हुए हम कह सकते हैं कि शताब्दियों से, भारत में, हिन्दुओं और मुसलमानों ने एक साथ रहते हुए सामान्य सांस्कृतिक अवदानों के एक युग को निष्फल बनाकर छोड़ दिया है? उनके सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदर्शों ने हिन्दू-मुस्लिम विचार के विकास को कुछ भी नहीं दिया? इन प्रश्नों का जो भी उत्तर हो, दारा शिकोह ने विचार नहीं किया कि ये दोनों महान् धर्म पूर्ण रूप से परस्पर-विरोधी रहे। साम्प्रदायिक सिद्धान्त अथवा दार्शनिक विवादों पर ध्यान न दें, तो आज भी सांस्कृतिक एकता का एक विशाल बन्धन विद्यमान है। उस प्रकार के हिन्दू-मुस्लिम विचार के बन्धन जिसके विकास को लेकर मज्म'-उल्-बह्रैन, यद्यपि भाषा और शैली में, समृद्ध और प्रचुर नहीं है, एक शुरुआत का बिन्दु है, यह किसी के लिए अमान्य करना कठिन होगा।''

मुस्लिम देशों तथा भारत के अनेक मुसलमान विद्वानों ने बहुत पहले से संस्कृत के ग्रन्थों के अरबी तथा फारसी भाषाओं में किये जाने वाले अनुवादों की परम्परा रही है। मुग़लकाल में भी इस परम्परा को प्रश्रय मिला। अकेले दारा शिकोह ने योगवासिष्ठ, गीता और उपनिषदों के फ़ारसी भाषा में, संस्कृत विद्वानों के सहयोग से अनुवाद किए।

१. योगवासिष्ठ :

ऋषि वसिष्ठ द्वारा राम को दिया गया उपदेश रूप यह ग्रन्थ मूलतः मोक्षोपाय नामक एक संहिता ग्रन्थ था। इसके निर्माण-काल को लेकर विद्वानों में ऐकमत्य नहीं है। डॉ० सुरेन्द्रनाथ गुप्त इसे ७००-८०० ई० की रचना मानते हैं। इस ग्रन्थ के कई संस्करण निकले थे, यह एक विशेष कारण था इसके काल-निर्धारण में कठिनाई का। अन्य विद्वानों के अनुसार इसका वर्तमान संस्करण ११०० ई० से पहले का नहीं है। 'मोक्षोपाय' के अतिरिक्त योगवासिष्ठ को वासिष्ठ, वासिष्ठ रामायण, योगवासिष्ठ रामायण, महारामायण, आर्षरामायण और ज्ञानवासिष्ठ आदि नामों से भी जाना जाता है। वाल्मीकीय रामायण से

आकार में बड़ा होने के कारण इसे 'महारामायण' की संज्ञा दी गई, फिर भी इसके रचयिता आदिकवि वाल्मीकि नहीं, किन्तु कालिदास के परवर्ती कोई वाल्मीकि हो सकते हैं। यह वेदान्त के ग्रन्थों का शिरोमणि है।

डॉ० का० र० क़ानूनगो महाशय लिखते हैं कि "दारा ने योगवासिष्ठ रामायण के एक संक्षिप्त संस्करण के फ़ारसी अनुवाद की एक रोचक भूमिका भी लिखी। १६५६ ई० में, 'तर्जुमे योगवासिष्ठ' नामक यह ग्रन्थ उसी की देख-रेख में तैयार किया गया था। वह (भूमिका) इस प्रकार है- "जब मैंने इस पुस्तक के फ़ारसी अनुवाद को पढ़ा, जिसका श्रेय शेख़ सूफ़ी को दिया जाता है, मैंने शान्त आकृति के दो भव्य पुरुषों को स्वप्न में देखा। उनमें एक दूसरे की अपेक्षा कुछ ऊँचे स्थान पर खड़ा हुआ था। बिना अपनी इच्छा के मैं उनके सम्मुख उपस्थित कर दिया गया. . . और वसिष्ठ ने बड़े प्रेम और कृपा से अपना हाथ मेरी पीठ पर रखा और कहा- 'राम! यह व्यक्ति ज्ञान का उत्सुक और अन्वेषक है और सार की सच्ची खोज में आपका साथी (अर्थात् भाई) है। उसका आलिङ्गन करो।' उत्साह और प्रेम से राम ने मेरा आलिङ्गन किया। तब वसिष्ठ ने रामचन्द्र को कुछ मिष्टान्न दिया जिसको उन्होंने अपने हाथ से मुझको खिलाया। इस स्वप्न को देखकर इस ग्रन्थ का अनुवाद कराने की मेरी इच्छा पहले से बहुत अधिक हो गई और मेरे अनुचारी वर्ग में से एक व्यक्ति को यह अनुवाद करने के लिए नियुक्त किया गया। हिन्दुस्तान के पण्डितों की देख-रेख में यह अनुवाद तैयार किया गया है।"

लखनऊ से १८८७ में इसका लिथोग्राफ़ हुआ।

२. उपनिषदों का फ़ारसी अनुवाद

दाराशिकोह ने पचास उपनिषदों का फ़ारसी अनुवाद 'सिर्रे-अक्बर' नाम से किया। इस कार्य में उसने वाराणसी के पण्डितों की सहायता ली। यह कार्य उसने अपनी मृत्यु से दो वर्ष पूर्व १६५७ ई० में सम्पन्न किया। डॉ० क़ानूनगो के अनुसार, "ईश्वर के एकत्व या तौहीद के सिद्धान्त के पूर्णतया स्पष्टीकरण के प्रति उसकी (दारा की) एक अतृप्त पिपासा ही थी जिसने अन्त में उसको इस मूल-भूत स्त्रोत उपनिषदों तक पहुँचा दिया।" कहते हैं कि 'सिर्रे अक्बर' का प्रकाशन वाराणसी और जयपुर में हुआ था। सम्पूर्ण ग्रन्थ सैयद मुहम्मद रज़ा जलाली और डॉ० ताराचन्द के सम्पादकत्व में तरबान प्रिंटिंग प्रेस, तेहरान (ईरान) से १९६१ ई० में प्रकाशित हुआ। उल्लेखनीय है कि इसका प्रथम

भाग, जिसमें नौ प्रसिद्ध उपनिषदों का हिन्दी-अनुवाद स्व० डॉ० हर्ष नारायण के सम्पादकत्व-अनुवादकत्व में, भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ से १९७१ ई० में प्रकाशित है।

दारा ने अपनी 'भूमिका' में अपना उद्देश्य तथा अपने अनुवाद की शैली को स्पष्ट करते हुए कहा है : "..... ऐसी इच्छा हुई कि इन उपनिषदों को, जो अद्वैत का भंडार हैं और जिनके ज्ञाता उस (हिन्दू) जाति में भी कम रह गये हैं, फ़ारसी भाषा में, बिना न्यूनाधिक्य के, निःस्वार्थ भाव से वाक्यानुवाक्य, शब्दानुशब्द अनूदित करके समझे कि यह (हिन्दू) समाज जो उसे मुसलमानों से छिपाकर रखता है, उसमें क्या रहस्य है।"

यह भी उल्लेखनीय है कि दारा के फारसी अनुवाद को प्रसिद्ध फ्रेंच यात्री बर्नियर अपने साथ फ्रांस ले गया, जो एन्क्वेरिल दु पेरोन नामक प्रख्यात यात्री और ज़न्द अवेस्ता के अन्वेषक को १७७५ ई० में प्राप्त हुआ। उन्होंने एक अन्य प्रति से मिलाकर उसके दो अनुवाद प्रस्तुत किये- एक फ्रेंच भाषा में : जो अप्रकाशित है, दूसरा लैटिन भाषा में, जो १८०१ तथा १८०२ में 'औपनिखत' नाम से दो भागों में प्रकाशित हुआ। इस अनुवाद को पढ़कर प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शोपेन हॉवर (१८४५-१९१७ ई०) ने इन शब्दों में अपना उद्गार प्रकट किया है- "यह (उपनिषद्) एक सर्वाधिक कृतार्थ करने वाला पाठ है जो संसार में सम्भव हो सकता है। उससे मुझे जीवन में शान्ति मिलती है और मृत्यु में भी मिलेगी।" प्रो० मैक्समूलर ने लिखा है- "यदि शोपेन हॉवर के इन शब्दों के लिए किसी समर्थन की आवश्यकता हो तो मैं अपने जीवन भर के अध्ययन के आधार पर प्रसन्नतापूर्वक अपना समर्थन दूँगा।"

दारा का यह फ़ारसी अनुवाद सम्भवतः उपनिषदों का विश्व की किसी भाषा में प्रथम अनुवाद था। 'सिर्रे अक्बर' की विभिन्न स्थानों में प्राप्त होने वाली पाण्डुलिपियों पर महेश प्रसाद का एक विस्तृत अंग्रेजी लेख मोदी मेमोरियल वाल्यूम में प्रकाशित है।

३. भगवद्गीता :

इसके फ़ारसी अनुवाद की पाण्डुलिपि इण्डियाऑफ़िस लाइब्रेरी लंदन (सं० १९४९) सुरक्षित है जिसे दारा शिकोह का कहते हैं, न कि अबुल फ़ज़्ल का।

दारा शिकोह और बाबा लाल के प्रश्नोत्तर

'समुद्रसङ्गमः' के आरम्भ में दारा ने बाबा लाल को 'चैतन्य-स्वरूप ज्ञानमूर्ति सद्गुरु' कहा है। पंजाब के गुरदासपुर ज़िले में, अमृतसर के निकट ध्यानपुर में बाबा लाल जी की समाधि है। वे जाति से क्षत्रिय थे। उनका जन्म मालवा में, जहाँगीर के शासन-काल (१६०५-१६२७) में हुआ था। वे किन्हीं चेतन (चैतन्य) स्वामी के शिष्य थे। इतिहासकारों ने गुरु और शिष्य के बीच 'चामत्कारिक प्रसङ्गों' की भी चर्चा की है। बाबा लाल ने अपने गुरु के साथ लाहौर में निवास किया और बाद में गुरु की आज्ञा से ध्यानपुर में अपना आश्रम बनाया और वहीं से अपने शिष्यों को दीक्षा देने लगे। उनके शिष्य अपने को 'बाबा लाली' कहते हैं। बाबा लाल के मतानुसार, ईश्वर एक है, निराकार है, केवल उसी की उपासना उचित है, जिसके लिए किसी बाह्य आडम्बर की आवश्यकता नहीं है। क़ानूनगो महाशय बाबा लाल के मत में वेदान्त दर्शन और सूफ़ीवाद के बहुत से तत्त्वों का सम्मिलन बताते हैं।

दारा शिकोह क़ंधार अभियान के बाद लौट रहा था तब २२ नवम्बर १६५३ ई० को वह लाहौर में ठहरा और तीन सप्ताह तक वहीं रहा। इस दौरान, दिसम्बर के मध्य तक, दारा की बाबा लाल के साथ विभिन्न स्थानों पर बैठकें हुईं और धार्मिक संवाद के रूप में प्रश्नोत्तर का प्रकरण चला। बाबा लाल उन दिनों लाहौर के एक उपनगर कोटल मेहरा (यथासम्भव 'कुई मीरन') में निवास कर रहे थे। वार्तालाप उस समय की प्रचलित भाषा में हुए, जिन्हें राय जाधव दास (जदुदास) ने लिपिबद्ध कर लिया। बाद में राय चन्द्रभान ब्राह्मण (मुंशी) ने उनका अनुवाद फ़ारसी में किया और ये बाद में 'नादिर-उन्-निकात' के नाम से प्रकाशित किये गए।

यह पुस्तक स्वामी भगवदाचार्य द्वारा सम्पादित और दरबार श्री ध्यानपुर (ज़िला गुरदासपुर) द्वारा १९६८ में उमानुल् जवाहर यानी **प्रश्नोत्तर-प्रकाश** नाम से हिन्दी में प्रकाशित है। इसमें सातों अधिवेशनों (बैठकों) के प्रश्नोत्तर (संवाद) संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त दरबार श्री ध्यानपुर में सुरक्षित हस्तलिखित प्रतियों में सबसे अच्छी इसरारे मार्फ़त और गुलज़ारे इसरार में से दूसरी गुलज़ारे इसरार का रहस्यपुष्पावली के नाम से अमृतसर निवासी खेरायती राम द्वारा सम्पादित (और अनूदित) होकर प्रकाशित हुई है। हम कह सकते हैं कि दारा शिकोह और बाबा लाल के बीच सम्पन्न धार्मिक संवाद के आकलन के लिए ये भी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

इन संवादों की प्रकृति के विषय में, क़ानूनगो महाशय ने फ्रेंच आलोचक हुअर्ट तथा मस्सीग्नो के विचार उद्धृत किये हैं- "ये संवाद वास्तव में हुए तथा १०६३ हि० (१६५३ ई०) के अन्त पर हुए जैसा कि मालूम होता है। अधिकृत सम्भाषणों की प्रकृति के सदृश उनकी प्रकृति नहीं है जिनका संगठन ससानियों के दरबार में प्रतिद्वन्द्वी धर्मों के प्रतिनिधियों के बीच में हुआ करता था। ये राजकुमार के प्रश्न हैं जो पूर्ण सहानुभूति तथा विश्वास में तपस्वी से किये गए हैं, जिसका वह सम्मान करता है और जो मित्र की भाँति उसको उत्तर देता है। यद्यपि संवाद के विषयों का सम्बन्ध भारत की परम्परागत सभ्यता के अति विभिन्न क्षेत्रों से है. . . सर्वथा मौलिक स्थल वे हैं जिनमें दारा शिकोह यह प्रयास करता है कि मुसलमान के रूप में उसके धार्मिक अनुभव का विश्लेषण बाबा लाल हिन्दु पारिभाषिक शब्दों में करे...।" (जरनल एशियाटिक १९२६ अक्तूबर-दिसम्बर)

किसी ने बाबा लाल को क़शूर का खत्री माना है। बड़ौदा के निकट 'बाबा लाल का शैल' नाम का एक धार्मिक गृह मिलता है और इस सम्प्रदाय का सम्बन्ध वहाँ से भी जुड़ता है।

दारा के उद्धरण से बाबा लाल के सम्प्रदाय के सम्बन्ध में उन्हें मुंडिया (मुड़े सिर वाला साधु) और कबीरपंथी कहा जाता है, किन्तु स्वामी भगवदाचार्य उन्हें शुद्ध वैष्णव मानते हैं। वे लिखते हैं- "अगर किसी प्रसंग में उनके (बाबा लाल के) उत्तर कबीर सम्प्रदाय के सिद्धान्त के साथ मिल जाते हों तो उसका अर्थ यह नहीं है कि वह कबीर-सम्प्रदाय के थे। बाबा लाल के जवाब क़ुरआन शरीफ़ के साथ भी मिल जाते हैं इसलिए उन्हें मुसलमान नहीं कहा जा सकता। वह शुद्ध वैष्णव थे। समय ने उन्हें अद्वैतवादी बनाने के लिए दारा के सामने बाध्य किया था। श्री- वैष्णव सम्प्रदाय शुद्ध भक्ति-सम्प्रदाय है। दारा को तत्त्वज्ञान जानना था, भक्ति के विषय में नहीं जानना था. . ."

दारा और बाबा लाल के बीच सम्पन्न प्रश्नोत्तर स्वतन्त्र अध्ययन के विषय हैं। निश्चय ही आज भी उनकी प्रासङ्गिकता हैं। मैं यहाँ ऊपर उद्धृत, फ्रांस के विद्वानों का यह कथन भी डॉ० क़ानूनगो के हवाले से उद्धृत करना चाहता हूँ- ". . . इस क्षण पर जब भारत का ऐक्य इस पर निर्भर है कि इन दो आध्यात्मिक तत्त्वों के पारस्परिक बोध के निमित्त नवीन प्रयास किया जाये,

यह न्यायसंगत ही है कि बाबा लाल तथा दारा के व्यक्तित्व की ओर उचित ध्यान दिया जाये।"

धर्म-समन्वय की दृष्टि और दारा शिकोह

दारा शिकोह को अपने परदादा अकबर महान् से उदारवादी और समन्वय मूलक दृष्टि विरासत में मिली, यह निःसंकोच कहा जा सकता है। किन्तु इस प्रकार की चेतना भारतीय संस्कृति का मूल स्वर शताब्दियों पूर्व बन चुकी थी, इसमें कोई विवाद नहीं। हम वेद और उपनिषद् के युग से ही 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' और 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' की अनुगूंज सुनते आ रहे हैं। इस अनुगूंज को नाना मनीषियों, कवियों और तत्त्वदर्शियों ने अपनी सहज वाणियों में बार-बार दुहराया। हम पहले कह चुके हैं कि अकबर महान् और दारा शिकोह की कार्य- विधियाँ एक नहीं थीं, किन्तु उनका लक्ष्य अवश्य एक था। यह भी निःसंकोच कहा जा सकता है कि दोनों को अपने लक्ष्य तक पहुंचने में सफलता नहीं मिली। इसे विधि का विधान कह कर हम भले ही आत्मतोष का अनुभव कर लें, किन्तु यह एक तथ्य है कि प्रतिकूल प्रवाहित धाराओं को एक में मिलाने जैसे प्रयासों की कुछ ऐसी ही परिणति होती है। इतना होने पर भी उन प्रयासों की विफलता से उनका या उनके प्रवर्तकों का महत्त्व कम नहीं हो जाता।

धर्म की नाना मान्यताओं को लेकर नाना जातियाँ इस देश के महासागर में आईं और कुछ तो उसमें एकीभूत हो गईं, भारतीय संस्कृति का अंग बन गईं और कुछ अपना अस्तित्व / अपनी पहचान बनाये रखने में सफल हुईं।

राजकुमार मुहम्मद दारा शिकोह को अपने युग के महान् सूफ़ी सन्त मियाँ मीर और उनके शिष्य मुल्लाशाह से एकेश्वरवाद पर उनके विचारों को सुनने का अवसर मिला। उसने लिखा कि "क्योंकि (विनीत को) प्रत्येक सम्प्रदाय को देखने तथा एकेश्वरवाद के उत्तम प्रवचनों के सुनने का चाव भी साथ था और (उसने) ब्रह्मज्ञान (तसव्वुफ़) की बहुत सी पोथियों का अनुशीलन और पुस्तकों का प्रणयन किया।" यहाँ तक कि उसने महान् ईश्वरीय ग्रन्थ क़ुरआन का अध्ययन तो किया ही, "तौरात, इंजील, ज़बूर और अन्य ग्रन्थों पर दृष्टि डाली।" जब उसने हिन्दुस्तान में प्रवर्तित अद्वैतवाद की चर्चा सुनी तो उपनिषदों को अद्वैत का भंडार के रूप में पाया। अपनी समन्वयवादी दृष्टि के अनुसार, "उसने परिभाषा-भेद के अतिरिक्त कोई भेद नहीं पाया।"

आगे चल कर, जहाँ धर्म-समन्वयवाद पर डॉ० राधाकृष्णन् जैसे दार्शनिक चिन्तकों ने भी ध्यान दिया और ऐसे भी विचारक हुए जिन्होंने समन्वय के ऐसे प्रयत्न को 'समन्वयाभास' ही उत्पन्न करना बताया। इसका यह अर्थ नहीं, कि ऐसे विचारक धर्मों के वैचित्र्य को श्लाघ्य और अभिनन्दनीय मानते हैं, प्रत्युत उसे एक अभिशाप और कलंक मानते हैं, "यही कारण है कि विसंवाद में भी किसी संवाद की खोज में रत हैं।

उनका कहना है कि प्राच्य और पाश्चात्य, भारतीय और सामी विचार-धाराएं मूलतः भिन्न हैं। यदि इनमें कोई सामान्य सिद्धान्त है तो वह बस एक है, मुक्तिवाद। किन्तु मुक्ति किससे? इस प्रश्न पर बिल्कुल मतैक्य नहीं है।

धर्मों के दो भेद बताये गए हैं- व्यष्टिपरक धर्म और समष्टिपरक धर्म। प्रथम प्रकार के धर्मों में भारतीय धर्म आते हैं, जबकि यहूदी और इस्लाम धर्म प्रायः समष्टिपरक। प्रथम प्रकार के धर्मों में रहस्यवाद की प्रवृत्ति प्रबल होने से वे रहस्यवादी धर्म और दूसरे समष्टिपरक धर्म पैग़म्बरों, ईश-दूतों, ईश्वर के सन्देशहरों के चलाए हुए होने से पैग़म्बरी धर्म कहे जाते हैं। न केवल इन दोनों प्रकार के धर्मों के बीच बड़ी खाई है, प्रत्युत भारतीय धर्मों के बीच भी पर्याप्त खाइयाँ हैं। यहूदी और इस्लाम पैग़म्बरी धर्म हैं, किन्तु ईसाई धर्म पर रहस्यवाद का पुट दिखाई देता है और ईसा पैग़म्बर नहीं, बल्कि ईश्वर के पुत्र अथवा ईश्वर के अवतार माने जाते हैं, अतः ईसाई धर्म का पैग़म्बरी और रहस्यवादी धर्मों के बीच आता है अर्थात् धर्म की एक तीसरी विधा का प्रतिनिधि है। सामी धर्मों के प्रवर्तक पैग़म्बर रहे हैं। पैग़म्बर को सगुण ईश्वर से पैग़ाम (सन्देश) प्राप्त होता है। वे उसे मानव-समाज तक पहुँचा देने के लिए बाध्य होते हैं।

रहस्यवाद की परिभाषा इन शब्दों में की गई है :- "मानवता की परम तत्त्व के साक्षात्कार अथवा सम्प्राप्ति के लिए सर्वतोमुखी अभीप्सा।"

इस रहस्यवाद या रहस्यात्मक अनुभव की तीन कोटियाँ हैं- १. कई रहस्यवादियों का अनुभव है कि मानवीय आत्मा सम्पूर्ण प्रकृति-मण्डल को अन्तर्भूत अथवा आत्मसात् किए हुए है, कि 'अहम्' सम्पूर्ण 'इदम्' अथवा सम्पूर्ण जगत् से एकीभूत है, और कि ज्ञाता और ज्ञेय का सारा भेद समाप्त है। यह प्रकृति-परक, निसर्ग-परक अथवा प्राकृत रहस्यवाद (नेचर-मिस्टिसिज़्म) है, क्योंकि इसमें प्रकृति और पुरुष घुल-मिल जाते हैं, एक हो

जाते हैं। २. दूसरी कोटि का रहस्यात्मक अनुभव कैवल्यपरक रहस्यवाद है। इसमें मानवात्मा अपने को जगत् से अधिकाधिक विच्छिन्न और असम्पृक्त अनुभव करती है और नित्य को अनित्य से अधिकाधिक असंस्पृष्ट। ३. तीसरी कोटि के रहस्यवाद को भक्ति कहते हैं, प्रेमोन्माद-पुरस्सर भक्ति। हिन्दू धर्म ऐसा धर्म है जिसमें सभी प्रकार के रहस्यवादों का उद्भव, विकास और परिपाक देखने को मिलता है। सर्वविध रहस्यवाद का क्रीडास्थल।

भारत में रहस्यवाद के चार भेद लक्षित किए गए हैं- १. सर्वात्मवादी रहस्यवाद, जिसके औपनिषद सूत्र हैं- सर्वं खल्विदं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत् त्वमसि। यहाँ 'अत्र' 'सर्वत्र' है। यह देशातीत का अनुभव है (ट्रान्सेंडेंस ऑव स्पेस), २. नित्यता अथवा कालातीतता का अनुभव (ट्रान्सेंडेंस ऑव टाइम), ३. उक्त भेद-द्वय से निष्पन्न होता है, जिसे निर्विशेष अद्वैत का अनुभव कहते हैं। माण्डूक्योपनिषद् में इस भूमिका को चतुर्थ भूमिका कहा जाता है, जिसमें शान्त, शिव, अद्वैत के अतिरिक्त कुछ नहीं रह जाता, प्रपंच का उपशम हो जाता है। यहाँ यह विशेष है कि यह एकमात्र तत्त्व केवल अखण्डैकरस नहीं, असीम भी है। इसकी परिभाषा तीन प्रकार से की जाती है। प्रथम, इस अवस्था में आत्मा निर्गुणभावापन्न होकर परमात्मा से अभिन्न हो जाती है और अन्ततः अद्वैत वेदान्त का अखण्डैकरस, अनन्त, सर्वभूतान्तरात्मा अथवा ब्रह्म रह जाता है। द्वितीय अवस्था में, मार्टिन बूबर के शब्दों में, जीवात्मा का दर्शन होता है, जो अनेक जीवात्माओं में एक है, न कि अखण्डैकरस ब्रह्म का। यह ससीम सत्ताओं में ब्रह्म के प्रतिबिम्ब का दर्शन है- ईसाई, मुस्लिम तथा श्रीवैष्णव वेदान्त के अनुसार ईश्वर का प्रतिबिम्ब। तृतीय, इस अवस्था में सांख्य के पुरुष का दर्शन होता है, जो आप्तकाम और आत्मपूर्ण है तथा अन्य पुरुषों और प्रकृति से भिन्न है। भारतीय रहस्यवाद का चतुर्थ भेद ब्रह्मानुभव, ब्रह्मनिर्वाण, से आगे जाता है और भक्तिवाद कहा जा सकता है। इसके अनुसार परम पुरुषार्थ ब्रह्म में विलय नहीं, बल्कि भगवान् से सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य प्राप्त कर उसकी भक्ति में तन्मय रहने में है। इसमें आत्मा संसार से विरक्त होकर इन्द्रियों को समेट लेती है।

उपर्युक्त सभी बातें तुलनात्मक धर्म तत्त्व के विद्वान् आर० सी० ज़ेनर के एक ग्रन्थ कॉन्कार्डेन्ट डिस्कार्ड : दि इन्टरडिपेन्डेन्स ऑव फेथ्स (संवादी विसंवाद : धर्मों का अन्योन्याश्रयत्व) की रिव्यू (डॉ० हर्ष नारायण द्वारा प्रस्तुत) के आधार पर उल्लिखित हैं। निष्कर्षतः, ज़ेनर महाशय का मत है कि

"उक्त त्रिविध रहस्यानुभवों को एक मानने की भूल का ही यह परिणाम है कि सभी धर्म तत्त्वतः एक माने जाने लगे हैं. . . सभी धर्म अन्ततः उसी रहस्यानुभव की ओर ले जाते हैं और, अतएव तत्त्वतः एक हैं।

डॉ० हर्ष नारायण की यह टिप्पणी यहाँ उद्धरणीय है : "धर्म तथा रहस्यवाद के इतिहास पर मनन करने के बाद ज़ेनर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्रत्येक धर्म में कई प्रकार के रहस्यवाद प्राप्त होते हैं, किसी में कोई रहस्यवाद अधिक है तो किसी में कोई अन्य। यह मत एकान्ततः भ्रान्त है कि यह भेद केवल व्याख्याभेदमूलक हैं (दर्शन-समीक्षा, वर्ष २, जुलाई १९७२, अंक १)

दारा शिकोह के बलिदान ने आगे आने वाली पीढ़ियों के अनेक महापुरुषों को प्रेरित किया और स्वातन्त्र्योत्तर युग में, महात्मा गान्धी को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है, जिन्होंने 'सर्वधर्मसमभाव' का दर्शन प्रवर्तित किया। आज तो हम परस्पर विरोध की इस दुःस्थिति को पहुँच चुके हैं कि चिन्तनशील हर कोई, चाहे वह हिन्दू हो, चाहे मुसलमान, समन्वय के उस आदर्श को 'समय की पुकार' के रूप में अनुभव करने लगा है। कल ही एक हिन्दी दैनिक में मैंने किन्हीं डॉ० मन्सूर मुर्तजा का लेख पढ़ा, जिसमें उन्होंने लिखा है : "हमारे सामने आधुनिकता, इस्लाम और हिन्दुत्व के स्वस्थ सकारात्मक समन्वय का अवसर है।"

"शाहज़ादा दारा शिकोह" नामक एक बृहद् बाङ्ला उपन्यास के लेखक श्यामल गंगोपाध्याय अपने पूर्व वक्तव्य में लिखते हैं- "शाहज़ादा दारा शिकोह हिन्दू-मुसलमानों के धार्मिक चिन्तन के मध्य मिलनबिन्दु ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अपने दौर से बहुत ज़्यादा आगे निकल गये थे। इसीलिए वह हिन्दोस्तान के इतिहास में 'काला गुलाब' हैं। करुणा, सौन्दर्य और काल के इतिहास के साथ वह गुलाब उलझ कर मुरझा गया। युग-युगान्तर बाद भी परिवर्तन के बावजूद हिन्दोस्तान उसे बार-बार ढूँढ़ निकालेगा।"

अकबर महान् और दारा शिकोह

मुग़ल शासकों में अकबर महान् के उदारवाद को अपनाने का उत्तरदायित्व दारा शिकोह ने जागरूकतार्पूवक अपने ढंग से लिया। उसे शासक बनने का अवसर तो नहीं मिला, इस अंश में वह अवश्य असफल हुआ,

किन्तु उसके उदारवाद ने भारतीय सांस्कृतिक चेतना को बहुत दूर तक प्रभावित किया, ऐसा माना जा सकता है। दारा के इतिहास के लेखक डॉ० क़ानूनगो का मानना है कि "दारा को बोध हुआ कि किसी नवीन धर्म का विकास करना निरर्थक होगा जो हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के लिए समान रूप से अस्पष्ट और अस्वीकार्य होगा। वह इसका कभी विचार न कर सका कि इस्लाम के चक्र से बाहर निकल कर वह प्रेम और मैत्री-भाव से मनुष्य मात्र का आलिङ्गन कर सके। इस्लाम के हृदय-स्थल में ठहर कर ही प्रतिद्वन्द्वी सम्प्रदायों के लिए वह समान मिलन-स्थल की खोज करना चाहता था। उसने निश्चय किया कि मुहम्मद के प्रति वह अपनी निष्ठा को स्थिर रखेगा और साथ-साथ एकता और शान्ति के उदार-हृदय अभिवर्धक का कार्य करेगा और समस्त संसार की उन्नति, संस्कृति और सभ्यता की आत्मा से इस्लाम को संयुक्त करेगा। इस्लाम की दीक्षा के मार्ग को उसने ग्रहण किया और अपने पर्याप्त अवकाश को उसने धर्म के तुलनात्मक अध्ययन के निमित्त अर्पित कर दिया।" (पृ० ४)

वास्तव में अकबर की बुद्धिमत्ता और शासनक्षमता किसी मुसलमान शासक में लक्षित नहीं होती हैं। कहते हैं कि "भारतीय इतिहास के समस्त समय में शायद अशोक को छोड़कर उससे बड़ा शासक नहीं हुआ है।" दारा में गूढ़ चिन्तन की क्षमता अवश्य थी, किन्तु वह अकबर जैसा बुद्धिवादी न था। जहाँ "अकबर में मस्तिष्क तथा हृदय के गुणों का समुचित सन्तुलन था वहाँ दारा में मस्तिष्क गुण उसके हृदय सम्बन्धी गुणों से निर्बल थे।" डॉ० क़ानूनगो का यह भी आकलन है कि "दारा तथा अकबर को दम्भी कहा गया है, क्योंकि वे एक धर्म को सत्य और दूसरे धर्मों को असत्य मानने के लिए तैयार न थे, क्योंकि अन्य समस्त धर्मों के साथ घृणा तथा अत्याचार द्वारा वे एक विशेष धर्म के प्रति अपने प्रेम को प्रमाणित करने के इच्छुक न थे। वे विशाल-हृदय सत्य-द्रष्टा थे।" दारा शिकोह "क़ुरआन और हदीसों के उद्धरणों का परम अन्तिम प्रमाण के रूप में उपयोग करता था। दारा न केवल क़ुरआन को, परन्तु वेद को भी 'ईश्वर-वाक्य' (कलामे इलाही) मानता था।"

कहते हैं कि अकबर के दृष्टिकोण में हल्दी घाटी के युद्ध और बंगाल विजय के बाद एक नया मोड़ दृष्टिगोचर हुआ जो विविध मतावलम्बियों से सम्पर्क बनाये रखने के फलस्वरूप था। वह कहता था कि विश्व में एकता का अनुभव करना मनुष्य मात्र का धर्म है क्योंकि उत्पन्न होने वाली सभी वस्तुएँ

परमात्मा की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। हालाँकि कट्टरपंथी "उसके विरोधी बन गये, परन्तु उसकी प्रजा के अधिकांश वर्ग में यह ख्याति हो गई कि सल्तनत की नीति धार्मिक सहिष्णुता के ही पक्ष में होगी। इसका फल यह हुआ कि राज्य का दृष्टिकोण धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में सहनशीलता से ओत-प्रोत हो गया। इसी नीति को सुलहकुल की नीति कहते हैं।" यह तो सर्वविदित ही है कि "अकबर ने एक ऐसे धर्म को प्रवर्तित करने की इच्छा व्यक्त की "जो बुराइयों से रिक्त हो और सभी धर्मों की अच्छाइयों को लिए हुए हो। जब उसने इन विचारों को अपने अमीरों, राज्य के विद्वानों और पादरियों व धर्माध्यक्षों के सम्मुख रखा और उनकी अनुमति चाही कि वे एक राज्य-धर्म को प्रचलित करने का सुझाव दें। कहते हैं कि लगभग सभी ने हाँ में हाँ मिला दी, परन्तु केवल आमेर के राजा भगवन्त दास ने इस सम्बन्ध में विरोधी आवाज़ उठाई। यह विरोधी आवाज एक व्यक्ति की न होकर हिन्दू समाज की विचारधारा थी।" "हिन्दुओं के इस अप्रत्याशित विरोध के कारण ही सम्भवतः अकबर ने दीन इलाही को पूर्ण विकसित धर्म के रूप में प्रतिपादित करने की योजना को पूरी तरह कार्यान्वित नहीं किया।"

यहाँ अकबर महान् की चर्चा दारा शिकोह के प्रसङ्ग में विशेष रूप से करने का इतना ही तात्पर्य है कि दारा ने अपने परदादा के उदार दृष्टिकोण को आत्मसात् अवश्य किया किन्तु उसके उदारवाद को इस्लाम के दायरे से बाहर जाना स्वीकार्य न था। वह सम्भवतः एक ऐसा सेतु निर्माण करना चाहता था जो हिन्दु धर्म और इस्लाम को जोड़ने का काम करे, शायद वह वजूदी परम्परा के सूफ़ी कवि मौलाना जलालुद्दीन रूमी के उस शेर को बड़ी मान्यता देता था, जिसे उन्होंने "चरवाहा और हज़रत मूसा" शीर्षक आख्यादिका में सब धर्मों के प्रति सहानुभूति का भाव प्रकट करते हुए कहा था-

"तो बराये वस्ल कर्दन आमदी नै बराये फस्ल कर्दन आमदी"

तू बंदों को जोड़ने के लिए आया है, न कि जुदा करने के लिए। तेरा काम वस्ल का है न कि फ़स्ल का।

•

मज्म 'उल् बह्रैन

मज्म 'उल् बह्रैन

बिस्मिल्लाहिर्रह्मानिर्रहीम

बनामे आंकि ऊ नामे नदारद
बहर नामे कि ख़्वानी सर बर आरद

हम्दे मौफ़ूर यगानः-ए-रा कि दो ज़ुल्फ़े कुफ़्रो इस्लाम कि नुक़्तए-मुक़ाबिल बहम अंद, बर चेहरः-ए-ज़ेबाय बेमिस्ल व नज़ीरे ख़ेश ज़ाहिर गर्दानीद। व हेच यके रा अज़ आंहा हिजाबे रुख़े नीकोय ख़ुद नसाख़्तः।

नज़्म

कुफ़्रो इस्लाम दर रहश पोयां
वहदहू लाशरीक लह् गोयां

दर हमः ऊस्त ज़ाहिर व हमः अज़ूस्त। जल्वागरे अव्वल ऊस्त व आख़िर ऊस्त व ग़ैर ऊ मौजूद नबाशद।

रुबाई

हमसायः व हमनशीं व हमरह हमः ऊस्त
दर दलक़े गदा व अत्लसे शह हमः ऊस्त
दरे अंजुमने फ़र्क़ व निहाँ ख़ानः-ए-जम'अ
बिल्लः हमः ऊस्त सुम्म बिल्लः हमः ऊस्त

व दरूदे नामहदूद बर मज़्हरे अतम बाइसे ईजादे आलम, हज़्रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम व बर आले किराम व बर अस्हाबे अज़ाम ऊ बाद। अम्मा बा'द मीगोयद फ़क़ीर बेहुज़्न व अंदोह मुहम्मद दारा शुकोह कि बा'द अज़ दर्याफ़्ते हक़ीक़तुल् हक़ायक़ व तह्क़ीक़े रमूज़ व दक़ायक़े मज़हबे बर हक़्क़े सूफ़ियः फ़ाइज़ गश्तन बईं अतीय्यः-अज़मा दर मददे आं शुद कि दरक कुनद मश्रबे मुवह्हिदाने हिन्द। व बा बाज़े अज़

मुहक्किक़ाने ईं क़ौम व कामिलाने ईशां कि बनिहायते-रियाज़त व इदराक व फ़हमीदगी व ग़ायते तसव्वुफ़ व ख़ुदायाबी रसीदः बूदंद मुकर्रर सोहबतहा दाश्तः व गुफ़्तगू नमूदः। जुज़ इख़्तलाफ़े लफ़्ज़ी दर दर्याफ़्त व शिनाख़्ते हक़ तफ़ावते नदीद। अज़ीं जहत सुख़नाने फ़रीक़ैन रा बाहम तत्बीक़ दादः व बाज़े अज़ सुख़नान कि तालिबाने हक़ रा दानिस्तने आं नागुज़ीर व सूदमंद अस्त फ़राहम आवुर्दः रिसालः-ए-तर्तीब दादाः। व चूं मजमूअ-ए-हक़ायक़ व मआरिफ़े दो तायफ़ः-ए-हक़शनास बूद लिहाज़ा **मज्म' उल् बह्रैन** मौसूम गर्दानीद बमूजिब क़ौले अक़ाबिर कि "**अत्तसव्वुफ़ुहुवल इन्साफ़ु वत्तसव्वुफ़ु तरकुत्तक्लीफ़**"

पस हर कि इन्साफ़ दारद व अज़ अह्ले इद्राक अस्त दर मीयाबद कि दर तहक़ीक़े ईं मरातिब चि ग़ौर रफ़्तः व यक़ीन कि फ़हमीदगाने साहिबे इद्राक हज़्ज़े वाफ़िर अज़ीं रिसालः रव्वाहंद बूद। व कुंदफ़हमाने तरफ़ैन रा नसीबः-ए-अज़ फ़वायद आं नरव्वाहद शुद। व ईं तहक़ीक़ रा मुआफ़िक़े कश्फ़ो-ज़ौक़े-ख़ुद बराय अह्ले बैते-ख़ुद नविश्तः अम व मरा बा अवामे हर-दो-क़ौम कारे नीस्त। चुनांचे रव्वाज़ा अब्दुल्ला अहरार कुद्दिस सिर्रहू फ़र्मूदः कि अगर दानम कि काफ़िरे पुर-ख़ता ज़मज़मः-ए-तौहीद बहंजारे मीसरायद मीरवम व अज़ वै मीशुनवम व मिन्नतदार मीशवम व **मिनल्लाहि त्तौफ़ीक़ व अल् इस्तेआनः**।

१. बयाने अनासिर

बिदां कि अनासिर पंज अंद व माद्दए-जमीअ मख़्लूक़ाते नासूती हमीं पंज अंद। अव्वल उन्सुरे आज़म कि आं रा अह्ले शरअ 'अर्शेअक्बर' मीगोयंद। दुउम बाद, सीउम आतश, चहारुम आब व पंजुम ख़ाक व ईं रा बज़ुबाने अह्ले हिन्द 'पांच भूत' मीनामंद-अकास व बाय व तेज व जल व पिर्थी। व आकास सेह अंद, भूत आकास, मन आकास व चिद् आकास। आंचि मुहीते अनासिर बाशद आं रा भूत आकास गोयंद, व आंचि मुहीते मौजूदात अस्त आंरा मन आकास नामंद व आंचि बर हमा मुहीत व दर हमा जा बाशद आं रा चिद् आकास रव्वानंद, व चिद् आकास बर हक़ अस्त या'नी हादिस नेस्त, व बर हुदूसो फ़नाए आं हेच आयए क़ुरआनी व बेद कि किताबे आस्मानी बाशद दलालत नमीकुनद। अज़ चिद् आकास अव्वल चीज़े कि बहम रसीद "इश्क़" बूद कि आं रा बज़ुबाने मुवह्हिदाने हिन्द 'माया' गोयंद व

कुन्तु कंज़न मख़फीयन् फ़अहबब्तु अन्उरिफ़ फ़ख़लक़्तुल ख़ल्क़ बरीं दाल अस्त, या'नी बूदम मन गंजे पिन्हां पस दोस्त दाश्तम कि शिनाख़्तः शवम पस ज़ाहिर कर्दम ख़ल्क़ रा बराय शिनाख़्ते ख़ुद। व अज़ "इश्क़" रूहे आज़म या'नी जीव आत्मां पैदा शुद कि आं रा हक़ीक़ते मुहम्मदी गोयंद व आं इशारः बरूह कुल्लिये आं सरवर सलातुल्लाहे व सलामुहू अलैहि अस्त। व मुवह्हिदाने हिन्द आं रा 'हिरन गर्भ' व अवस्थात आत्मां नामंद कि इशारः व मर्तबः-ए-आज़मीयत अस्त।

व बाद अज़ां उन्सुरे बाद अस्त, कि आं रा नफ़सुर्रहमान गोयंद व अज़ां नफ़स बाद पैदा शुद। व चूं आं नफ़स बजहते हब्स दर हज़रते-वजूद कि दर हंगामे-नफ़ख़ीयत बराए ज़हूर दाश्त गर्म बरामद व अज़ बाद आतश पैदा शुद व चूं दर हमां नफ़स सिफ़ते रहमानियत व इत्तिहाद बूद सर्द शुद व अज़ आतश आब पैदा शुद। अम्मा चूं उन्सुरे बादो आतश अज़ ग़ायते लताफ़त महसूस नेस्तंद व आब ब निस्बते आं हर दो महसूस अस्त, ब जिहते महसूस बूदने आं बाज़े गुफ़्तः अंद कि अव्वल आब पैदा शुद व बाद अज़ां उन्सुरे ख़ाक, व ईं ख़ाक ब मंजिलए कफ़े आं आब अस्त, चूं शीरे कि दर ज़ेरे आं आतश बाशद व बजोश आयद व कफ़ कुनद।

ब त,

चि दानिस्तम कि ईं दरिया-ए-बेपायां चुनीं बाशद
बुख़ारश आस्मां गर्दद कफ़े दरिया ज़मीं बाशद

दीगर,

यक क़तरए चू बैज़ः जोशीदः गश्त दरिया
कफ़ गर्दो कफ़ ज़मीं शुद वज़ दूदे ऊ समा शुद

व बर अक्से ईं दर क़यामते कुबरा कि आं रा बज़ुबाने अह्ले हिन्द 'महा-परली' गोयंद अव्वल फ़नाये ख़ाक रव्वाहद शुद व आं रा आब फ़रो रव्वाहद बुर्द व आब रा आतश ख़ुश्क रव्वाहद साख्त व आतश रा बाद फ़रो रव्वाहद नशानद व बाद बा रूहे आज़म दर 'महा आकास' फ़रो रव्वाहद रफ़्त। **कुल्लु शैइन् हालिकुन् इल्ला वज्-हहू**[1] या'नी हमः चीज़ फ़ानी रव्वाहद

---

१. क़ुरआन २८:८८

शुद मगर रूये ख़ुदाए तआला कि महा आकास बाशद। **कुल्लु मन् अ़लैहा फ़ानिव् व यब्क़ा वज्हु रब्बि-क जुल्जलालि वल-इक्रामि**[1], या'नी हमः आंचि कि बर रुये ज़मीं बुवद फ़ानी रव्वाहद शुद व बाक़ी मानद, रूये पर्वर्दगारे तू कि साहबे जलाल व इकराम अस्त। पस दरीं दो आयए करीमः कि बराय फ़नाय ज़मीअ अशियास्त क़ैद वज्ह कि रफ़्तः मुराद महा आकास अस्त कि आं फ़ना पज़ीर नेस्त व इल्ला मीनफ़र्मूदे **कुल्लु शैइन् हालिकुन् इल्ला वज्-हहू**[2] या'नी हमः चीज़ फ़ानी रव्वाहद शुद मगर ज़ाते ऊ। व क़ैदे रू बराए महा आकास बाशद चि महा आकास बमंज़िलए बदने लतीफ़े आं ज़ाते मुक़द्दस अस्त। व ख़ाक रा वज़ुबाने अह्ले हिन्द देवी नामंद कि हमः चीज़ अज़ू पैदा शुदः अस्त व बाज़ हमः चीज़ दरू फ़रो मीरवद बमूजिबे आयए करीमः मिन्हा **ख़-लक़्नाकुम् व फ़ीहा नुअ़ीदुकुम् व मिन्हा नुख़्रिजुकुम् तार-तन् उख़्रा**[3] या'नी अज खाक ख़ल्क़ कर्देम शुमा रा व दर आं ख़ाक बाज़ रव्वाहेम बुर्द शुमा रा व अज़ां ख़ाक बेरूं मीआरेम शुमा रा बारे दीगर।

२. बयाने हवास

मुवाफ़िक़े ईं पंज अनासिर पंज हवास अंद कि बज़ुबाने अह्ले हिन्द आं रा पंज इन्द्री गोयंद, शाम्मः, ज़ायक़ः बासिरः, सामि'अः व लामि सः कि आं रा बज़ुबाने अह्ले हिन्द घिरान, रसना, चच्छा, स्रोत्र व त्वक् मीगोयंद व मह्सूसाते आं रा गंध, रस, रूप, सब्द व स्पर्स नामंद। व हर यके अज़ीं हवासे पंजगानः अज़ जिंस यके अज़ीं अनासिर बाशद व मंसूब ब आं। शाम्मः मंसूब अस्त बख़ाक चि हेच यके अज़ अनासिर बूये नदारद इल्ला ख़ाक व अह्सासे बूये शाम्मः मीकुनद। व जायक़ः मंसूब अस्त बआब चुनांचे आब ज़ाहिर अस्त दर ज़ुबान। व बासिरः मुनासिबत दारद ब आतश चुनांचे दरके रंगहा बचश्म अस्त व नूरानियत दर हर दो ज़ाहिर अस्त। व लामिसः रा निस्बत अस्त बबाद चरा कि सबबे अह्सासे मलमूसात बाद अस्त। व सामि'अः मंसूब अस्त बउन्सुरे आज़म कि महाआकास बाशद कि सबबे इदराके अस्वात अस्त। व अज़ राहे सम्अ हक़ीक़ते महाआकास बर अह्ले दिल ज़ाहिर मीशवद व दीगरे

---

१. क़ुरआन ५५:२६, २७

२. क़ुरआन २८:८८

३. क़ुरआन २०:५५

बर आं मुत्तला' नेस्त। व ईं शग़लेस्त मुश्तरक दर्मियाने सूफ़िय: व मवह्हिदाने हिन्द कि सूफ़िय: ईं रा "शग़ले पासे अनफ़ास" मीगोयंद व ईशां दर इस्तलाह ख़ुद 'धुन' मीनामंद।

अम्मा हवासे बातिन नीज़ पंज अंद-हस्से मुश्तरक, मुतख़य्यिल:, मुतफ़क्किर:, हाफ़िज़: व वाहिम: व निज़्द अह्ले हिन्द चहार अंद-बुध व मन व अहंकार व चित व मज्मूअ-ए-ईं चहार रा 'अन्त:करन' गोयंद कि बमंज़िल-ए-पंजुमे आंहा अस्त। चित यक आदत दारद कि आं रा 'सत परकिरत' गोयंद व ईं आदत बमज़िल-ए-पाये ऊस्त कि अगर आं मुन्क़ते' शवद चित अज़ दवीदन बाज़ मानद। अव्वल बुध या'नी अक़्ल, व 'बुध' आंस्त कि तरफ़े ख़ैर रवद वतरफ़े शर न- रवद, दुवम 'मन' कि 'इबारत अज़ दिल अस्त व आं दो क़ुव्वत दारद-संकल्प-बिकल्प या'नी अज़ीमत व फ़स्ख़, सिउम 'चित' कि पैके दिल अस्त व कारेऊ दवीदन बाशद बहरसू व तमीज़ मियाने-ख़ैरोशर न कुनद, चहारुम 'अहंकार' या'नी निस्बत दहन्दए-चीज़हा ब ख़ुद, व 'अहंकार' सिफ़ते 'परम आत्मा' अस्त बसबबे माया, व माया बज़ुबाने ईशां 'इश्क़' अस्त। व अहंकार सेह क़िस्म अस्त-'सातक' व 'राजस' व 'तामस'। अहंकार सातक या'नी ग्यान सरूप कि मर्तब-ए-आला अस्त आं अस्त कि परम 'आत्मा' बुगोयद कि हरचि हस्त हम: मनम व ईं मर्तब-ए-इहात-ए-कुल्ली अस्त। हम: अश्या रा **अला इन्नहू बिकुल्लि शैइम्-मुहीत**[१] या'नी दाना व आगाह बाश बदुरुस्ती कि ऊस्त हम: चीज़ रा इहात: कुनिन्द:। दीगर आंकि **हुवल-अव्वलु** वल-आख़िरु वज़्ज़ाहिरु वल्बातिनु[२] या'नी ऊस्त अव्वल व ऊस्त आख़िर व ऊस्त ज़ाहिर व ऊस्त बातिन। व 'अहंकार राजस' मद्धम अस्त कि औसत बाशद व ईं आनस्त कि नज़र बर 'जीव आत्मा'; दाश्त: बुगोयद कि ज़ाते मन अज़ बदनो अनासिर मुनज़्ज़: अस्त व जिस्मानियत बमन निस्बत नदारद, **लै-स कमिस्लिही शैउन्**[३] या'नी नेस्त मानन्दे-ऊ चीज़े फ़ **इन्नल्ला-ह ग़निय्युन् अनिल्आलमीन**[४] या'नी ख़ुदाए तआला बेनेयाज़ अस्त अज़ ज़हूरे आलम। व 'अहंकार तामस' अद्धम अस्त कि अदना बाशद व ईं अविद्यास्त या'नी मर्तबये अबूदियते हज़रते वजूद। व

---

१. क़ुरआन ४१ : ५४
२. क़ुरआन ५७ : ३
३. क़ुरआन ४२ : ११
४. क़ुरआन ३ : ९७

अदना बूदन अज़ जिहते आंस्त कि अज़ निहायते तनज़्ज़ुल व तक़य्युद व तअय्युन नादानी व जिह्ल व ग़फ़लत रा बखुद निस्बत मीकुनद व नज़र बर हयाते मह्सूसए ख़ुद नमूदः मीगोयद कि "मन" व "तू" अज़ मर्तबः-ए-यगानगी दूर मीउफ़्तद। **क़ुल् इन्नमा अ-न ब-शरुम्-मिस्लुकुम**[1] या'नी बुगो ऐ मुहम्मद कि जुज़ ईं नेस्त कि मनम बशरे मानंद शुमा। चुनांचे 'बशिश्त' मीगोयद कि चूं हज़रते वजूद ख़्वास्त कि मुत'य्यन शवद बमुजर्रदे ईं इरादः परम आत्मा शुद व चूं ईं तक़य्युद ज़्यादः शुद 'अहंकार' बहम रसीद व चूं तक़य्युदे दीगर बर आं अफ़्ज़ूद 'महातत' कि अक़्ल कुल बाशद नाम याफ़्त, व अज़ 'संकल्प' व 'महातत' 'मन' या'नी क़ल्ब पैदा शुद कि आं रा 'परकिरत' नीज़ गोयंद व अज़ 'संकल्प मन' 'पंज ग्यान इंद्री' कि शाम्मः व लामिसः व बासिरः व सामिअः व ज़ायक़ः बाशंद बज़हूर आमद व अज़ 'संकल्प' व ईं पंज 'ग्यान इन्द्री' आज़ा व अजसाम बहम रसीद व ईं मज्मूअः रा 'बदन' गोयंद-पस 'परम आत्मा' कि अबुल अरवाह बाशद (कि ज़हूर अव्वले ऊ हक़ीक़ते मुहम्मदी व सानीए ऊ रुहुल क़ुद्स कि जिब्रीले अमीन बाशद अस्त) ईं हमः तक़य्युदात रा अज़ ख़ुद पैदा कर्दः व ख़ुद रा ब आं बस्तः गर्दानीदः। चुनांचे किर्मपीलः तारहाये अब्रेशम अज़ लुआबे ख़ुद बर आवुर्दः ख़ुदरा दर आं बस्तः अस्त हमचुनां हज़रते वाजिबुल वजूद ईं हमः क़यूदे वहमी रा अज़ ख़ुद वर आबुर्दः व ख़ुद रा दरो दर आवुर्दः अस्त मिस्ले तुख़्मे दरख़्त कि दरख़्त रा अज़ खुद बर आवुर्दः व ख़ुद दर दरख़्त दर मीआयद। दर बंदे शाख़हा व बर्गहा व गुलहा मीशवद। पस बदां व होश दार कि पेश अज़ ज़हूर ईं आलम दर ज़ात पिन्हां बूद व अलहाल ज़ाते मुक़द्दसे ऊ दर आलम पिन्हां अस्त।

३. बयाने शग़्ल

शग़्ल निज़्द मुवह्हिदाने हिन्द अगर्चे अक़्साम अस्त अम्मा बिहतरीने शग़्लहा अजपा रा मीदानंद व आं शग़्लेस्त कि चि दर ख़्वाब व चि दर बेदारी बेक़स्द व बेइख़्तियार अज ज़मीअ ज़ी नुफ़ूस हमेशः व हर आं सादिर मीगर्दद। चुनांचे दर आयए करीमः **व इम्मिन् शैइन् इल्ला युसब्बिहु बिहम्दिही व लाकिल्ला तफ़्क़हू-न तस्बीहहुम्**[2] इशारः बहमीं अस्त व आं

---

१. क़ुरआन १८ : ११०

२. क़ुरआन १७ : ४४

दरूं रफ़्तन व बेरूं आमदने दम रा ब दो लफ़्ज़ ताबीर कर्दः अन्द, नफ़से कि बाला मीरवद "ओ" मीगोयंद व नफ़से कि दरुं मीआयद "मन्" मीनामंद या'नी ओमनम" व सूफ़ियः मश्ग़ूलिए ईं दो लफ़्ज़ रा "हुअल्लाह" मीदानंद कि दर बाला रफ़्तने नफ़स 'हु' व दर बेरूं आमदन "अल्लाह" ज़ाहिर मीशवद, व ईं दो लफ़्ज़ अज़ हर ज़ी हयात जारीस्त व ऊ बेख़बर अस्त।

४. बयाने सिफ़ाते अल्लाह तआला

निज़्द सूफ़ियः दो सिफ़त अस्त, 'जमाल' व 'जलाल' कि जमीअ आफ़्रीनिश अज़ तहते ईं दो सिफ़त बेरूं नेस्त। व निज़्द फ़ुक़रा-ए-हिन्द सिह सिफ़ात अंद कि आं रा 'तिर्गुन' मीगोयंद, 'सत' व 'रज' व 'तम'; सत या'नी ईजाद, व रज या'नी इब्क़ा व तम या'नी इफ़्ना। व सूफ़ियः सिफ़ते इब्क़ा रा दर ज़िम्ने सिफ़ते जमाल दीदः व एतिबार कर्दः अंद। चूं हर यके अज़ीं सिह सिफ़त दर यक दीगर मंदर्ज़ अंद फ़ुक़रा-ए-हिन्द ईं सिह सिफ़त रा 'तिर्मूरत' नामन्द कि 'बर्हमा' व 'बिशुन' व 'महेश' बाशंद व बज़ुबाने सूफ़ियः 'जिब्रील' व 'मीकाईल' व 'इस्राफ़ील' गोयंद। बर्हमा मुवक्किले ईजाद अस्त कि जिब्रील बाशद व बिशुन मुवक्किले इब्क़ा अस्त कि मीकाईल बाशद व महेश मुवक्किले इफ़्ना स्त कि इस्राफ़ील बाशद। व आब व बाद व आतश नीज़ मन्सूब बईं मुवक्किलानंद, आब बजिब्रील व आतश बमीकाईल व बाद बइस्राफ़ील व ईं सिह चीज़ दर जमीअ जानदारां नीज़ ज़ाहिर अस्त, बर्हमा कि आब बाशद दर ज़ुबान, मज़्हरे कलामे इलाही गश्त व नुत्क़ अज़ीं ज़ाहिर शुद, व बिशुन कि आतश अस्त दर चश्म, रोशनी व नूर व बीनाई अज़ू ज़ाहिर शुद व महेश कि बाद अस्त दर बीनी, दो नफ़ख़े सूर अज़ीं ज़ाहिर शुद कि दर नफ़स बाशद व चूं आं मुनक़ते' गर्दद फ़ानी शूद।

'तिर्गुन' सिह सिफ़ते हक़ बाशद कि ईजाद व इब्क़ा व इफ़्नास्त व मज़हरे ईं सिह सिफ़त हम बर्हमा व बिशुन व महेश अंद कि सिफ़ाते आंहा दर जमीअ मख़्लूक़ात ज़ाहिर अंद। अव्वल मख़्लूक़ पैदा मीशवद बाज़ बक़द्रे मौऊद मीमानद व बाज़ फ़ानी मीशवद, व शकत कि क़ुद्रते ईं सिह सिफ़त अस्त आं रा 'तिर्देवी' गोयंद, व अज़ां 'तिर्मूरत' कि बर्हमा व बिशुन व महेश बाशंद व अज़ीं 'तिर्देवी' ई सिह चीज़ बर आमद कि आं रा 'सरस्ती' 'पार्बती' व 'लछमी' मीगोयंद, सरस्ती बि 'रजोगुन' व बर्हमा तअल्लुक़ दारद व पार्बती बि तमोगुन व महेश, व लछमी बि 'सत गुन' व बिशुन।

५. बयाने रूह

रूह दो क़िस्म अस्त, यके रूह व दीगर अबुल अर्वाह कि बज़ुबाने फ़ुक़राए हिन्द ईं दो रूह रा 'आत्मा' व 'परम आत्मा' गोयंद। (चूं) ज़ाते बहत मुतअय्यन व मुक़य्यद गर्दद चि बलताफ़त व चि बकसाफ़त बजहते मुजर्रद बूदन दर मर्तबः-ए-लताफ़त ऊ रा रूह व आत्मा गोयंद व दर मर्तबः-ए-कसाफ़त जसद व सरीर गोयंद व ज़ाते कि मुतअय्यन ब अज़ल गश्त 'रूहे आज़म' बाशद कि बा ज़ाते मज्म'उस्सिफ़ात मर्तबः-ए-अहदियत दारद व ज़ाते कि जमीअ अर्वाह दर आं मुंदरिज अंद आं रा 'परम आत्मा' व अबुलअर्वाह गोयंद। मिस्ले आब व मौज़े आब ब मंज़िले बदन व रूह व सरीर व आत्मा अस्त, व मजमूअ-ए-अमवाज अज रूये कुल्लियत ब अबुल अर्वाह व 'परम आत्मा' मानद ब आब सिर्फ़ ब मंज़िले हज़्रते वजूद व 'सुध' व 'चितन' अस्त।

६. बयाने बादहा

बादे कि दर बदने इन्सान हरकत मीकुनद चूं दर पंज मौजा मीबाशद पंज नाम दारद, 'प्रान', 'अपान', 'समान', 'उदान' व 'ब्यान'। 'प्रान' हरकते आं अज़ बीनी अस्त ता ब अंगुश्ते पा, व दम ज़दन ख़ासियते ईं बाद अस्त। 'अपान', हरकते आं अज़ निशस्तगाह अस्त ता ब अज़्वे मख़सूस व ईं बाद गिर्द नाफ़ हम हल्क़ः ज़दः अस्त व बाइसे हयाते हमां अस्त। 'समान' दर सीनः ओ नाफ़ हरकत मीकुनद। 'उदान', हरकते ईं अज़ हल्क़ अस्त ता उम्मुद्दिमाग़ व 'ब्यान' कि ज़ाहिर व बातिन अज़ीं बादे पुर अस्त।

७. बयाने अवालिमे अर्बा'

अवालिम कि जमीअ मख़्लूक़ात रा नाचार गुज़र बर आनस्त बतौरे बा'ज़े अज़ सूफ़ियः चहार अंद, 'नासूत' व 'मलकूत' व 'जबरूत' व 'लाहूत' व बा'ज़े पंज मीगोयंद व आलमे मिसाल रा दाख़िल मीकुनंद, व जम्ए कि आलमे मिसाल रा बा आलमे मलकूत यके मीअंगारंद चहार मीगोयंद, व बक़ौले फ़ुक़राएहिन्द अवस्थात कि इबारत अज़ीं अवालिमे अर्बा' बाशद चहार अंद 'जागरत' ब 'सपन' व 'सुखूपत' व 'तुरिया'। जागरत मुनासिब अस्त बनासूत कि आलमे ज़ाहिर व आलमे बेदारी बाशद, 'सपन' मुवाफ़िक़ अस्त बमलकूत कि आलमे अर्वाह व आलमे ख़्वाब बाशद, सुखूपत मुवाफ़िक़ अस्त बजबरूत कि दर आं नुक़ूशे हर दो आलम व तमीज़ "मन" व "तू" न

बाशद रख़्वाह चश्म वा कर्दः बीनी ख़्वाह पोशीदः, व बिसियारे अज़ फ़ुक़राए हर दो क़ौम बरीं आलम मुत्तला' नेस्तंद, चुनांचे सय्यद उत्तायफ़ः उस्ताद अबुल क़ासिम जुनैद बुग़दादी क़ुद्दिसल्लाहो सिर्रेहू ख़बर दादः कि फ़र्मूदः तसव्वुफ़ आं बूद कि साअते बिनशीनी बेतीमार। शेख़ुल इस्लाम गुफ़्त कि बेतीमार चि बूद। फ़र्मूद कि याफ़्त बेजुस्तन व दीदार बेनिगरीस्तन, चि बीनिन्दः दर दीदार इल्लत अस्त, पस साइते बेतीमार निशस्तन हमीं अस्त कि नुक़ूशे आलमे नासूत व मलकूत दर आ साइत बख़ातिर नगुज़रंद। व नीज़ आंचि मौलानाए रूम क़ुद्दिसल्लाहो सिर्रेहू फ़र्मूदः इशारः बहमीं मा'नी अस्त –

ख़्वाही कि बयाबी यक लह्ज़ः मजूयश
ख़्वाही कि बदानी यक लह्ज़ः मदानश
चूं दर निहानश जूई दूरी ज़ आशकारश
चूं आशकार जूई मह्जूबी अज़् निहानश
चूं ज़ि आशकार व पिन्हां बेरूं शवी बबुरहां
पाहा दराज़ मीकुन ख़ुश ख़ुस्प दर अमानश

व तुरया मुवाफ़िक़ अस्त ब लाहूत कि ज़ाते मह्ज बाशद व मुहीत व शामिल व जाम' व ऐने ईं हर सिह आलम। अगर सैरे इन्सां अज़ नासूत ब मलकूत व अज़ मलकूत ब जबरूत व अज़ जबरूत ब लाहूत बाशद ई तरक़्क़ी अज़ूस्त व अगर हज़रते हक़ीक़तुल हक़ायक कि मुवह्हिदाने हिन्द आं रा 'अवसन' गोयंद अज़ मर्तबः–ए लाहूत नुज़ूल फ़र्मायद व अज़ जबरूत व मलकूत सैरे ऊ मुंतही बआलमे नासूत मीशवद, व ईं कि सूफ़ियः मरातिबे नूज़ूल रा बाज़े चहार बाज़े पंज क़रार दादः अंद इशारः ब ईं मा'ने अस्त।

८. बयाने आवाज़

आवाज़ अज़ हमां नफ़्सुर्रह्मान अस्त कि बवक़्ते ईजाद बलफ़्ज़े "कुन" ज़ाहिर शुद। आं आवाज़ रा फ़ुक़राए हिन्द 'सरस्ती' गोयंद। व जमा' आवाज़हा व सौतहा व सदाहा अज़ां आवाज़ पैदा गश्तः।

हर कुजा बुश्नवी चु नग़मःए ऊस्त
कि शुनीद ईं चुनीं सदाए दराज़

व ईं आवाज़ कि नाद बाशद निज़्द मुवह्हिदाने हिन्द बर सिह क़िस्म अस्त। अव्वल 'अनाहत' या'नी आवाज़े कि हमेशः बूद व हस्त व रख़्वाहद

बूद व सूफ़ियः ईं आवाज़ रा आवाज़े मुत्लक़ व 'सुल्तानुल् अज़्कार' गोयंद कि क़दीम अस्त व एह्सासे 'महा आकास' अज़ीं अस्त, व ईं आवाज़ रा दर नयाबंद मगर अकाबिरे आगाहे हर दो क़ौम। दुवम, 'आहत' या'नी आवाज़े कि अज़ ज़दने चीज़े बचीज़े बेतर्कीब अलफ़ाज़ पैदा शवद। सिवुम 'सबद' कि बतर्कीबे अलफ़ाज़ पैदा शवद व आवाज़ 'सबद' रा ब'सरस्ती' मुनासबत अस्त, व अज़ हमीं आवाज़ 'इस्म आज़म' कि मियाने अह्ले इस्लाम अस्त व कलमा कि फ़ुक़राए हिन्द आं रा 'बेदमुख' गोयंद अ-उ-म ज़ाहिर शुद, व मआनीए ईं इस्म आज़म आनस्त कि ऊस्त साहिबे सिह सिफ़त कि ईजाद व इब्क़ा व इफ़्ना स्त, व फ़तहः व ज़म्मः व कस्रः कि आं रा 'अकार', 'उकार', व 'मकार' गोयंद अज़ हमीं ज़ाहिर शुदः, व मर ईं इस्म रा सूरते ख़ास अस्त निज़्दे मुवह्हिदाने हिन्द कि बइस्मे आज़मे मा मुशाबहते तमाम दारद व निशाने उन्सुरे आब व आतश व ख़ाक व बाद व जाते बहत नीज़ दरीं ज़ाहिर अस्त।

९. बयाने नूर

नूर सिह क़िस्म अस्त। अगर बसिफ़ते जलाल ज़ाहिर शवद या बरंगे आफ़्ताब अस्त या बरंगे याक़ूत या बरंगे आतश। व अगर बसिफ़ते जमाल ज़ाहिर शवद या बरंगे माह अस्त या बरंगे नुक़रः या बरंगे मर्वारीद या बरंगे आब, व नूरे ज़ात कि मुनज़्ज़ह अस्त अज़ सिफ़ाते आं रा जुज़ औलियाए ख़ुदा कि हक़ सुब्हानहुत्तआला दर हक़्क़े ईशां फ़र्मूदः **यह्दिल्लाहु लिनूरिही मय्यशाउ**[१] दीगरे दर नमीयाबद, या'नी हिदायत मीकुनद अल्लाह तआला हरकिरा मीख़्वाहद बनूरे ख़ुद।

व आं नूरे स्त कि चूं शख़्स दर ख़्वाब शवद बाचश्म पोशीदः बिनशीनद, न बचश्म बीनद व न बगोश शुनवद व न बज़ुबान गोयद व न बबीनी बूयद व न बलामसः एहसास कुनद, व हाल आं कि दर ख़्वाब हमेशः ईं हमः कारहा बयक चीज़ कुनद व मुहताजे अइज़ा व हवासे ज़ाहिरी व रोशनाई चराग़ न बाशद व बासिरः व सामिअः व ज़ायक़ः व साम्मः व लामसः ऐन यकदीगर शवंद व यकज़ात गर्दंद, आं रा नूरे ज़ात गोयंद, व आं नूरे ख़ुदास्त जल्ल शानुहू।

---

१. क़ुरआन २४ : ३५

ऐ दोस्त फ़िक्र कुन कि चि गुफ़्तम कि जाए फ़रासत व फ़िक्र अस्त व रसूले ख़ुदा सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम दर ता'रीफ़े ईं फ़िक्र फ़र्मूदः **तफ़क्कुर ओ साइतिन ख़ैरून मिन इबादति ए सिनतिन** या'नी ईं फ़िक्रेस्त कि साइते दरीं फ़िक्र बूदन बेहतर अज़ अमले आदमी व परीस्त। व नूरे कि अज़ आयए करीमः **अल्लाहु नूरुस्समावाति वल्अर्ज़ि**[१], या'नी अल्लाह तआला नूरे आसमानहा व ज़मीनहा अस्त मफ़्हूम मीगर्दद आं रा फ़ुक़राए हिन्द 'जोन सरूप' व 'सदा परकास' व 'सपन परकास' गोयंद या'नी, ईं नूर हमेशः ख़ुद ब ख़ुद रोशन अस्त रव्वाह दर आलम नुमायद रव्वाह न नुमायद। चुनांचे सूफ़ियः नूर रा ब मुनव्वर तफ़्सीर मीकुनंद व ईशां (अह्ले हिन्द) नीज़ ब मुनव्वर ता'बीर कर्दः अन्द। व तर्जुमाए ईं आयए करीमः कि **अल्लाहु नूरुस्समावाति वल्अर्ज़ि** चुनीं अस्त कि अल्लाह तआला नूरे आसमानहा व जमीनहास्त, (**म-सलु नूरिही कमिश्कातिन् फ़ीहा मिस्बाहुन्**) व मिस्ले नूरे ऊ मानंद ताक़चा अस्त कि दरां मिसबाह बाशद, (**अल-मिस्बाहु फ़ी ज़ुजाजतिन्**) व आं चराग़ दर शीशः बुवद, (**अज़्-ज़ुजाजतु, क-अन्नहा कौकबुन् दुरीय्युन्**) व शीशः गोया कि सितारए दरख़्शंदः अस्त कि, (**य्यूक़दु मिन् श-ज-रतिम्-मुबा-र-कतिन् ज़ैतूनतिल्ला शर्कियतिव्-व व ला गर्बिय्यतिन्**) अफ़रोख़्तः शुदः अस्त अज़ दरख़्ते मुबारके ज़ैतून कि न शर्क़ी अस्त व न ग़र्बी व (**यकादु ज़ैतुहा युजीउ व लौलम् तम्सस्हु नारुन्**) नज़दीक अस्त कि रोग़ने आं ज़ैतूने मुबारक रोशनी बख़्शद बा आंकि आतश बऊ न रसीदः बाशद व (**नूरुन् अला नूरिन्**) नूरेस्त बर (**अह्दि ल्लाहु लिनूरिही मय्यशाउ**) व राह मीनुमायद अल्लाह तआला बनूरे ख़ुद हरकिरा कि मीख़्वाहद।

अम्मा आंचि कि फ़क़ीर फ़हमीदः ईं बाशद कि मुराद अज़ मिश्कात कि ताक़ बाशद आलमे अजसाम अस्त व मुराद अज़ मिस्बाह कि चराग़ बाशद नूरे ज़ात अस्त व मुराद अज़ शीशः रूह अस्त कि मानंद सितारए दरख़्शन्दः अस्त कि अज़ रोशनी आं चराग़े ईं शीशः हम मानिंदे चराग़ मीनुमायद व "अफ़्रोख़्तः शुदः अस्त आं चराग़" इबारत अज़ नूरे वजूद अस्त व अज़ "शज़रे मुबारक" ज़ाते हक़ सुब्हानहुत्तआला मुराद अस्त कि मुनज़्ज़ह अस्त अज़ जहाते शर्क़ी व ग़र्बी। व मुराद अज़ "ज़ीत" '**रूहे आज़म**' अस्त कि न

---

१. क़ुरआन २४ : ३५

अज़ली व न अबदी अस्त, या'नी आं ज़ैत अज़ ग़ायते लताफ़त व सफ़ा ख़ुद ब ख़ुद रोशन व ताबां अस्त व मुहताज ब- अफ़्रोख़्तन नेस्त, चुनांचे उस्ताद अबू बक्र वासिती अलैहिर्रहमह दर ता'रीफ़े रूह मीफ़र्मायद कि ज़जाजए रूह व बमर्तबए रोशन अस्त कि मुहताजे लम्से नारे नासूत व शुआअ नेस्त व अज़ ग़ायते इस्ते'दादे ज़ाती नज़्दीक अस्त कि ख़ुद ब ख़ुद रोशन शवद। व ईं नूरे ज़ीत "नूरुन आला नूरी" अस्त या'नी अज़ निहायते सफ़ा व रोशनीए नूरेस्त बर नूर, व बईं रोशनाई नमीबीनद कसे ऊ रा ता ऊ ख़ुद हिदायत नकुनद बनूरे वहदते खुद। पस मुराद अज़ मजमूअ-ए-ईं आयए करीमः आनस्त कि हक़ सुब्हानहुत्तआला बनूरे ज़ाते ख़ुद दर पर्दःहाए लतीफ़ व नूरानी ज़ाहिर अस्त व हेच ज़ुल्मते व हिजाबे दरमियां नेस्त व नूरेज़ात दरपर्दःए-रुहुल अर्वाह ज़ाहिर अस्त व रूहुल अर्वाह दरपर्दःए अर्वाह व अर्वाह दरपर्दःए अज्साम। हमचुनीं "चराग़" बआं नूरे ज़ीत दरपर्दःए शीशः ताबां व ज़ाहिर अस्त व "शीशः" दरपर्दःए ताक़चः। व ईंहा इक्तसाबे नूर अज़ नूरे ज़ात मीकुनद लिहाज़ा रोशनी बर रोशनी अफ़ज़ूदः।

१०. बयाने रूयत

रूयते ख़ुदाए तआला रा मुवह्हिदाने हिन्द 'साछात्कार' गोयंद या'नी दीदने ख़ुदा बचश्मे सर। बिदां कि दर दीदने ख़ुदाए तआला दर दुनिया व आख़िरत बचश्मे ज़ाहिर व बातिन हेच यके अज़ अम्बिया अलैहिस्सलाम व औलियाए कामिल क़ुद्दिसल्लाहु सिर्रहु शक्के व शुब्हे नेस्त व जमी'अ अह्ले किताब व कामिलान व बीनायाने हर मिल्लत बईं मा'नी ईमान दारंद, चि अह्ले क़ुरआन व चि अह्ले बेद व चि अह्ले तौरेत व इंजील व ज़बूर। व अज़ नाफहमीदगान व नाबीनायाने मिल्लते ख़ुद बूद हर कि इन्कार रूयत नुमायद, चि ज़ाते मुक़द्दसे कि बर हमा चीज़ क़ादिर बाशद बर नमूदने ख़ुद हम चिरा क़ुद्रत न दाश्तः बाशद व ईं मस्इलः रा औलियाए सुन्नत वज्जमाअत ख़ूब बेपर्दः गुफ़्तः अंद। अम्मा अगर ज़ाते बहत रा गुफ़्तः अंद कि तवां दीदे ईं मुहाल अस्त चि ज़ाते बहत लतीफ़ व बेतअय्युन अस्त व मुतअय्यन न गर्दद व दर पर्दःए लताफ़त जलवागर बशवद पस न तवां दीद व चुनीं रूयत मुहाल बाशद। व आंचे गुफ़्तः अंद कि दर आख़िरत तवां दीद व दर दुनिया न तवां दीद अस्ली न दारद ज़ेरा कि हर गाह कमाले क़ुदरत दरू हस्त हर तौर व हर जा व हर गाह कि रव्वाहद क़ादिर बर नमूदने ख़ुद अस्त

व हर कि ईं जा न दीद मुश्किल अस्त कि तवानद दरांजा दीद, चुनांचे ख़ुद दर आय-ए-करीमः फ़र्मूदः **व मन् का-न फ़ी हाजिही अअ-मा फ़हु-व फ़िल्आख़िरति अअ-मा**[1], या'नी हर कि दरीं दुनिया अज़ दौलते दीदारे मन महरूम अस्त दर आख़िरत नीज़ महरूम रव्वाहद मांद अज़ निअ़मते जमाले मन। व मुनकिराने रूयत कि हुक्माए 'मो'तज़लाः' व शियः बाशंद दरीं मस्इलः ख़ताए अज़ीम कर्दः अंद, चिरा कि अगर मीगुफ़्तंद कि दीदने ज़ाते बहत मुम्किन नेस्त बहर हाल सूरते दाश्त व चूं ईशां जमीअ अक़्सामे रूयत रा मुन्किर शुदः अंद ईं निहायते ख़तास्त ज़ेराकि अक्सर अज़ अम्बिआए मुर्सल व औलियाए अक्मल ख़ुदा रा बचश्मे ज़ाहिर दीदः व कलामे बा एहतरामे ऊ रा बेवास्तः शुनीदः अंद, व हर गाह कि ईशां शुनीदने कलामे हक़ रा अज़ हमः जहत क़ाबिल अंद चिरा दीदन रा हम अज़ हमः जहत क़ाबिल न बाशंद। अलबत्ता बाशंद। व चुनांचे ईमान बख़ुदा व मलायकः व किताबहा व अम्बिया व क़ियामत व क़ज़ा व क़द्र व ख़ैर व सर व ख़ानहा-ए-मुतबर्रिक वग़ैरः फ़र्ज़ अस्त ईमान बरूयत हम फ़र्ज़ व लाज़िम अस्त। व इख़्तिलाफ़े कि अज़ नारसीदगाने उलमा-ए-सुन्नत व अल-अज्जमाअत, कर्दः अंद दर मआनी व लफ़्ज़ ईं हदीस कि आयशः सिद्दीक़ः पुरसीद अज़ हज़रते रसूल सल्लम कि 'हल राइत रब्बक' या'नी अया दीदी तो पर्वर्दिगारे ख़ुदा रा। फ़र्मूद **नूरुन् इन्नी अराहु**, या'नी नूरेस्त कि मीबीनम ऊ रा। आं हा ईं हदीस रा **नूरून् इन्नीराहु** ख़्वांदः अंद, या'नी नूरेस्त चगूनः बीनम ऊ रा। लाकिन ईं दलीले नादीदने पैग़म्बर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम नमीशवद, अगर मआनी-ए-अव्वल गीरम इशारः बरूयते नामे ऊस्त दर पर्दः-ए-नूर, व अगर चुनीं रव्वांदः शवद कि नूरेस्त चगूनः बीनम ऊ रा इशारः बज़ाते बहत व बेरंग अस्त। ईं इख़्तिलाफ़ इबारती नेस्त बल्कि एजाज़े नबीस्त कि दर यक हदीस दो मस्अल बयान तवां कर्द। व आयः-ए-करीमः **वुजूहुय्यौमइजिन् नाज़ि-र-तुन् इला रब्बिहा नाजिरः**[2] या'नी दर आं रोज़े कि रूहा तरो ताज़ः रव्वाहंद बूद व बीनिंदः बसूए पर्वर्दिगार ख़ुद बुरहाने ज़ाहिर अस्त बर रूयते पर्वर्दिगार जल्लशानहु। ब आयः-ए-करीमः **ला तुद्रिकुहुल्-अब्सारु व हु-व युद्रिकुल्-अब्सा-र व हुवल्लतीफ़ुल्-ख़बीर**[3]। इशारः ब बेरंगीस्त या'नी नमीबीनंद बसरहा दर

---

१. क़ुरआन १७ : ७२
२. क़ुरआन ७५ : २२, २३
३. क़ुरआन ६ : १०३

मर्तबः-ए इत्लाक़ व बेरंगी व ऊ हमः रा मीबीनद व ऊ दर निहायते लताफ़त व बेरंगीस्त, व दरीं आयए करीमः इस्म "हू" कि वाक़े शुदः इशारः ब नादीदने ज़ाते बहत अस्त। दीदने ख़ुदाए तआला पंज क़िस्म अस्त। क़िस्म अव्वल, दर रव्वाब बचश्मे दिल, दुउम दीदन दर बेदारी बचश्मे सर, सिउम, दर्मियाने बेदारी व रव्वाब कि आं बेख़ुदी-ए-ख़ास अस्त। चहारुम, दर यक तअय्युने ख़ास, पंजुम, दीदने यक ज़ाते वाहिद अस्त दर कस्रते तअयुनाते अवालिमे ज़ाहिर व बातिन, ब ईं चुनीं दीद हज़रते रसूल सल्लम दर वक़्ते कि ख़ुद न बूद दर्मियान व राई व मरई यके बूद, व रव्वाब व बेदारी व बेख़ुदीए ऊ यके मीनमूद व चश्मे ज़ाहिर व बातिने ऊ यके शुदः बूद, मर्तबः-ए-कमाले रूयत ईंस्त व ईं रा दुनिया व आख़िरत दरकार नेस्त व हमः जा व हमः वक़्त मयस्सर अस्त।

११. बयान इस्माए अल्लाह तआला

बिदां कि इस्माए अल्लाह तआला बेनिहायत अस्त व अज़ हद्दे हस्र बेरून। ज़ाते मुत्लक़ व बहत व सिर्फ़ व ग़ैबुल्ग़ैब व हज़्रते वाजिबुल् वजूद रा बज़ुबाने फ़ुक़राए हिन्द 'असन' व 'निर्गुन' व 'निरंकार' व 'निरंजन' व 'सत्' व 'चित्' गोयंद। अगर इल्म रा ब ऊ निस्बत दहंद कि अह्ले इस्लाम ऊ रा अलीम मीगोयंद फ़ुक़राए हिन्द आं रा 'चेतन' नामंद व इस्मुल्हक़ रा 'अनंत' गोयंद, क़ादिर रा 'समर्थ' व समीअ रा 'स्रोता' व बसीर रा 'द्रश्ता' रव्वानंद, व अगर कलाम रा ब आं ज़ाते मुत्लक़ निस्बत दहंद 'वक्ता' नामंद व अल्लाह रा ओम व हू रा 'सः' व फ़रिश्तः रा बज़ुबाने ईशां 'देवता' गोयंद, व मज़्हरे अतम रा 'अवतार' नामंद, व 'अवतार' आं बाशद कि क़ुदरते इलाही आंचि दर ज़ाहिर शवद व अज़ वजूदे ऊ बनज़र आयद, दर हेच यके अज़ अफ़्रादे नौअे ऊ दर आं वक़्त ज़ाहिर न शवद, व 'वह्य' रा कि बर पैग़म्बर नाज़िल शवद 'अकासबानी' नामंद व 'अकासबानी' बजहते आं गोयंद कि पैग़म्बर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम फ़र्मूदः कि सअबतरीने औक़ात बर मन बक़्ते वह्य अस्त कि मीशुनवम वह्य रा मानिंदे आवाज़े जरस या मानिंदे आवाज़े ज़ंबूर, व चूं ईं आवाज़ अज़ 'अकास' ज़ाहिर मीशवद 'अकासबानी' मीगोयंद। व कुतुबे आसमानी रा 'बेद' गोयंद, व ख़ूबाने जिन्नियान रा कि परी बाशंद 'नछरा' गोयंद व बदाने आंहा रा कि देव व शयातीन अंद 'राछस' गोयंद व आदमी रा 'मनुख', वली रा 'रिखी' व नबी रा 'महासुध' नामंद।

१२. बयाने नबूव्वत व विलायत

अम्बिया बर सिह क़िस्म अंद, यके आं कि ख़ुदा रा दीदः बाशंद बचश्म, रव्वाह बचश्मे ज़ाहिर, रव्वाह बचश्मे बातिन। दीगर आं कि आवाज़े ख़ुदा शुनीदः बाशंद रव्वाह आवाज़ सिर्फ़, रव्वाह आवाज़ मुरक्कब अज़ हरूफ़े कल्मः। दीगर आं कि फ़रिश्तः रा दीदः बाशंद या आवाज़े फ़रिश्तः रा शुनीदः बाशंद।

व नबूव्वत व विलायत बर सिह क़िस्म अस्त, यके नबूव्वत व विलायते तंज़ीही, दुउम नबूव्वत व विलायते तश्बीही, सिउम नबूव्वत व विलायते जामिउत्तश्बीह वत्तन्ज़ीह।

अव्वल, नबूव्वते तंज़ीही, चूं नबूव्वते हज़्रत नूह अलैहिस्सलाम कि ख़ुदा रा बतंज़ीह दीद व दावत कर्द व उम्मत बजहते तंज़ीह ईमान न यावुर्द मगर क़लीले व हमः दर बहरे फ़ना ग़र्क़ शुदंद चूं ज़ाहिदाने ज़माने मा कि बतंज़ीहे ख़ुदा मुरीदां रा रव्वानंद व हेचकस अज़ां मुरीदाने आरिफ़ न शवद व अज़ क़ौले आंहा नफ़्ई नबुरद व दर राहे सलूक व तरीक़ते फ़ना व हलाक गर्दद व बख़ुदा नरसद।

दुउम, नबूव्वते तश्बीही चूं नबूव्वत मूसा अस्त अलैहिस्सलाम कि ख़ुद ख़ुदा रा दर आतशे दरख़्त दीद व अज़ अब्रे सुख़ने हक़ शुनीद व अक्सरे उम्मत अज़ तक़्लीदे मूसा दर तशब्बुह उफ़्तादः गोसालः परस्त शुदंद व इसियान वर्ज़ीदंद व इम्रोज़ बा'ज़े अज़ मुक़ल्लिदाने ज़माने मा आं कि मह्ज़ तक़्लीद कामलान पेशः कर्दः अंद व बरीं ज़िन्दगानी कुनंद अज़ तंज़ीह दूर उफ़्तादः दर तशब्बुह फ़रो रफ़्तंद व बदीदने सूरतहाय ख़ूब व मरग़ूब दर लह्वोलइब गिरफ़्तार अंद व पैरवीए ईशां नशायद।

हर सूरते दिलकश कि तुरा रूए नमूद
रव्वाहद फ़लक़ अज़ चश्म तुअश ज़ूद रबूद
रौ दिल ब कसे दह् कि दर अतवारे वजूद
बूद अस्त व हमेशः बा तू रव्वाहद बूद

सिउम नबूव्वत जामे' उत्तंजीह व त्तश्बीह, या'नी जम्अ कुनिंदे तंजीह व तश्बीह व आं नबूव्वते मुहम्मदीस्त सल्लल्लाहे अलैहि व सल्लम कि मुत्लक़ व मुक़य्यद रंग व बेरंग व नज़्दीक व दूर रा यकजा कर्दः, व इशारः बईं

मर्तबः अस्त दरीं आयए करीमः कि **लै-स कमिस्लिही शैउन् व हुबस्समीअल् बसीर**[१], या'नी नेस्त मिस्ले ऊ चीज़े व ईं इशारः बमर्तबः-ए-तंज़ीह अस्त व शुनवाई व बीनाई इशारः ब तश्बीह बूद। ब ईं मर्तबः बलंदतरीं व आलातरीं मर्तबः-ए-जामिईयत व रवातमत अस्त कि मख़्सूस बज़ाते आं सरवर सलम अस्त, पस रसूले मा हमः आलम रा अज़ शर्क़ ता ग़र्ब फ़रो गिरिफ़्तः। व नबूव्वत तंजीही महरूम अस्त अज़ नबूव्वते तश्बीही व नबूव्वत तश्बीही आरीस्त अज़ नबूव्वत तंज़ीही, व नबूव्वते जामिअ शामिले तंज़ीह व तश्बीह अस्त चूं **हुवल-अव्वलु वल्-आख़िरु वज्जाहिरु वल्बातिनु**[२], हमचुनीं विलायत मख़्सूस अस्त बकामिलाने ईं उम्मत कि हक़ तआला दर वसफ़े ईशां फ़र्मूदः **कुन्तुम् ख़ै-र उम्मतिन् उखरिज़त् लिन्नासि**[३] या'नी बेह्तरीने उम्मतियाने ईशानंद कि ज़म्अ कुनिन्दे तश्बीह व तंजीह अंद। चुनांचे दर ज़माने पैग़म्बरे मा सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम अज़ औलिया अबू बक्र व उमर व उस्मान व अली व हसन व हुसैन व सित्तए बाक़िया व अशरए मुबश्शरः, व अकाबिर मुहाजिर व अनसार व अह्ले सूफ़ियः बूदंद।

व अज़ आंजुमलः दर ताबिईन चूं उवैस क़रनी वग़ैरः। व दर ज़माने दीगर चूं ज़ुन्नूने मिस्री व फ़ुज़ैल अयाज़ व मा'रूफ़ कर्ख़ी व इब्राहीम अद्हम व बिस्र हाफ़ी व सिर्रियुस्सकती व बायज़ीद बिस्तामी व उस्ताद अबुल क़ासिम जुनैदी व सह्ल बिन अब्दुल्लाह अत्तुस्तरी व अबू सईद ख़राज़ व रुवैम व अबुल हसन अन्नूरी व इब्राहीम ख़वास व अबूबक्र शिब्ली व अबूबक्र वासिती व इम्साले ईशां। व दर ज़माने दीगर चूं अबू सईद अबुल ख़ैर व शेख़ुल इस्लाम ख़्वाजः अब्दुल्लाह अंसारी व शेख़ अहमद जाम व मुहम्मद मा'शूक तूसी व अहमद ग़ज़्ज़ाली व अबुल क़ासिम गुरगानी। व दर ज़माने दीगर चूं पीरे मन शेख़ मुहीउद्दीन अब्दुल क़ादिर जीलानी व अबू मदीनुल मग़्रिबी व शेख़ मुहीउद्दीन इब्नुल अरबी व शेख़ नज्मुद्दीन कुब्रा व शेख़ फ़रीदुद्दीन अत्तार व मौलाना जलालुद्दीन रूमी। व दर ज़माने दीगर चूं ख़्वाज़ः मुईनुद्दीन चिश्ती व ख़्वाज़ः बहाउद्दीन नक़्शबंद व ख़्वाज़ः अह्रार व मौलाना अब्दुर्रहमान जामी। व दर ज़माने दीगर चूं शेख़ मन जुनैद सानी शाह मीर व उस्तादे मन मियां बारी व मुर्शिदे मन मुल्ला शाह व शाह मुहम्मद दिलरुबा व शेख़ तय्यब सरहिंदी व बावा लाल बैरागी।

---

१. क़ुरआन ४२ : ११

२. क़ुरआन ५७ : ३

३. क़ुरआन ३ : ११०

१३. बयाने बर्ह्मांद

मुराद अज़ बर्ह्मांद "कुल" व तक़य्यदे ज़हूरे हज़्रते वजूद अस्त बसूरते कुर्रः-ए-मुदव्वर व चूं ऊ रा बहेच तर्फ़ मैल व ता'ल्लुक़ नेस्त व निस्बते ऊ बा हमः बराबरस्त व हमः पैदायश व नुमायश दर्मियाने ईंस्त लिहाज़ा मुवह्हिदाने हिन्द ईं रा 'बर्ह्मांद' गोयंद।

१४. बयाने जिहात

मुवह्दिदाने इस्लाम हरेक अज़ मशरिक़ व मग़रिब व शिमाल व जनूब व फ़ौक़ व तहत रा जिहते एतबार नमूदा शश जिहत गुफ्तः अंद व मुवह्दिदाने हिन्द जिहात रा दिह मीगोयंद या'नी माबैने मश्रिक़ व मग़्रिब व शिमाल व जनूब रा नीज़ जिहते एतबार नमूदः 'दिह दिशा' मीनामंद।

१५. बयाने आस्मानहा

आस्मानहा कि आंरा 'अकन' (गगन) मीगोयंद बतौर अह्ले हिन्द हश्त अस्त, हफ़्त अज़ां मक़्क़रे हफ़्त कवाकिबे सय्यारः अस्त कि ज़ुह्ल व मुश्तरी व मिर्रीख़ व शम्स व ज़ुह्रा व उतारिद व क़मर बाशंद व बज़ुबाने अह्ले हिन्द ईं हफ़्त सितारः रा हफ़्त 'नछत्र' या'नी 'सनीचर' व 'ब्रस्पत' व 'मंगल' व 'सूरज' व 'सुक्र' व 'बुध' 'चंद्रमास' मीगोयंद। व आस्माने कि जमी'अ सवाबित दर आं अंद आं रा हश्तुम मीदानंद व हमीं आस्मान रा हुकमा फ़लके हश्तुम व फ़लके सवाबित मीगोयंद कि बज़ुबाने अह्ले शरअ कुर्सी अस्त **व सि-अ कुर्सिय्युहुस्समावाति वल्अर्ज़**[1] या'नी आस्मानहा व ज़मीनहा दर 'कुर्सी' मीगंजन्द व 'नहुम' कि आं रा 'महा अकास' मीगोयंद दाख़िले आस्मानहा नकर्दः अंद जिहत आं कि आं मुहीते हमः अस्त व कुर्सी व आस्मानहा व ज़मीनहा रा अहातः कर्दः अस्त।

१६. बयाने ज़मीन

ज़मीन निज़्दे अह्ले हिन्द हफ़्त तब्क़ः अस्त कि आं रा 'सप्त ताल' मीगोयंद व हर तब्क़ः ईं यक नाम दारद, 'अतल', 'बतल', 'सुतल', 'तलातल', 'महातल', 'रसातल' व 'पाताल'। बतौर अह्ले इस्लाम नीज़ ज़मीन

---

१. क़ुरआन २ : २५५

हफ़्त अस्त ब मूजिबे आयए करीमः **अल्लाहुल्लज़ी ख़-ल-क़ सब्-अ समावातिव्-व मिनल् अर्ज़ि मिस्-लहुन-न**[1] या'नी अल्लाह तआला आं ख़ुदायस्त कि ख़ल्क़ गर्दानीद हफ़्त आस्मानहा रा व अज़ ज़मीन हम मानिंद आं आस्मानहा।

१७. बयाने क़िस्मते ज़मीन

रुबअ मस्कून रा हुकमा बहफ़्त तब्क़ः क़िस्मत कर्दः अंद व हफ़्त इक़्लीम मीगोयंद व अह्ले हिन्द आं रा 'सप्तदीप' मीनामंद व ईं हफ़्त तबक़ए ज़मीन रा बर रूए ज़मीन हम मिस्ले पोस्ते प्याज़ नमीदानंद बल्कि बमरातिब मिस्ले पायःहा-ए-नर्दबान तसव्वुर मीकुनंद। व हफ़्त कोह रा कि अह्ले हिन्द आंहा रा 'सप्त कुलाचल' गोयंद बर गिर्दे हर ज़मीने कोहे रा मुहीत मीदानंद व नामे कोहहा ईंस्त, अव्वल 'सुमेरु' दुउम 'समूपत', सिउम, 'हिमकूत', चहारुम 'हिमवन', पंजुम 'मकदा' शशम 'पारजात्र' हफ़्तम 'कैलास'। चुनांचे दर आयए करीमः **वल्जिबा-ल औतादन्**[2] वाक़े अस्त या'नी (गर्दानीदेम) कोहहा रा मेख़हाए ज़मीन। व बर गिर्द हर यके अंज़ आं हफ़्त कोह हफ़्त दरिया अंद कि मुहीते हर कोह अंद व आं रा 'सप्त समुंदर' मीगोयंद व नामहाए ईं हफ़्त दरिया ईं अंद अव्वल 'लोन समुंदर' या'नी दरियाए शोर, दुउम 'उंछ रस समुंदर' या'नी दरयाए आब नैशकर, सिउम 'सुरा समुंदर' या'नी दरियाए शराब, चहारुम 'घृत समुंदर' या'नी दरियाए रौग़ने ज़र्द, पंजुम 'दध समुंदर' या'नी दरियाए जुग़रात, शशम 'खीर समुंदर' या'नी दरियाए शीर, हफ़्तुम 'स्वाद जल' या'नी दरियाए आबे ज़ुलाल। व बूदने दरिया ब अददे हफ़्त अज़ीं आयः मा'लूम मीशवद। व **लौ अन्-न मा फ़िल्अर्ज़ि मिन् श-ज-रतिन् अक़्-लामुव्वल्बह्रु यमुद्दुहू मिम्बअ-दिही सब-अतु अब्हुरिम-मा नफ़िदत् कलिमातुल्लाहि**[3] या'नी बदुरुस्तीकि अज़ दरख़्तां कि बर ज़मीन अंद क़लमहा शवद व आं हफ़्त दरियाहा स्याही शवंद तमाम नमीशवद कलमाते ख़ुदा या'नी मुक़द्दराते ख़ुदा व दर हर ज़मीने व कोहे व दरिया-ए-अक़्सामे मख़्लूक़ात हस्तंद। व ज़मीन व कोह व दरिया कि फ़ौक़े हमः ज़मीनहा व

---

१. क़ुरआन ६५ : १२

२. क़ुरआन ७८ : ७

३. क़ुरआन ३१ : २७

कोहहा व दरियाहा अस्त बतौर मुहक़्क़िकाने हिन्द आं रा 'स्वर्ग' रव्वानंद कि बहिश्त व जन्नत बाशद। व ज़मीन व दरिया कि तहते हमः ज़मीनहा व कोहहा व दरियाहास्त आंरा 'नरक' गोयंद कि इबारत अज़ दोज़ख़ अस्त व जहन्नम। व तह्क़ीक़े मुवह्हिदाने हिन्द अस्त कि बहिश्त व दोज़ख़ अज़ हमीं आलम कि आं रा 'बर्हमांद' गोयंद ख़ारिज नेस्त, व ई हफ़्त आस्मान रा कि मुक़िर्रे ईं हफ़्ते सितारः अंद, मीगोयंद कि, बर गिर्दे बहिश्त मीगर्दंद न बर बालाए बहिश्त। व सक़्फ़े बहिश्त रा 'मन आकास' मीदानंद कि अर्श बाशद व ज़मीने बहिश्त रा कुर्सी।

१८. बयाने आलमे बर्ज़ख़

पैग़म्बर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम फ़र्मूदः **मन माता फ़क़द क़ामा क़यामतुहू** या'नी शख़्से कि मुर्द पस तह्क़ीक़ कि क़ायम शुद क़यामते ऊ। व बा'द अज़ मौत 'आत्मा' कि रूह बाशद अज़ बदने उंसुरी मुफ़ारक़त नमूदः बेतख़ल्लुले ज़मां बबदने 'मुक्त' कि आं रा 'सूछम-सरीर' गोयंद दर मीआयद व आं बदने लतीफ़ अस्त कि अज़ अमल सूरत गिरफ़्तः बाशद। अमले नेक रा सूरते नेक व अमले बद रा सूरते बद। व बा'द अज़ सवाल व जवाब बेदरंग व बेतवक़्क़ुफ़ अह्ले बहिश्त रा ब बहिश्त व अह्ले दोज़ख़ रा ब दोज़ख़ मीबुरंद, मुआफ़िक़ ईं आयए करीमः **फ़-अम्मल्लज़ी-न शक़ू फ़फ़िन्नारि लहुम् फ़ीहा जफ़ीरुव-व शहीक़ ख़ालिदी-न फ़ीहा मा दामतिस्-समावातु वल्अरज़ु इल्ला मा शा-अ रब्बु-क इन्-न् रब्ब-क फ़अ-आलुल्लिमा युरीद व अम्मल्लज़ी-न सुअ़िदू फ़फ़िल्जन्नति ख़ालिदी-न फ़ीहा मा दामतिस्-समावातु वल्-अर्ज़ु इल्ला मा शा-अरब्बु-क अ़ता-अन् ग़ै-र मज़्ज़ूज़**[1] या'नी आनांकि बदबख़्त शुदः अंद दर आतश अंद मर ईशां रा दर आतश फ़रयाद व नालः व ज़ारी ए जाविदां बाशद दर आं आतश ता हंगामे कि आस्मानहा व ज़मीनहास्त मगर आंचि ख़्वाहद पर्वर्दिगारे तू। बदुरुस्तीकि पर्वर्दिगारे तू कुनंदः अस्त हर चीज़े रा कि रव्वाहद व आनांकि नेक बख़्त दर बहिश्त अंद हमेशः ता हंगामे कि बाशंद आस्मानहा व ज़मीनहां मगर ता वक़्ते कि रव्वाहद पर्वर्दिगारे तू कि आंहा रा अज़ आंजा बर आरद व बख़्शिशे ऊ बेनिहायत अस्त। बर आवुर्दन अज़ दोज़ख़ आं बाशद कि पेश अज़ बर तरफ़

---

१. क़ुरआन ११ : १०६, ७, ८

शुदने आस्मानहा व ज़मीनहा अगर रव्वाहद अज़ दोज़ख़ बर आवुर्दः ब बहिश्त बुरद व इब्नेमसऊद रज़ि अल्लाहु अनहु दर तफ़्सीर ई आयः फ़र्मूदः कि **ल आतियन्ना अला जहन्नमा ज़मानो लैसा फ़ीहा अहदु व ज़ालिका बा'दा मा यमसकूना फ़ीहा आ क़ाबा** या'नी मीआयद बर दोज़ख़े ज़मीनी कि न बाशद हेचकस अज़ दोज़ख़ियान दरआं बा'द अज़ आं कि मुद्दते तवील दर आं मांदः बाशंद। व बर आवुर्दने अह्ले बहिश्त रा अज़ बहिश्त आं बाशद कि पेश अज़ बरतरफ़ शुदने आस्मानहा व ज़मीनहा अगर ख़ुदा रव्वाहद ईशां रा दर फिर्दोसे आला दर आरद कि अताए ऊ बेनिहायत अस्त व नीज़ अज़ीं आयए करीमः साबित शुदः, **मिनल्लाहि अक्बरु ज़ालि-क हुवल्-फ़ौज़ुल-अज़ीम**[1] या'नी अल्लाह तआला रा बहिश्ती अस्त बुज़ुर्गतर अज़ बहिश्तहा कि अह्ले हिन्द आं रा 'बेकुण्ठ' गोयंद व ईं बुज़ुर्गतरीन रुस्तगारीस्त बतौरे मुवह्दिदाने हिन्द।

१९. बयाने क़ियामत

बतौरे मुवह्दिदाने हिन्द ईंस्त कि बा'द अज़ बुर्दन दर दोज़ख़ व बहिश्त चूं मुद्दतहा-ए-तवील बगुज़रद 'महा पर्ली' शवद कि इबारत अज़ क़ियामते कुब्रा अस्त कि अज़ आयए करीमः **फ़-इज़ा जा-अतित्-ताम्मतुल-कुब्रा**[2], या'नी बवक़्ते कि बियाइद क़ियामते कुब्रा मफ़्हूम मीशवद व अज़ीं आयः नीज़ मा'लूम मीशवद व **नुफ़ि-ख फ़िस्सूरि फ़ि-क़ मन् फ़िस्-समावाति व मन् फ़िल्अर्ज़ि इल्ला मन् शा-अल्लाहु**[3] या'नी वक़्ते कि दमीदः मीशवद सूर पस बेहोश मीशवद हर कि दर आस्मानहा व ज़मीनहा स्त मगर शख़्शे रा कि रव्वास्तः बाशद ख़ुदाए तआला अज़ बेहोश शुदन निगाह दारद व आं जमाअते आरिफ़ान बाशद कि मह्फ़ूज़ अंद अज़ बेहोशी व बेख़बरी हम दर दुनिया व हम दर आख़िरत। व बा'द अज़ बरतरफ़ शुदने आस्मानहा व ज़मीनहा व फ़ानी शुदने दोज़ख़हा व बहिश्तहा व तमाम शुदने मुद्दते उम्रे 'बर्ह्मांद' व न बुर्दने 'बर्ह्मांद' अह्ले बहिश्त व दोज़ख़ रा 'मुक्त' रव्वाहद शुद, या'नी हर दो दर हज़्रते ज़ात मुस्तह्लक व मह्व शवंद। बमूजिबे

---

१. क़ुरआन ९ : ७२

२. क़ुरआन ७९ : ३४

३. क़ुरआन ३९ : ६८

ईं आयः **कुल्लु मन् अलैहा फ़ानि-व् व यब्क़ा वज्हु रब्बिक ज़ुल्जलालि व-इक्रामि।**[१]

२०. बयाने मुक्त

'मुक्त' इबारत अज़ इस्तेहलाक व मह्व शुदने ताय्युनात बाशद दर हज़रते ज़ात कि अज़ आयए करीमः **व रिज़वानुम्-मिनल्लाहि अकबर ज़ालि-क हुवल-फ़ौजुल्-अज़ीमु**[२] ज़ाहिर मीशवद व दाख़िल शुदन दर रिज़वाने अकबर कि फ़िर्दौसे आ'ला बाशद रुस्तगारीए बुज़ुर्ग अस्त कि 'मुक्त' बाशद व 'मुक्त' बर सिह क़िस्म अस्त। अव्वल 'जीवन्मुक्त' या'नी रुस्तगारी दर ज़िन्दगानी व 'जीवन्मुक्त' निज़्दे ईशां आनस्त कि दर अय्यामे हयाते ख़ुद बदौलते इर्फ़ान व शनासाइ-ए-हक़्क़े तआला रुस्तगार व ख़लास बाशद व दर हमीं जहां हमः चीज़ रा यके बीनद व यके दानद व एमाल व अफ़्आल व हर्कात व सक्नात व नेक व बद रा निस्बत बख़ुद व बग़ैर न कुनद व खुद रा बा जमीअ अश्याए मौजूदः ऐने हक़ शनासद व दर हमः मरातिब हक़ रा जल्वःगर दानद व तमाम 'बर्ह्मांद' रा कि सूफ़ियाए कराम आं रा आलमे कुब्रा गुफ़्तः अंद व सूरते कुल्लियाते ख़ुदास्त बमंज़िलः-ए-बदने ज़िस्मानिए खुदा गर्दानद। 'उन्सुरे आज़म' कि 'महाअकास' बाशद बमंज़िलः-ए-'सूछम सरीर', या'नी बदने लतीफ़े ख़ुदा, व ज़ात ख़ुदा बमंज़िलः-ए-रूहे-आं बदन, व आं रा यक शख़्से मुअय्यन दानिस्तः अज़ ज़र्रा ता बकोह बा अवालिमे ज़ाहिर व बातिन सू-ए-ज़ाते आं यगानाए बेहमता न बीनद व नदानद। चुनां कि यक इन्सान कि ऊ रा आलमे सग़ीर गुफ़्तः अंद ब इख़्तलाफ़े अज्वहाए मुख़्तलिफ़े मुतकस्सिरः यक फ़र्द अस्त व बकस्रते आज़ा ज़ाते ऊ मुतअद्दिद नेस्त, आं ज़ाते वाहिद रा नीज़ बकस्रत ताय्युनात मुतअद्दिद न शनासद।

बैत

जहां यकसर चि अर्वाहो चि अज्साम
बुवद शख़्से मुअय्यन आलमश नाम

पस हक़ सुब्हानहू तआला रा रूह व जाने ईं शख़्से मुअय्यन दानद कि अज़ हेच सरे मूए जुदा नेस्त। चुनांचे शेख़ सअदुद्दीन हम्वी फ़र्मायद, रुबाई

---

१. क़ुरआन ९ : ७२
२. क़ुरआन ५५ : २६,२७

हक़ जाने जहानस्तो जहां जुम्ला बदन
अर्वाहो मलायक व हवास ईं हमः तन
अफ़्लाको अनासिरो मवालीदो आज़ा
तौहीद हमीनस्तो दिगर शेवः ओ फ़न

व हमचुनीं मुवह्हिदाने हिन्द मिस्ल 'ब्यास' वग़ैरः तमाम 'बर्ह्मांद' रा कि आलमे कबीर अस्त शख़्से वाहिद दानिस्तः अज़्वहाए बदने ऊ रा चुनीं बयान नमूदः अंद बजहते आं कि सूफ़ीए साफ़ी दर हर वक़्त बर हर चि नज़र कुनद बदानद कि बर फलां अज़्वे 'महापुरस' कि ईंजा इबारत अज़ ज़ाते हक़ सुब्हानहू तआला अस्त नज़र दाश्तम।

'पाताल' कि तब्क़ए हफ़्तमे ज़मीन बाशद क़फ़े पाए 'महापुरस' अस्त, 'रसतल' कि तब्क़ए शशुमे ज़मीन बाशद पुश्ते पाए 'महापुरस' अस्त, व शयातीन अंगुश्तहाए पाए 'महापुरस' अंद व जानवराने सवारीए शैतान नाख़ुनहाए पाए 'महापुरस' अंद। 'महातल' कि तब्क़ए पंजुमे ज़मीन अस्त शितालंगे 'महापुरस' अस्त। 'तलातल' कि तब्क़ए चहारुमे ज़मीन बुवद साक़े 'महापुरस' अस्त। 'सुतल' कि तबक़ए सियुमे ज़मीन बाशद ज़ानूए 'महापुरस' अस्त। 'बतल' कि तब्क़ए दुउमे ज़मीन अस्त राने 'महापुरस' अस्त। 'अतल' कि तब्क़ए अव्वले ज़मीन अस्त अज़्वे मख़्सूसे 'महापुरस' अस्त। 'काल' या'नी ज़मानः रफ़्तारे 'महापुरस' अस्त। 'परजांत' देवता कि बाइसे तवालुद व तनासुले तमाम आलम अस्त अलामते मर्दी व क़ुव्वते रजूलियते 'महापुरस' अस्त। बारां नुत्फ़ए 'महापुरस' अस्त। 'भूलोक' या'नी अज़ ज़मीन ता आस्मान पाईन नाफ़े 'महापुरस' अस्त। सिह कोहे जनूबी दस्ते रास्ते 'महापुरस' अस्त व सिह कोहे शिमाली दस्ते चपे 'महापुरस' अस्त व 'सुमेर परत' सुरीने 'महापुरस' अस्त। रौशनीए सुब्हे क़ाज़िब तारे मग़्ज़िये जामए 'महापुरस' अस्त, रौशनीए सुब्हे सादिक़ रंगे सफ़ेदे जामए चादरे 'महापुरस' अस्त (कि अल् कि बरिआए रिदाई इशारः बआं मीकुनद) व वक़्ते शाम कि रंगे शफ़क़ दारद पारचए सतरे औरते 'महापुरस' अस्त (कि अल्अज़मतो एज़ारी किनायः बआं मीकुनद)। समंदर या'नी बह्रे मुहीत हल्क़ः व अमुक़ नाफ़े 'महापुरस' अस्त। व 'बदवानल' मकाने आतशेस्त कि आबे हफ़्त दरिया रा हाला हम जज़्ब मीकुनद व तुग़ियान शुदन नमीदहद व दर क़ियामते कुब्रा तमाम आब रा ख़ुश्क़ रव्वाहद कर्द व ईं हरारत व गर्मिए मादए 'महापुरस' अस्त, व

दरियाहाए दीगर रगहाए 'महापुरस' अस्तः, व चुनां कि हमः रगहा बनाफ़ मीरसद हमः दरियाहा ब समुन्दर मुन्तही मीगर्दद। 'गंगा' व 'जमना' व 'सरस्ती' शहरगे 'महापुरस' अस्त। 'इंकला' जमनान 'बेकला' 'जमूना', 'सुखुम्ना' 'सरस्ती' 'भूलोक' कि बालाए 'भूलोक' अस्त व देवतहाए। 'गंध्रप' आंजा मीबाशंद व आवाज़ अज़ आंजा बर मीख़ेजद शिक्मे 'महापुरस' अस्त। आतशे क़ियामते सुग़रा इश्तिहाए हाज़िरीए 'महापुरस' अस्त, व ख़ुश्क़ शुदने आबहा दर क़ियामते सुग्ररा तिश्नगी (व आब ख़ुर्दने) 'महापुरस' अस्त। 'सर्ग लोक' कि बालाए 'भूलोक' अस्त व तब्क़ए इस्त अज़ तब्क़ाते बहिश्त सीनए 'महापुरस' अस्त कि हमेशः शादी व ख़ुशहाली व आराम दरूस्त। व ज़मीअ सितारहा अज़ अक़्साम जवाहिरे 'महापुरस' अस्त। बख़्शिशे पेश अज़ सवाल कि जूद व फ़ज़्ल अस्त पिस्ताने रास्त व बख़्शिश बा'द अज़ सवाल कि अतास्त पिस्ताने चपे 'महापुरस' अस्त। व एतदाल कि 'रजोगुन' व 'सतोगुन' व 'तमोगुन' बाशंद व आं रा 'परकरत' गोयंद दिले 'महापुरस' अस्त। व चुनांकि कंवले सिह रंग दारद, सफ़ेद व सुर्ख़ व बनफ़्श, दिल हम कि बसूरते कंवल अस्त सिह सिफ़त दारद, व ईं अज़ सिह रंगे ज़हूर अस्त, कि 'बर्म्हा' व 'बिशुन' व 'महेश' बाशंद। 'बर्म्हा' कि 'मन' हम नाम दारद हरकत व इरादए दिले 'महापुरस' अस्त, 'बिशुन' रहम व मेह्रे 'महापुरस' अस्त, 'महेश' क़हर व ग़ज़बे 'महापुरस' अस्त। माह तबस्सुम व ख़ुशहालीए 'महापुरस' अस्त कि हरारते अलम व अंदोह रा बरतरफ़ मीसाज़द व शब कमाने 'महापुरस' अस्त। कोह 'सुमेर परत' उस्तुरव्वाने मियाने पुश्ते 'महापुरस' अस्त। व कोहहाए दस्ते रास्त व चपे समर (सुमेर?) उस्तुरव्वाने फर्हाए (?) बा'नी पसलीहाए 'महापुरस' अस्त, व हश्त फ़िरिश्तः कि कोतवाल अंद व 'इन्दर' कि सरदारे आंहास्त व कमाले क़ुव्वत दारद व बख़्शीदन व बारीदन न बख़्शीदन व नबारीदन मुत'ल्लिक़ ब ऊस्त हर दो दस्ते 'महापुरस' अंद, दस्ते रास्त बख़्शिश व बारिश व दस्ते चप इमसाके बख़्शिशे 'महापुरस' अस्त। 'अमछरा' कि हूराने बहिश्त अंद ख़ुतूते कफ़े दस्ते 'महापुरस' अस्त व फ़िरिश्तहा कि आंरा 'चच्छा' मीनामंद नाख़ुनहाए दस्ते 'महापुरस' अस्त। सिह फ़रिश्तए 'लोकपाल' दस्ते रास्ते 'महापुरस' अस्त, (अज़ बंद दस्त ता अंज अगन नाम फ़िरिश्तः) व 'जम' फ़िरिश्तः बाजूए 'महापुरस' अस्त व 'लोकपाल' फ़िरिश्तः दस्ते चपे महापुरस अस्त, 'कुबेर' फ़रिश्तः ज़ानूए पाए 'महापुरस' अस्त।

व 'कल्प ब्रछ' कि तूबा बाशद अताए 'महापुरस' अस्त। क़ुत्बे जनूबी कत्फ़े रास्त व क़ुत्बे शिमाली कत्फ़े चपे 'महापुरस' अस्त व 'बरुन' नाम फ़िरिश्तए लोकपाल कि मवक्किले आब अस्त व दर सम्ते मग़्रिब मीबाशद मुह्वे गर्दने 'महापुरस' अस्त, 'अनाहत' कि सुल्तानुल् अज़कार अस्त आवाज़े बारीक 'महापुरस' अस्त। 'महर्लोक' कि बालाए 'सर्गलोक' अस्त गुलू व गर्दने 'महापुरस' अस्त। 'जनलोक' कि बालाए 'महर्लोक' अस्त रूए मुबारके 'महापुरस' अस्त, रव्वाहिशे आलम ज़नख़े महापुरस' अस्त। 'तमा' कि दर आलम अस्त लबे पाईने 'महापुरस' अस्त शर्म व हया लबे बालाए 'महापुरस' अस्त, सीनः या'नी मुहब्बत व उल्फ़ते बुने दंदानहाए 'महापुरस' अस्त व ख़ुरिशे हमः आलम ख़ुराके 'महापुरस' अस्त, उन्सुरे आब काम व दहने 'महापुरस' अस्त, उन्सुरे आतश ज़ुबाने 'महापुरस' अस्त, 'सरस्ती' क़ुव्वते नातिक़ए 'महापुरस' व चार 'बेद' या'नी चार कि ताबे सिद्क़ व रास्ती गुफ़्तारे 'महापुरस' अस्त, 'माया' या'नी इश्क़ कि बाइसे ईजादे आलम अस्त खंदः व खुश तबईए 'महापुरस' अस्त व हश्त ज़ेहते आलम हर दो गोशे 'महापुरस' अस्त, 'अशनी कुमार' कि दो फ़िरिश्तः दर कमाले हुस्न अंद हर दो पर्एए बीनीए 'महापुरस' अंद, 'गंध' तन्मातर 'या'नी उन्सुरे ख़ाक क़ुव्वते शम्मए 'महापुरस' अस्त। उन्सुरे बाद नफ़स ज़दने 'महापुरस' अस्त, मियाने 'जनलोक' व 'तपलोक' कि तब्क़हाए पंजुम व शशुमे बहिश्त अस्त व अज़ नूरे ज़ात पुर अस्त निस्फ़ जुनूबीए आं चश्म रास्त व निस्फ़ शिमालीए आं चश्मे चपे 'महापुरस' अस्त। व अस्ले नूर कि आं रा आफ़्ताबे अज़ली गोयंद क़ुव्वते बीनाईए 'महापुरस' अस्त। तमाम आफ़रीनश निगाहे लुत्फ़े 'महापुरस' अस्त, रोज़ व शबे आलम चश्म बरहम ज़दने 'महापुरस' अस्त। 'मितर' नाम फ़िरिश्तः कि मवक्क़िल दोस्ती व मुहब्बत अस्त व 'तुस्ता' नाम फ़िरिश्तः कि मवक्क़िल क़हर व ग़ज़ब अस्त, हर दो अब्रूए 'महापुरस' अस्त। 'पित लोक' कि बालाए 'जनलोक' अस्त पेशानीए 'महापुरस' अस्त। व 'लोक' कि बालाए हमः लोकहास्त कासए सरे 'महापुरस' अस्त। आयाते तौहीद व किताबे अल्लाह उम्मुल्दिमाग़े 'महापुरस' अस्त। अब्रहाए स्याह कि बाराने 'महा पर्ली' दारद मूए सरे 'महापुरस' अस्त, व नबाताते हमः कोहहा मूए बदने 'महापुरस' अस्त, 'लछमी' कि दौलत व ख़ूबीए आलम अस्त हुस्ने 'महापुरस' अस्त। आफ़्ताबे दरख़्शां सफ़ाए बदने 'महापुरस' अस्त, 'भूत अकास' मसामात बदने 'महापुरस' अस्त, चिद अकास' रूहे बदने 'महापुरस' अस्त, सूरते हरफ़र्दे

इंसान ख़ानए 'महापुरस' अस्त, इंसाने कामिल ख़ल्वतख़ानः व महल्ले ख़ासे 'महापुरस' अस्त, चुनांचे बफ़र्मूद ब दाऊद अलैहिस्सलाम कि अय दाऊद, बराए मन ख़ानए बिसाज़ गुफ़्त ख़ुदावंदा तू मुनज़्ज़ही अज़ ख़ानः, फर्मूद ख़ानए मन तूए दिल रा अज़ ग़ैर ख़ाली कुन। व हर चि दरीं 'बर्ह्मांद' बर सबीले तफ़सील अस्त दर इन्सान कि नुस्ख़ए आलमे कबीर अस्त ब तरीक़े अजमाल हममौजूद अस्त, कसे कि चुनीं दानद व बीनद ऊरास्त 'जीवन्मुक्त' व दर हक़्क़े ऊस्त आयए करीमः **फ़रिही-न बिमा आताहुमुल्लाहु मिन् फ़ज़्लिही**[१] या'नी ख़ुशहाल अंद आं जमाअत ब आंचि दादः अस्त ईशां रा ख़ुदाए तआला अज़ फ़ज़्ले ख़ुद।

दुउम 'सर्बमुक्त' या'नी रुस्तगारीए हमः ब आं इस्तेहलाक दर ज़ात स्त व आं शामिले हमः मौजूदात अस्त व बा'द अज़ क़ियामते कुब्रा व फ़नाए आस्मां व ज़मीन व बहिश्त व दोज़ख़ व न बूदने 'बर्ह्मांद' व न बूदने रोज़ व शब अज़ महव्वित (महाबित?) दर जाते रूस्तगार व ख़लास बाशंद व आयए करीमः व **रिज़्वानुम्-मिनल्लाहि अक्बरु ज़ालि-क हुवल्-फ़ौज़ुल-अज़ीम**[२], **अला इन्-न औलिया-अल्लाहि ला ख़ौफ़ुन् अलैहिम् व ला हुम् यह्ज़नून**।[३] या'नी बदुरुस्ती कि आरिफ़ाने ख़ुदा रा नेस्त तरसे व नेस्तंद आंहा अंदोहगीं इशारः बहमीं मुक्त अस्त।

सिउम - 'सर्वदा मुक्त' या'नी रुस्तगारी-ए-पस्न। 'सर्वदा मुक्त' आं बाशद कि दर हर मर्तबः कि सैर कुनद रव्वाह दर रोज़ रव्वाह दर शब रव्वाह दर आलमे बातिन रव्वाह दर आलमे ज़ाहिर रव्वाह 'बर्ह्मांद' नुमायद रव्वाह न नुमायद व रव्वाह दर माज़ी रव्वाह हाल व रव्वाह दर मुस्तक़्बिल कि 'भूत भविशत बर्तमान' गोयंद आरिफ़ व रुस्तगार व ख़लास बाशद। व हर जा कि दर आयाते क़ुरआनी दर बाबे बूदन दर जन्नत **ख़ालिदी-न फ़ीहा अ-ब-दन्**[४] वाक़े' शुदः या'नी हमेशः रव्वाहंद बूद दर आं बहिश्त मुराद अज़ जन्नत मा'रिफ़त अस्त व मुराद अज़ लफ़्ज़ अबदा अबदिय्यते ईं मुक्त अस्त, चि दर हर नश्अ कि बाशद ईस्त'दादे मारिफ़ते इनायाते अज़ली दरकार अस्त। चुनांचे ईं दो आयए करीमः दर बाबे ईं चुनीं जमाअत वारिद अस्त **युबश्शिरुहुम्**

---

१. क़ुरआन ३ : १७०
२. कुरआन ९ : ७२
३. क़ुरआन १० : ६२
४. कुरआन ४ : २२

रब्बुहुम् बिरह्मतिम्मिन्हु व रिज़्वानिव्-व जन्नातिलनहुम् फ़ीहा नअीमुम्मुक़ीम ख़ालिदी-न फ़ीहा अ-व-दन् इन्नल्ला-ह अिन्दहू अज्रुन अज़ीम[1] या'नी मुज़दः मीदहद ईशां रा पर्वर्दिगारे ईशां बरहमती अज़ ख़ुद व मुज़दः मीदहद बफिर्दौसे आ'ला व बहिश्तहा कि मर ईशां रास्त दरां बहिश्तहा ने'मतहाए दायमी व रुस्तगारीए बेइन्क़ितअ अज़ नज़दीके हक़्क़े तआला बदुरुस्ती कि मुज्देस्त बुज़ुर्ग। व नीज़ आयए करीमए दीगर व **युबश्शिरल्-मुअ्मिनीनल्लजी-न यअ्-मलूनस-सालिहाति अन्-न लहुम् अज्-रन् ह-स-नम् माकिसी-न फ़ीहि अ-ब-दव्**[2] या'नी मुज़दः बदहेद (पैग़म्बर सल्ल०) मोमिनां रा कि अमल मीकुनंद नेक कि हसूल मा'रिफ़ते हक़ सुब्हानहू तआला बाशद व बदुरुस्ती कि मर आरिफ़ानरास्त मुज्दिए नेको कि फ़िर्दोसे आ'ला बाशद व दरंग कुनंदगान बाशंद व हमेशः मानंदगान अन्दराने फ़िर्दौसे आ'ला।

२१. बयाने रोज़ व शब

उलूहिय्यते ज़ुहूर व बुतून। बतौरे मुवह्दिदाने हिन्द उम्र 'बर्ह्मा' कि जिब्रील बाशद व फ़नाए 'बर्ह्मांद' व तमामे रोज़ ज़हूर कि रोज़े उलूहिय्यत बाशद हिज़्दः आंज साले दुनिया स्त कि हर 'आंजे' हज़ार साले दुनिया बाशद बमूज़िबे ईं दो आयए करीमः **व इन्-न यौमन् अिन्-द रब्बि-क क-अल्फ़ स-नतिम्मिम्मा त-अुद्दून**[3] या'नी बदुरुस्ती कि रोज़े स्त निज़्द पर्वर्दगारे तू मानंद हज़ार साल कि मीशुमारंद अह्ले दुनिया व आयए करीमः **वर्रूहु इलैहि फ़ी यौमिन् का-न मिक़्दारुहू ख़म्सी-न अल् - फ़ सनतिन्**[4] या'नी राजे' मीशवंद बसूए पर्वर्दिगारे खुद फ़रिश्तगान व रूह कि इबारत अज़ जिब्रील व 'बर्ह्मा' स्त दर रोज़े कि मिक़्दारे आं रोज़ पंजाह हज़ार साल व हर रोज़ अज़ीं पंजाह हज़ार अज़ हज़ार साल मुतआरिफ़ अस्त कि दर आयए अव्वल बआं तसरीह शुदः। पस मुद्दते उम्र ज़िब्रील व मुद्दते उम्रे रोज़ व उम्रे तमामीए आलम कि 'बर्ह्मांद' बाशद हिसाब मीकुनम हेजदह अंज साल दुनिया बाशद व हर अंजे हज़ार साल बाशद बे कम व ज़्याद। मुताबिक़े हिसाबे मुवह्दिदाने हिंद। व बिदां कि ख़ुसूसियते आदाद हिज्दः निज़्द ईशां मुन्हसर बर हश्त दह

---

१. क़ुरआन ९ : २१, २
२. क़ुरआन १८ : २, ३
३. क़ुरआन २२ : ४७
४. क़ुरआन ७० : ४

अस्त व अज़ीं बालातर मर्तबः-ए-शुमार क़रार न दादः अंद व क़ियामतहाए सुग़्रा कि दरीं मियान गुज़श्तः अंद व रव्वाहंद गुज़श्त आं क़ियामतहा रा 'खंदा पर्ली' मीगोयंद मिस्ले तूफ़ाने आब या तूफ़ाने आतश या तूफ़ाने बाद, व चूं ईं मुद्दत तमाम गर्दद ईं रोज़ शाम शवद व क़ियामते कुब्रा रव्वाहद शुद कि आं रा 'महापर्ली' गोयंद बहुक्मे ईं दो आयते करीमः **यौ-म तुबद्दलुल्-अरज़ु ग़ैरल् अर्ज़ि**[1] या'नी रोज़े कि बदल कर्दः शवद ज़मीं रा बग़ैर ज़मीन व **यौ-म नत्विस्-समा-अ क-तय्यिस्-सिजिल्लि लिल्कुतुबि**[2] या'नी रोज़े कि पेचेम आस्मां रा मानिंदे काग़ज़ बराए किताबत। व बाद अज़ क़ियामते कुब्रा दर शबे बुतून कि दर बराबरे रोज़े ज़ुहूर अस्त व इस्तेहलाके जमीअ तअय्युनात दर हज़रते ज़ात रव्वाहद शुद नीज़ हिज्दः साल अंज दुनिया स्त। 'अवस्थानम' कि इबारत अज़ 'सुखूपत' व जबरूत अस्त। मुद्दते ई सुखूपत हज़्रते ज़ाते अस्त कि ऊ रा फ़राग़ अस्त अज़ ईजादे ख़ल्क़ व एदामे आलम व आयए करीमः **स-नफ़्रुगु लकुम् अय्यु-हस्स-क़लानि**[3] या'नी ज़ूद अस्त कि फ़ारिग़ मीशवेम अज़ शुमा ऐ जिन व इंस इशारः बईं 'सुखूपत' अस्त, व हज़्रते ज़ात दर अय्यामे ज़ुहूरे आलम दर मुक़ामे 'नासूत' अस्त व दर क़ियामतहाए सुग़्रा दर मुक़ामे मलकूत व बा'द अज़ क़ियामते कुब्रा दर मुक़ामे जबरूत।

ऐ अज़ीज़ आंचि दरीं बाब नविश्तः शुदः बा'द अज़ दिक़्क़ते तमाम व तह्क़ीक़े बिस्यार मुताबिक़े कश्फ़े ख़ुद अस्त व ईं कश्फ़ ब ईं दो आयए करीमः मुताबिक़ उफ़्ताद व ब आंकि तू दर हेच किताबे न दीदः व अज़ हेचकस न शुनीदः। अगर बर गोशे बा'ज़े अज़ नाक़िसान गिरां आयद मा रा अज़ीं मा'नी बाक़ी नेस्त **फ़ इन्नल्ला-ह ग़निय्युन् अनिल् आलमीन।**[4]

२२. बयान बेनिहायतीए अदवार

निज़्दे मुहक़्क़िक़ाने अह्ले हिन्द हक़्क़े तआला रा न हमीं यक शब अस्त व यक रोज़ बल्कि ई शब कि तमाम शवद बाज़ रोज़ मीशवद व रोज़ कि आख़िर शवद शब मीआयद।

१. क़ुरआन १४ : ४८
२. क़ुरआन २१ : १०४
३. क़ुरआन ५५ : ३१
४. क़ुरआन ३ : ९७

एला ग़ैरिन् निहायता ब ईं रा 'अनाद परवाह' मीगोयंद। रव्वाजः हाफ़िज़ अलैह रहमतिहि इशारः ब हमीं बेनिहायतीए अदबार नमूदः गुफ़्तः अस्त,

माजराए मनो मा'शूक़े मरा पायां नेस्त,
हरचि आग़ाज़ न दारद न पिजीरद अंजाम

व हरचि अज़ ख़ुसूसियते ज़ुहूरे ज़ात व मरिफ़यात दर रोज़ व शब पेशीं शुदः बे कम व बेश दर रोज़ ब शबे दीगर बऐनिही औद कुनद वमूजिबे आयए करीमः **कमा ब-दअ्-ना अव्व-ल ख़ल्क़िन् नु औदुहू**[1] या'नी चुनांकि ज़ाहिर गर्दानीदेम दर अव्वले खिलक़त मौजूदातीए रा कि मा'दूम गश्तः बूद पस बा'द अज़ तमाम शुदने (ईं) दौरः बाज़ आलमे अबुल बशर आदम अलैहिस्सलाम ब ऐनिही पैदः शवद व लायज़ाल चुनीं बाशद व आयए करीमः **कमा ब-द-अकुम् त-अूद्दून**[2] नीज़ दलालत बंईं म'आनी मीकुनद या'नी चुनां कि अव्वल शुमा रा पैदा कर्द। बाज़ हमां तौर पैदा कुनेम। अगर कसे शुब्हः कुनद कि खातमीय्यते पैग़म्बरे मा सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम अज़ीं शाबित न मीशवद मीगोयेम कि दर रोज़े दीगर नीज़ पैग़म्बर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ब ऐनिही मौजूद रव्वाहद गर्दीद व ख़ातिमे पैग़म्बराने आं रोज़ रव्वाहद गर्दीद व ईं हदीस शबे मिअराज़ नीज़ दलालत बर हमीं मा'नी मीकुनद। मीगोयंद कि पैग़म्बर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम क़तारें शुतुरां रा दीद कि लायन्क़तअ मीरवंद व बर हर यके दो संदूक़ बार अस्त व दर हर सन्दूक़ आलमे अस्त मिस्ले हमीं आलम व दर हर आलम मिस्ल ख़ुद मुहम्मदी। अज़ जिब्रील पुर्सीद कि ईं चीस्त। गुफ़्त या रसूल अल्लाह अज़ वक़्ते कि आफ़रीदः शुदः अम मीबीनम कि ईं क़तारे शुतुरान बा सन्दूक़ मीरवंद व मन हम न मीदानेम कि ईं चीस्त। व ईं इशारः बेनिहायतीए अदवार अस्त।

अलहम्दु लिल्लाहे वल् मिन्नह कि तौफ़ीक़े इतमामे रिसालः-ए- "**मज्म 'उल् बह्रैन**" याफ़्तः शुद दर सन यक हज़ार व शस्त व पंज हिजरी नबवी कि चेहल व दोयम अज़ सनीने उम्र ईं फ़क़ीर बेअंदोह मुहम्मद दारा शुकोह बुवद। वस्सलाम।

---

१. क़ुरआन २१ : १०४

२. क़ुरआन ७ : २९

मज्म 'उल् बह्रैन

(हिन्दी-अनुवाद)

मज्म 'उल् बह्रैन
(हिन्दी अनुवाद)

'अल्लाह' के नाम से, जो अत्यन्त कृपाशील और दयावान् है।

उसके नाम से, जिसका कोई नाम नहीं है,

चाहे जिस नाम से उसे पुकारो, वह अपना सर उठा देता है (पुकार पर ध्यान देता है)।

उस अद्वितीय (एक) पर प्रचुर प्रशस्ति (बरसे), जो अपने सुन्दर, अद्वितीय और अनुपमेय चेहरे में प्रकट हुआ है। वह दो समान स्तर पर, ईमान और कुफ्र को जोड़ता है और उनमें से किसी से उसने अपना सुन्दर चेहरा आवृत नहीं किया है।

पद्य

कुफ्र (अविश्वास) और इस्लाम (विश्वास), दोनों उसकी ओर मार्ग में सरपट दौड़ लगा रहे हैं

(मिल कर) वह एक है। उसके राज्य में किसी का हिस्सा नहीं है।

वह सबमें प्रकट है; और प्रत्येक वस्तु उससे प्रकाशित होती है। वह आदि है, अन्त है और उसके अतिरिक्त कुछ भी मौजूद नहीं है।

रुबाई

वही पड़ोसी, साथी और सहयात्री सब कुछ है,
भिखारियों की गुदड़ी और राजाओं के परिधान में वही है।
ऊँचे पर की सभायें और रहस्यमय प्रकोष्ठ में
ईश्वर की शपथ, वह सब कुछ है।

हज़रत मुहम्मद (मुस्तफ़ा), उन पर अल्लाह की कृपा और दया हो, को अनन्त प्रणाम (अर्पित हों), वे पूर्ण अभिव्यक्ति हैं। वे विश्व की सृष्टि में निमित्त

(कारण) हैं और उनके उच्च वंशधरों तथा महान् साथियों को (प्रणाम अर्पित हों)।

अब, इस प्रकार, वीतराग, शोक से रहित फ़क़ीर मुहम्मद दारा शिकोह कहता है कि उसने धर्माचरण करके तथा सब तत्त्वों के तत्त्व को जानकर, सूफ़ियों के, सही धर्म के रहस्यों को पता लगा कर और इस महान् उपहार से सम्पन्न होकर, भारतीय एकेश्वरवादियों के सिद्धान्तों को जानने की लालसा की; और आचार्यों और इस धर्म के पूर्ण तत्त्वज्ञों, जो धार्मिक अभ्यासों (ईश्वर के) अवबोध, प्रतिमान और (धार्मिक) अन्तर्ज्ञान में पूर्णता की उच्चतम पराकाष्ठा को पहुँच चुके थे, के साथ बार-बार सम्पर्क और निरन्तर विचार-विमर्श करके, जिस मार्ग में उन्होंने प्रयास किया और सत्य को उपलब्ध किया, उसने (दारा ने) परिभाषा-भेद के अतिरिक्त कोई भेद नहीं पाया। फलतः, दोनों पक्षों के विचारों को संगृहीत करते हुए और विचार-बिन्दुओं को एक साथ मिलाते हुए, जिनका ज्ञान सत्य के जिज्ञासुओं के लिए आवश्यक और उपयोगी है, उस (दारा शिकोह) ने एक पुस्तिका, जिसका नाम रखा "मज्म' उल् बह्रैन" या 'दो समुद्रों का संगम", दोनों सत्य-जिज्ञासु पक्षों के सत्य और प्रज्ञा के एक संग्रह के रूप में तैयार की। महान् (रहस्यवादियों) ने कहा है : **"तसव्वुफ़ निष्पक्षता/सम दृष्टि है और (आगे) तसव्वुफ़ (धार्मिक) दायित्व की स्वच्छन्दता है।"**

इस प्रकार जो न्यायी और विवेकी है, शीघ्र समझेगा कि इन विचारों का पता लगाने में मुझे किस प्रकार गम्भीरता से विचार करना पड़ा है। यह निश्चय है कि पता लगाने वाले प्रज्ञावान् लोग इस 'पुस्तिका' से बहुत अधिक आनन्द प्राप्त करेंगे, जबकि दोनों पक्षों के मन्द-बुद्धि लोग इन लाभों से वंचित रहेंगे। मैंने निजी अन्तर्ज्ञान और आस्वाद के अपने इन अनुशीलनों को अपने परिवार के सदस्यों के लाभ के लिए प्रस्तुत किया है और मेरी दोनों जातियों (क़ौमों) के जनसाधारण से दिलचस्पी नहीं है, जैसा कि ख़्वाज़ा अब्दुल्ला अहरार, उनके रहस्य पवित्रित हों, ने कहा है "अगर मैं यह जानूं कि एक अविश्वासी (नास्तिक) पाप में डूबा हुआ, एक प्रकार से एकात्मवाद का स्वर गान कर रहा है, मैं उसके पास जाऊँ, उसे सुनूं और उसके प्रति कृतज्ञ होऊं" और, ईश्वर की कृपा और सहायता प्राप्त हो।

१. भूतों (तत्त्वों) की व्याख्या

जानो, कि भूत (तत्त्व) पांच हैं। संसार की सभी वस्तुओं के मूल (समवायी) कारण ये ही पांच हैं। प्रथम 'उन्सुरे आज़म' (महातत्त्व) है जिसे धर्मशास्त्री लोग "अर्शे अक्बर" (=महासिंहासन) कहते हैं। दूसरा, वायु, तीसरा अग्नि, चौथा जल और पांचवां ख़ाक (रज)। उन्हें भारतीयों की भाषा में 'पञ्च भूत' नाम दिया जाता था- आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी। और आकाश तीन हैं- भूत आकाश, मन आकाश और चिद् आकाश। और इनमें जो सभी भूतों में व्याप्त है उसे 'भूत आकाश' कहते हैं, और जो ब्रह्माण्ड में व्याप्त है उसे 'मन आकाश' कहते हैं और जो सबको आच्छादित किये हुए हैं तथा आवृत किये हुए है उसे 'चिद् आकाश' कहते हैं। आकाश नित्य (स्थायी) है, अर्थात् अनित्य (अस्थायी) नहीं है और इसके आरम्भ और अन्त के विषय में कोई क़ुरआन की आयत या वेद, जो कि आसमानी किताब है, का पद्य प्रमाण-स्वरूप नहीं है। प्रथम पदार्थ जो चिद् आकाश से निकला वह 'इश्क़' था, उसे एकेश्वरवादी भारतीयों (= वैदिक मुनियों)की भाषा में "माया" कहते हैं। (दाऊद ने जब अल्लाह से पूछा कि उसने सृष्टि क्यों की तब उसने फ़र्माया-) **"मैं एक छिपा हुआ ख़जाना था, तब मैंने इच्छा की कि लोग मुझे जानें, इसलिए मैंने सृष्टि की"**। यह ऊपर के वक्तव्य का प्रमाण (पथप्रदर्शक) है। 'इश्क़' से 'रूहे आज़म' अर्थात् जीवात्मा उत्पन्न हुआ। उसे 'हक़ीक़ते मुहम्मदी' (= सिद्धों के सिद्ध का तत्त्व) कहते हैं और (आगे) विश्वासियों के प्रधान की 'पूर्ण आत्मा' उन पर अल्लाह की अपार कृपा और दया हो (तात्पर्य हज़रत मुहम्मद से है)। भारतीय एकेश्वरवादियों ने उसे 'हिरण्यगर्भ' और 'अवस्थात आत्मा (= अवस्थात्मा?) नाम दिया है, जो उसके महत्त्व का निर्देश करता है।

और, इसके बाद वायु तत्त्व है उसे 'नफ़सुर्रहमान' (= दयालु की श्वास या परमात्मा का निःश्वसित) कहते हैं और उससे श्वास वायु पैदा हुईं। श्वास लेते समय यह गर्म निकलती है। उसके महान् अस्तित्व में क़ैद होने के कारण वायु से अग्नि (= तेजस्) उत्पन्न हुआ और जब वही श्वास दया और एकता के गुणों से सम्पन्न हुई तब ठंडी हो गई। इस प्रकार अग्नि से जल की सृष्टि हुई और, लेकिन अपनी शुद्धता के कारण वायु और अग्नि, दोनों तत्त्व अवगम्य (प्रत्यक्ष) नहीं हैं और अवगम्य (= प्रत्यक्ष) होने के कारण, कुछ लोगों ने

कहा है कि पहले जल पैदा हुआ और उसके बाद पृथ्वी उत्पन्न हुई और यह पृथ्वी जल की झाग जैसी हुई जैसे दूध, जिसके नीचे आग हो, उबलता है और उस पर परत जमने लगती है।

शे'र–

क्या मैं जानता था कि यह निःसीम महासमुद्र ऐसा होगा
कि उसकी भाप आकाश बन जायेगी और उसकी झाग धरती!
और अण्डे की तरह एक बूंद खौली और समुद्र बनी
उसमें झाग उठी जो पृथ्वी बनी और उसका धुआं
आकाश बन गया।

और, इसके विपरीत, महान् क़ियामत के दिन, जिसे भारतीय लोगों की भाषा में 'महाप्रलय' कहते हैं, पहले पृथ्वी का लय होगा, उसे जल निगल जायेगा, फिर पानी अग्नि के कारण सूख जायेगा और अग्नि को वायु बुझा देगी और वायु महाकाश में परिणत होते हुए 'रूहे आज़म' (या परम आत्मा) में मिल जायेगी : हर चीज़ नश्वर है सिवाय उसके स्वरूप के। जो कोई इस (धरती) पर है विनाशवान् है, और तुम्हारे 'रब' का प्रतापवान् एवं उदार स्वरूप शेष रहेगा। ऊपर की दोनों आयतों में पाया गया, जो कि प्रत्येक वस्तु के विनाश से सम्बद्ध है, महाकाश को इंगित करता है, जो कि अविनाशी है। अगर ऐसा नहीं होता तो वह कहता **हर चीज़ नश्वर है सिवाय उसके स्वरूप के।** 'रूप' (= मुख) का विनिर्देशन महा चिदाकाश (की नित्यता) को लेकर है, जो शुद्ध चैतन्य के सूक्ष्म शरीर को संघटित करता है और पृथ्वी को भारतीयों की भाषा में देवी कहते हैं, जिससे प्रत्येक वस्तु रचित होती है और जिसमें प्रत्येक वस्तु लीन होती है और पवित्र 'आयत' में जैसा कि कहा है : **इसी (धरती) से हमने तुम्हें पैदा किया है और इसी में तुम्हें लौटायेंगे और इसी से तुम्हें दोबारा निकालेंगे।**

२. इन्द्रियों का निरूपण

इन पांच भूतों की भाँति पांच इन्द्रियाँ हैं। भारतीयों की भाषा में इन्हें पांच इन्द्री (= इन्द्रिय) कहते हैं। वे हैं– (१) शाम्मः, (२) ज़ायक़ः, (३) बासिरः, (४) सामि'अः और (५) लामिसः। इन्हें (क्रमशः) भारतीयों की भाषा में, घिरान (= घ्राण), रसना, चछ (= चक्षुष्), सरुतर (= श्रोत्र) और

त्वक् कहते हैं और, इनके प्रत्यक्षबोध के गुणों को गन्ध, रस, रूप, शब्द और सपरस (= स्पर्श) नाम देते हैं। और, इन पाँच इन्द्रियों में से प्रत्येक उसी प्रकार की है जैसा भूतों में से एक है तथा उनसे जुड़ी हुई है। इस प्रकार, घ्राणेन्द्रिय गन्ध से सम्बन्धित है, क्योंकि पृथ्वी को छोड़ गन्ध किसी तत्त्व में नहीं होती और उसे घ्राणेन्द्रिय द्वारा ग्रहण (प्रत्यक्ष) किया जाता है। ज़ायक़ः (= रसना, स्वाद लेने की इन्द्रिय जिह्वा) जल से सम्बन्धित है, जल (का स्वाद) रसना या जिह्वा से गृहीत होता है। बासिरः (= चक्षुरिन्द्रिय) तेजस् (= अग्नि) से जुड़ी हुई है, इस कारण रंगों का ग्रहण केवल आंख से होता है, जबकि प्रकाशकत्व (तेजस् और आंख) दोनों में विद्यमान है। लामिसः (= त्वगिन्द्रिय) वायु से जुड़ी है, क्योंकि स्पर्श व्यञ्जक सभी वस्तुओं का वायु के द्वारा ग्रहण होता है। (अन्त में) सामि'अः (= श्रोत्रेन्द्रिय) उन्सुरे-आज़म, अर्थात् महाकाश से जुड़ी है, जिसकी यान्त्रिकता के द्वारा हम शब्द ग्रहण करते हैं और, श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा महाकाश का हक़ीक़त 'अह्ले दिल' लोगों (= सिद्धों) को ही प्रकट होता है, जबकि उनके अतिरिक्त कोई वस्तु उसे अनुभव नहीं कर सकती। इस प्रकार श्रवण रूप ध्यान सूफ़ियों तथा भारतीय एकेश्वरवादियों को समान रूप से होता है। सूफ़ी सिद्ध इसे "शुग़्ले पासे अनफ़ास" (श्वास को वश में रखने का अभ्यास) कहते हैं और दूसरे (भारतीय एकेश्वरवादी) अपनी पदावली में 'धुन' (=ध्वनि) कहते हैं।

अब, आभ्यन्तर इन्द्रियां भी पांच है- मुस्तरक (सामान्य), मुतख़य्यिलः (काल्पनिक, इमेज़िनरी), मुतफ़क्किर (चिन्तनशील, कॅन्टेप्लेटिव), हाफ़िज़ा (धारणशील) (प्रत्यभिज्ञात्मक) और वाहिमः (कल्पनात्मक फैंसिइंग); किन्तु भारतीयों के अनुसार चार हैं- बुध (बुद्धि), मन (मनस्), अहङ्कार और चित्। इन चारों के समुदाय को 'अन्तःकरण' कहते हैं। इसे इसके बदले पञ्चम इन्द्रिय के रूप में देखा जाता है। और, चित् का एक स्वभाव है, जिसे 'सत परकरत' (सत्वप्रकृति = वृत्ति) कहते हैं, जो बुद्धि के चरण का काम करता है। यदि यह न हो तो चित् (चित्त) सञ्चरण नहीं करे। प्रथम बुध (= बुद्धि) अर्थात् अक़्ल। और, वह अच्छी बात की ओर जाने तथा अशुभ की उपेक्षा करने का स्वभाव रखती है। जिससे दिल का बोध होता है, उसमें दो शक्तियाँ हैं- सङ्कल्प और विकल्प, अर्थात् निश्चय और संशय। तीसरी (अन्तरिन्द्रिय) चित् (चित्त), जो दिल का दूत है और जिसका काम दौड़ लगाना है, सत् और असत् के बीच के विवेक की क्षमता नहीं रखता। चौथी (अन्तरिन्द्रिय)

अहङ्कार है, 'स्वयं करने वाला मैं हूँ, इस प्रतीति का साक्षी है, और परमात्मा के गुणों में से एक है; क्योंकि वह 'माया' को रखता है, जो उनकी परिभाषा में 'इश्क़' है। और, अहंकार तीन भागों में विभक्त है- सातक (सात्त्विक), अर्थात् ज्ञान स्वरूप है और इस प्रकार उत्तम है, कि परमात्मा कहता है, 'जो कुछ है मैं हूं' ('सर्वं खल्वहं' ऐसा अभिमान रूप है)। वह सभी वस्तुओं में व्यापक (= सबको घेरे हुए) है :..... **जान रखो निश्चय ही वह हर चीज़ को घेरे हुए है।** दूसरा यह कि..... अर्थात् **वही आदि है और वही अन्त है, वही भीतर है और वही बाहर है।** और, दूसरा (राजस) अहङ्कार मध्यम है, अर्थात् बीच की भूमि, जब (कोई आध्यात्मिक साधक), अपनी दृष्टि जीवात्मा पर रखता है, कहता है "मेरा मन शरीर और भूतों की सीमा से स्वतन्त्र हो चुका है, शारीरिकता मुझसे सम्बन्ध नहीं रखती--, "**उस जैसी कोई चीज़ नहीं**, (और).... "**अल्लाह सारे संसार से बे-परवाह है।**" और अहङ्कार तामस अधम है और निम्न भूमि अविद्या है, अर्थात् 'हज़रते वजूद' (शुद्ध ब्रह्म) का उपासक है। इसका अधमत्व इस तथ्य के कारण है कि एक मनुष्य, अति नीच और अति सीमित (= परिच्छिन्न) और व्यक्तिपरक होने के कारण, अपने विषय में मूढ़ता, अज्ञान और प्रमाद आरोप कर लेता है और अपने इन्द्रिय-अस्तित्व को अनुभव की दृष्टि से देखते हुए कहता है, "मैं' और "तू", एकता से बिल्कुल दूर (अलग-अलग) हैं।.... अर्थात् **कहो, ऐ मुहम्मद, मैं तो केवल एक मनुष्य हूँ, तुम्हारी तरह।** इसलिए वसिष्ठ ने कहा है, जब शुद्ध चैतन्य ने परिच्छिन्न होना चाहा तब वह शीघ्र परमात्मा स्वरूप हो गया और इस परिच्छिन्नता के कारण, अहङ्कार की भूमि प्राप्त हो गई। जब इसमें परिच्छिन्नता सम्मिलित हुई तब वह (= महत्तत्त्व) अथवा 'अक़्ले कुल' (पूर्ण बुद्धि) हो गया। मन (= माइंड), जिसे 'परकरत' (प्रकृति) कहा जाता है, संकल्प और महत्तत्त्व से बनता है और संकल्प मन से पांच ज्ञानेन्द्रियां, घ्राण, रसन, चक्षुष्, त्वक्, श्रोत्र उत्पन्न हुईं। और संकल्प और इन पांच ज्ञानेन्द्रियों से अंग और शरीर बने। इनके अपने समुदाय को 'बदन' कहते हैं। इस प्रकार परमात्मा जो "अबुल-अर्वाह" कहा जाता है, अपनी इच्छा से, इन परिच्छिन्नताओं को आरोपित कर लेता है, जैसे कि रेशम का कीड़ा अपनी ही लार से बने तन्तुओं से अपने को बांध लेता है। इस प्रकार हमारे परमात्मा ने इन काल्पनिक सीमाओं को उत्पन्न किया और उनमें अपने को परिसीमित कर दिया। अथवा जैसे वृक्ष का एक बीज अपने से एक पौधा प्रस्तुत करते हुए

वृक्ष हो जाता है और वृक्ष की शाखाओं, पत्तों और पुष्पों में विद्यमान होता है, (इस प्रकार परमात्मा ने जगत् को स्वयं बना कर उसमें प्रवेश कर लिया है)। इस प्रकार समझो तथा ध्यान रखो, कि हमारे संसार के सृजन के पूर्व वह चिद् रूप में गुप्त था और अब प्रकटीभूत जगत् में वह चिद् रूप गुप्त है।

३. ध्यान का निरूपण

यद्यपि भारतीय एकेश्वरवादियों के अनुसार, ध्यान के नाना प्रकार हैं तथापि वे उनमें 'अजपा' को सर्वोत्कृष्ट मानते हैं। यह ध्यान, प्रत्येक प्राणी में, स्वप्नदशा और जाग्रद्दशा में, बिना किसी इच्छा या नियन्त्रण के, प्रत्येक क्षण, सदैव उत्पन्न होता है। अतः पवित्र क़ुरआन इस तथ्य को व्यक्त करता है :..... **''और कोई चीज़ नहीं, जो उसकी प्रशंसा के साथ 'तस्बीह' न करती हो, परन्तु तुम अपनी 'तस्बीह' को समझते नहीं हो।''** अन्दर जाने वाली और बाहर आने वाली श्वास दो शब्दों द्वारा बयान की जाती है- जो श्वास बाहर आ़ती है उसे ऊ (= वह) कहते हैं और जो भीतर जाती है उसे 'मन' (= मैं) कहते हैं। और, उसका (उनका समुदाय) है ''ऊ मनम'' अर्थात् 'वह' मैं ही हूँ। सूफ़ी लोग अपने व्यवसाय से, इन दो शब्दों को 'हुअल्लाह्' (वह अल्लाह है) समझते हैं, जब श्वास भीतर की ओर आती है तब 'हु' प्रकट होता है और जब बाहर की ओर जाती है तब 'अल्लाह', और प्रत्येक अपने बिना चेतन अवस्था के भी वस्तुतः इन दोनों शब्दों को जपता रहता है।

४. परमेश्वर का गुणाख्यान

सूफ़ियों के अनुसार (परमेश्वर के) दो गुण हैं- जमाल (= सौन्दर्य) और जलाल (= प्रताप)। पूरी सृष्टि इन दो गुणों से ही व्याप्त है। और, भारतीय चिन्तकों के अनुसार, तीन गुण हैं जिन्हें 'तिरगुन' (= त्रिगुण) कहते हैं- सत् (सत्त्व), रज (रजस्) और तम (तमस्)। सत् अर्थात् सृष्टि, रज अर्थात् स्थिति (या पालन) और तम अर्थात् संहार। सूफ़ी लोग स्थिति के गुण को जमाल का गुण मानते और स्वीकार करते हैं। (अर्थात् प्रतिपालक सत्त्वगुण को रजस् या जमाल में अन्तर्मुख करके उनके दो प्रकार मानते हैं)। चूँकि तीन गुण एक दूसरे में मिले हुए हैं, इसलिए भारतीय चिन्तक इन्हें 'तिर्मूरत' (= त्रिमूर्ति) कहते हैं- ब्रह्मा, बिशुन (= विष्णु) और महेश। और सूफ़ियों की परिभाषा में जिब्रील, मीकाईल और इस्राफ़ील कहते हैं। ब्रह्मा या

जिब्रील सृष्टि के (अधीक्षक) देवता हैं, विष्णु या मीकाईल स्थिति (या अस्तित्व) के देवता हैं और महेश या इस्राफ़ील संहार के देवता हैं। जल, वायु और अग्नि भी इन देवताओं से सम्बन्धित देवता हैं, इस प्रकार जल जिब्रील के साथ, अग्नि मीकाईल के साथ और वायु इस्राफ़ील के साथ जुड़े हैं। और ये तीनों चीज़ें सभी जीवधारियों में प्रकट हैं। इस प्रकार, ब्रह्मा, जो जीभ के जल (आर्द्रता) के रूप में प्रकट है, दिव्य उच्चारण के कारण हैं और (आगे) वाणी की शक्ति के स्रोत हैं, विष्णु, जो आँखों में अग्नि (के समान) हैं, प्रकाश, दीप्ति और दृष्टि शक्ति के स्रोत हैं, महेश जो नासारन्ध्र में वायु हैं; श्वास के दो रास्ते (टाने जाने के) हैं जो टूट जाने पर मृत्यु के कारण बनते हैं।

त्रिगुण, जो तीन दिव्य गुणों- सृष्टि, स्थिति और संहार के कारण है, ब्रह्मा, विष्णु और महेश में प्रकट हैं, जो विश्व की सभी सृष्टियों में व्यक्त होते हैं। (अब) जब एक जीव पैदा हुआ, वह एक नियत अवधि तक रहता है और फिर नष्ट हो जाता है। शक्ति अथवा इन तीन गुणों का अन्तर्निहित सामर्थ्य, 'त्रिदेवी' कहलाती है। त्रिमूर्ति-ब्रह्मा, विष्णु और महेश को उत्पन्न करती है और त्रिदेवी इन तीनों की माता है- सरस्वती, पार्वती और लक्ष्मी। बाद में सरस्वती, रजोगुण और ब्रह्मा से जुड़ती है, पार्वती तमोगुण और महेश से और लक्ष्मी सत्त्वगुण और विष्णु से।

५. रूह (= आत्मा) का निरूपण

रूह के दो भेद हैं, एक रूह (साधारण) और दूसरा, अबुल अर्वाह (रूहों की रूह)। भारतीय चिन्तकों की भाषा में इन दोनों को आत्मा और परमात्मा कहते हैं। जब 'ज़ाते बहत' (= शुद्ध चैतन्य) परिमित और प्रतिबन्धित हो जाता है, शुद्धता या अशुद्धता के किसी लिहाज़ से, वह रूह (= आत्मा) के रूप में जाना जाता है, अपने परिष्कृत रूप रूह और जसद या शरीर, अपने अपरिष्कृत रूप में। और, अस्तित्व, जो अनादि भूत माना जाता है रूहे आज़म (= परमात्मा) रूप में जाना जाता है और कहा जाता है कि सर्वज्ञ के साथ एक समान परिचय रखता है। वह आत्मा, जिसमें सभी आत्माएं सम्मिलित हैं, 'परमात्मा' या अबुल अर्वाह (आत्माओं का आत्मा) के रूप में जाना जाता है। जिस प्रकार जल और उसकी तरंगों का अन्तःसम्बन्ध है, उसी प्रकार शरीर और आत्मा के बीच है। तरंगों का समुदाय, अपने समष्टि रूप में अबुल अरवाह या परमात्मा के समान है, जब कि जल अस्तित्व के रूप में केवल शुद्ध व चेतन रूप है।

६. प्राणादि का निरूपण

वायु के, जो मानव-शरीर में सञ्चरण करती है और पांच स्थानों में रहती है, पांच नाम हैं- प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। (१) प्राण, जो वायु नासा से पादाङ्गुष्ठ तक सञ्चार करती है, श्वास का वैशिष्ट्य धारण करती है, (२) अपान वायु का सञ्चरण नितम्ब से जननेन्द्रिय तक, नाभि के चारों ओर होता है और यह जीवन का कारण है, (३) समान वायु नाभि और हृदय के बीच सञ्चार करती है, (४) उदान वायु का सञ्चार कण्ठ से ब्रह्म-रन्ध्र तक होता है, (५) और व्यान वह वायु है, जो (शरीर के) प्रत्येक अंग, जो कि प्रकट अथवा अप्रकट है, को अभिव्याप्त करके रहती है।

७. जगच्चतुष्टय का निरूपण

किन्हीं सूफ़ियों (= एकात्मवादियों) के अनुसार, जगत्, जिनमें सृष्टि रहने के लिए विवश है, चार हैं- नासूत (= मर्त्य लोक), मलकूत (= देव लोक), जबरूत (= उच्चतम लोक) और लाहूत (= दिव्य लोक, ब्रह्म लोक); किन्तु कुछ (दूसरे) पांच (जगत्) कहते हैं और 'आलमे मिसाल' (प्रतिरूप जगत्) को उनमें जोड़ते हैं। कुछ लोग आलमे मिसाल का मलकूत में अन्तर्भाव करते हैं और उन्हें चार समझते हैं। भारतीय चिन्तकों के अनुसार ये चार अवस्था के रूप हैं- जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया। इनमें से (१) जाग्रत् नासूत से अभिन्न है। वह प्रकट और जागरण रूप जगत् है। (२) स्वप्न, मलकूत से अभिन्न है, जो रूहों और स्वप्नों का जगत् है। (३) सुषुप्ति, जो जबरूत से अभिन्न है, जिसमें दोनों जगत् के चित्र अन्तर्हित हो जाते हैं और "मैं" और "तू" (त्वन्ता और अहन्ता) समाप्त हो जाते हैं- तुम उसे अपनी खुली या बंद आंखों से देखते हो, दोनों जातियों के बहुत से चिन्तक, इस जगत् के बारे में ज्ञान नहीं रखते, अतः सैयदुत्ता'यफ़ा उस्ताद अबुल कासिम जुनैद बुग़दादी (उनकी रूह पवित्रता में विश्राम करे) ने हमें सूचित किया है, जैसा कि वे फ़र्माते हैं- "तसव्वुफ़ एक क्षण के लिए, बिना किसी सहवर्ती के बैठने में होता है।" शेख़ुल् इस्लाम ने पूछा- 'बिना सहवर्ती के' से क्या तात्पर्य है? उन्होंने व्याख्या की- "(इसका तात्पर्य है कि) बिन चाहे प्राप्त करना और बिन देखे, देखना; देखने की प्रक्रिया में देखने वाला कारण या निमित्त हो जाता है। क्योंकि इस प्रकार "बिना सहवर्ती के बैठना" का तात्पर्य है कि आलमे नासूत और आलमे मलकूत के चित्र (उस समय) मन में नहीं उभरते और

मौलाना रूम (ईश्वर उनकी क़ब्र को पवित्र करे) ने भी ऐसे विषय पर संकेत किया है–

अगर तुम चाहो उसे पाना,
तो एक क्षण के लिए भी उसे न खोजो
(और) उसे जानना चाहते हो तो क्षण भर के लिए मत जानो
जब तुम उसे अकेले में पाना चाहते हो
और जब प्रकट रूप से उसे पाना चाहते हो तो तुम उसके रहस्यों से दूर हो जाते हो।
और जब गुप्त और प्रकट से तुम बाहर आ जाते हो
तो निःसन्देह अपने पैरों को फैला दो, उसके आश्रित होकर सुखपूर्वक सो जाओ।

(४) तुरीया, लाहूत से अभिन्न है, जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप है, तीनों जगतों को व्याप्त किये हुए, आवृत किये हुए है। यदि कोई नासूत से मलकूत की, मलकूत से जबरूत की और इस अन्तिम से लाहूत की यात्रा करता है तो इसे उसकी एक उन्नति समझी जायेगी, लेकिन 'हक़ीक़तुल हक़ायक़' (परमात्मा का सम्पूर्ण ज्ञान), जिसे भारतीय एकेश्वरवादी 'अवसन' कहते हैं लाहूत से मलकूत में और तब जबरूत पर आता है। तब उसकी यात्रा नासूत में समाप्त होती है। और तथ्य यह है कि कुछ सूफ़ी लोगों ने अवतरण की भूमियों को चार वर्णित किया है, जबकि दूसरों ने उन्हें पांच कहा है, इसी तथ्य को इंगित करता है।

८. शब्द की व्याख्या

शब्द प्रकट हुआ कृपालु (= रह्मान) के उसी निःश्वसित के साथ, जो विश्व की सृष्टि के समय 'कुन' शब्द के साथ प्रकट हुआ। भारतीय सिद्धों ने उस शब्द को 'सरस्वती' कहा, जो सभी दूसरे शब्दों, ध्वनियों और नादों का स्रोत हैं :

सर्वत्र जो तुम सुनते हो उसका नग़्मा है
आख़िर, किसने सुनी है उस प्रकार की लम्बी आवाज?

भारतीय एकेश्वरवादियों (सिद्धों) के अनुसार, इस शब्द के, जिसे 'नाद' कहते हैं, तीन प्रकार हैं– प्रथम अनाहत है, जो अनादि भूत में था, वर्तमान में

है और भविष्य में उस प्रकार रहेगा। सूफ़ी लोग उस शब्द को 'आवाज़े मुत्लक़' (= नित्य शब्द) या 'सुल्तानुलअज़्कार' (सभी जपों का बादशाह) कहते हैं। यह शब्द आभ्यन्तर है और महाकाश का अनुभव इससे होता है। लेकिन यह शब्द, दोनों जातियों के महान् सन्तों को छोड़, सभी के लिए अश्रव्य होता है। दूसरा आहत, जो एक वस्तु के दूसरी वस्तु से टकराने पर पैदा होता है, ध्वनि-समुदाय है, जो शब्द में परिणत नहीं होता। शब्द सरस्वती के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है और मुसलमान तत्त्वज्ञों का 'इस्मे आज़म' (अथवा महान नाम) और भारतीय तत्त्वज्ञों का 'वेद मुख' या 'ओम्' है। 'इस्मे आज़म' का तात्पर्य है कि वह तीनों गुणों, सृष्टि, पालन और संहार को धारण करने वाला है और फ़तहः, ज़म्मः व कसरः, जो अकार, उकार और मकार से मेल रखते हैं, भी इस (इस्मे आज़म) से प्रकट हुए हैं। भारतीय एकात्मवादियों ने इस शब्द के लिए जो प्रतीक दिया है, जो हमारे 'इस्मे आज़म' से निकट का साम्य रखता है और जिसमें जल, अग्नि, वायु और रज तत्त्व हैं और जिसमें शुद्ध चैतन्य प्रकट हुआ है।

९. नूर (या प्रकाश) का निरूपण

'नूर' तीन प्रकार का है। यदि यह जलाल (= प्रताप) के गुण से प्रकट होता है तो यह या तो सूर्य-वर्ण, माणिक्य-वर्ण या अग्नि-वर्ण होता है, और यदि जमाल (= सौन्दर्य) के गुण से प्रकट होता है तो यह या तो चन्द्र-वर्ण, मुक्ता-वर्ण या जल-वर्ण होता है और अन्त में सत्त्व का प्रकाश आता है, जो सभी गुणों से रहित होता है। पवित्र मनुष्यों को छोड़ किसी में प्रकट नहीं होता, जिनके समर्थन में ईश्वर (जो सबसे ऊँचा और पवित्र है) ने फ़र्माया है : **''अल्लाह अपने प्रकाश की ओर जिसे चाहता है मार्ग दिखाता है''**, दूसरे नहीं प्राप्त करते हैं।

यह वह प्रकाश है जो (तब) प्रकट होता है जब मनुष्य या तो नींद में होता है, या आँखें बन्द करता है, आँखों से नहीं देखता है, अपने कानों से नहीं सुनता है और जिह्वा से नहीं बोलता है, वह नाक से नहीं सूंघता और छू कर स्पर्श ज्ञान नहीं करता (यद्यपि वह इन) सभी क्रियाओं को करता है। निद्रा में केवल मात्र एक शक्ति के कारण करता है और तो अंगों या बाह्य शक्तियों या दीप के प्रकाश की सहायता नहीं चाहता है, और उस समय अवलोकन, श्रवण, स्वाद, गन्ध और स्पर्श सभी एक सत्त्व के प्रकाश में, अथवा दूसरे

शब्दों में, ब्रह्म के प्रकाश में विलीन हो जाते हैं। वह प्रकाश है ईश्वर का, जिसकी महिमा सर्वोच्च है।

हे मित्र, विचार करे उस पर जो मैंने कहा है, जैसा कि यह तीक्ष्ण बुद्धि (= विवेक) तथा विचार का विषय है। और अल्लाह के सन्देशवाहक (उन पर अल्लाह की अपार कृपा और दया हो) ने विचार की प्रशंसा में कहा है कि **"मानव और परियों की वर्ष भर की उपासना से एक क्षण की ध्यान में संलग्नता अच्छी है।"** अब, पवित्र क़ुरआन से प्रकाश ज्ञेय है **"अल्लाह तआला आकाशों और पृथिवियों का प्रकाश है"** (वह) भारतीयों द्वारा ज्योति = स्वरूप, स्व-प्रकाश और स्वप्न प्रकाश (स्वयम्प्रकाश) कहा जाता है, जो (प्रकाश) सदैव स्वयं देदीप्यमान रहता है, चाहे संसार में प्रकट हो या न हो। अतः सूफ़ी लोग उस 'नूर' को 'मुनव्वर' शब्द से प्रकट करते हैं और हिन्दू भारतीयों ने भी उसे उसी प्रकार वर्णन किया है। इस प्रसङ्ग पर पवित्र क़ुरआन इस प्रकार है : **"अल्लाह आस्मानों और पृथिवी का प्रकाश है, उसके प्रकाश का एक साम्य एक गवाक्ष जैसा है, जिसमें एक दीप है, दीप एक काचघटी में है, (और) काच एक चमकता तारा जैसा है, वह इंगुदीफल के तेल से प्रज्वलित है, और वह इंगुदी वृक्ष न पूर्व का है और न पश्चिम का, तेल, जिसका सब कुछ प्रकाश देता है, यद्यपि अग्नि उसे नहीं छूता है। वह प्रकाश पर प्रकाश (प्रकाश से बढ़ कर प्रकाश) है। अल्लाह उसी को अपना प्रकाश देता है जिसे वह देना चाहता है।"**

लेकिन, इस फ़क़ीर ने जो कुछ (इस उपर्युद्धृत वचन से) जाना वह यह है कि 'गवाक्ष' पद ब्रह्माण्ड या मौलिक अस्तित्व को लेकर प्रयुक्त है। मिस्बाह या दीप ज्योतिःस्वरूप को लेकर है और काचघटी आत्मा है, जो एक चमकता तारा है और यह (जाना) कि इस दीप के कारण काचघटी भी दीप जैसी लगती है। और, "वह दीप प्रज्वलित है' शुद्ध चैतन्य को जताता है, जबकि "पवित्र वृक्ष" (शज़रे मुबारक) सत्य, पवित्र और शुद्ध 'उस' का वाचक है, जो पूर्व और पश्चिम की सीमाओं से मुक्त है। "ज़ैत" (= इङ्गुदी तैल) से तात्पर्य है "परमात्मा" (= रूहे आज़म), जो अनादि और अनन्त है। उसमें इङ्गुदी स्वयं ज्योतिर्मय और देदीप्यमान है; क्योंकि उसमें चारुता और पवित्रता है। और प्रकाशित होने का उसे प्रयोजन नहीं है। अतः, उस्ताद अबू बक्र वासिती (उनसे अल्लाह राज़ी रहे) रूह की परिभाषा करते हुए कहते हैं :

आत्मा की काचघटी उस प्रकार प्रकाशमयी है कि मर्त्यलोक की अग्नि (= नारे नासूत) के स्पर्श की अपेक्षा नहीं रखती और यह सन्निकट है कि अपनी अन्तर्निहित सामर्थ्य के कारण स्वयं प्रकाशित होती है। यह ज़ेत तेल का प्रकाश 'प्रकाश के ऊपर प्रकाश' (= नूर-उन-अला' नूर), जो जनाता है कि अपनी अत्यन्त पवित्रता और प्रकाशवत्ता के कारण यह प्रकाश प्रकाश से भरा है, और कोई उसे इस प्रकाश से देख नहीं सकता जब तक "वह" (परमात्मा) उसे अपने एकत्व के प्रकाश से रास्ता न दिखाये। इस प्रकार इन सभी पवित्र पद्यों के समुदाय का मुख्य तात्पर्य यह है कि श्रेष्ठ और शुद्ध ब्रह्म अपने सत्त्व के प्रकाश से अपने सुचारु तथा देदीप्यमान आवरणों के बीच प्रकाशित है, और कोई अन्धकार या आवरण उसके बीच नहीं है। अब, उसके सत्त्व का प्रकाश रूहों का जनक, अबुल अर्वाह आत्मा (= रूह) के आवरण में,, आत्मा (= रूह) शरीर के आवरण में उसी प्रकार प्रकट होता है, जैसे दीप अपने को काचघटी के आवरण में दीप्त तथा प्रकाशित करता है। काचघटी गवाक्ष में रखी जाने पर इस प्रकार प्रकाश से प्रकाश (नूर-उन-अला' नूर) को जोड़ते हुए अपनी दीप्ति को शुद्ध सत्त्व के प्रकाश में परिणत करती है।

१०. ईश्वर के दर्शन का निरूपण

भारतीय एकेश्वरवादी ईश्वर के दर्शन को 'साक्षात्कार' कहते हैं, अर्थात् ईश्वर को अपनी, सिर में लगी (सामान्य) आंखों से देखना। समझो कि पैग़म्बरों ने (उन्हें शान्ति मिले) या मुनियों ने (उनकी रूहें पवित्र हों) इहलोक या परलोक में बाहर की अथवा भीतर की आंखों से ईश्वर के दर्शन को सन्देह का या विवाद का विषय नहीं बनाया है, और दिव्य ग्रन्थों के अनुयायियों, सिद्धों, मुनियों ने, चाहे क़ुरआन पर विश्वास रखते हों, चाहे वेद पर, चाहे तौरेत या पुराने और नये 'टेस्टामेण्ट' पर, इस प्रकरण में एक सामान्य विश्वास रखते हैं। अब, जो ईश्वर के दर्शन का विश्वास नहीं करता है वह अपनी जाति का विचारहीन और दृष्टिहीन सदस्य है। क्योंकि यदि परमेश्वर सर्वशक्तिमान है तो वह स्वयं को प्रकट करने की शक्ति क्यों नहीं रखेगा? इस विषय की, सुन्नी सम्प्रदाय के विद्वानों ने बहुत स्पष्ट व्याख्या की है। किन्तु कहते हैं कि पवित्र आत्मा (ज़ाते बहत) देखा जाता है, एक असम्भाव्यता है, क्योंकि पवित्र आत्मा यदि परिष्कृत और अनिश्चित है, वह केवल सौन्दर्य के आवरण में प्रकट होता है और इसलिए देखा नहीं जा सकता। और, इस प्रकार का दर्शन एक असम्भाव्यता है। और यह सुझाव कि उसे परलोक में देखा जा सकता है

न कि इहलोक में, निराधार है, क्योंकि यदि वह सर्वसामर्थ्यवान् है तो उसमें स्वयं किसी प्रकार, कहीं और किसी समय, जब चाहे, प्रकट होने का सामर्थ्य है। (मैं समझता हूँ कि) कोई उसे नहीं देख सकता (इस लोक में) और कठिनाई से देखता है (परलोक में), क्योंकि उसने कहा है, क़ुरआन में, **और जो यहाँ अन्धा (बना) रहा, 'आख़िरत' में भी वह अन्धा ही रहेगा।**

ईश्वर का प्रत्यक्ष न मानने वाले मोतज़िला और शिया दार्शनिकों ने इस विषय में महापराध किया है; क्योंकि यदि उन्होंने कहा है कि ईश्वर का दर्शन असम्भव है तो इसका मतलब यह तो है ही कि उसका कोई रूप है, किन्तु उन्होंने 'दर्शन' के सभी प्रकारों का निषेध किया है, यह एक बड़ी भूल है। चूँकि ईश्वरीय सन्देशवाहकों तथा सिद्धों में से अनेक ने अपनी सामान्य आंखों से ईश्वर को देखा और उसके पवित्र वचनों को बिना किसी माध्यम के, सुना। और अब, जब वे सर्वथा, ईश्वर के वचनों को सुनने में समर्थ हैं, तो क्यों उसे देखने में समर्थ नहीं हैं? वे अवश्य वैसे हैं। और, जिस प्रकार ईश्वर, देवता, अपौरुषेय ग्रन्थ, सिद्ध, महाप्रलय, पुण्य और पाप, तीर्थों में विश्वास आदि आवश्यक है, उसी प्रकार ईश्वर के दर्शन में भी विश्वास धार्मिक कर्त्तव्य है। नासमझ सुन्नी उलमा ने (भी) अर्थ और वचन की परम्परा का विरोध किया। जिसमें, आयशा सिद्धीक़ा ने पैग़म्बर मुहम्मद (उन पर अल्लाह की अपार कृपा और दया हो) से पूछा : "अपने पर्वर्दिगार ख़ुदा को आपने देखा है?" जिसे, पैग़म्बर ने फ़र्माया : "नूरन् इन्नी अराहु" "(यह प्रकाश है जिसे मैं देख रहा हूँ)" इसे इस प्रकार पढ़ा गया "नूरन् ईन्नी उराहु" (यह प्रकाश है केसे मैं देख सकता हूँ?) लेकिन यह परम्परा ईश्वर के दर्शन के विरोध में प्रमाण नहीं है; क्योंकि यदि पहली व्याख्या को हम रखते हैं तो यह प्रकाश के आवरण में उसका पूर्ण दर्शन (= रूयते नाम) होगा, लेकिन यदि हम इसे इस रूप में "यह प्रकाश है, मैं कैसे इसे देखता हूँ?" व्याख्या करते हैं तब उसके शुद्ध और नीरूप चैतन्य को सूचित करता है। इस प्रकार, यह दोनों पाठ परस्पर विरुद्धार्थ नहीं हैं, किन्तु यह हमारे नबी का चमत्कार है कि एक ही बात में दो प्रश्नों का उत्तर दे दिया।

और, पवित्र क़ुरआन की आयत है : "**कितने चेहरे उस दिन खिले हुए होंगे अपने 'रब' की ओर देख रहे होंगे।**"[८] यह हमारे पर्वर्दिगार के, जिसकी शान ऊँची है, दर्शन के पक्ष में तर्क है, (जबकि) (पवित्र क़ुरआन का) वचन है : "**(लौकिक) निगाहें उसे नहीं पातीं, परन्तु वह निगाहों**

को पा लेता है। वह अतिसूक्ष्मदर्शी और ख़बर रखने वाला है।'' उसकी नीरूपता को व्यक्त करता है। आँख उसे उसकी नीरूप और पूर्ण योग्यता में नहीं देख पाती, यद्यपि वह सबको देखता है और अतिशय चारुत्व और नीरूपता को धारण करता है। और, ऊपर के पवित्र वचन में आये हुए शब्द 'हुव' (= वह) उसके शुद्ध चैतन्य की अदृश्यता (अप्रत्यक्षता) को सूचित करता है। अब, ईश्वर के दर्शन के पांच प्रकार हैं- प्रथम, मन की आंख से स्वप्न में देखना, द्वितीय, सामान्य दृष्टि से उसे देखना, तृतीय, स्वप्न और जागरण के बीच की स्थिति, जो निरहङ्कारता रूप है, में उसे देखना, चतुर्थ, विशेष परिच्छिन्न स्थिति में (उसे देखना), पञ्चम, एक स्वरूप का बहुत से परिच्छिन्न, बाह्य और आभ्यन्तर जगतों के बीच, देखना। जब हमारे पैग़म्बर (= परम सिद्ध) ने (उन पर अल्लाह की अपार कृपा और दया हो) ने उसे देखा उस समय वे (पैग़म्बर) ख़ुद (अलग) न थे और देखने वाला और दिखने वाला दोनों एक रूप हो गये थे, पैग़म्बर को स्वप्न जाग्रत् और निरहन्ता एक दिखाई देने लगे और उनकी आभ्यनतर और बाह्य आंखें, एकीभूत हो गईं। यही 'पूर्ण दर्शन' है, जिसे इहलोक और परलोक की अपेक्षा नहीं है और जो सभी देश और काल में सम्भव होता है।

११. ईश्वर के नामों का निरूपण

जानो कि अल्लाह त'आला के नाम असंख्य और समझ से बाहर हैं। निरपेक्ष, शुद्ध, रहस्यों का रहस्य और अपरिहार्य स्वरूप उसे भारतीय सिद्ध लोगों की भाषा में असन (= असङ्ग?), निर्गुण, निरङ्कार (= निराकार), निरञ्जन, सत् और चित् नामों से जाना जाता है। यदि उसे ज्ञान (= इल्म) से सम्बदृध करें तो भारतीय सिद्ध उसे चितन (= चेतन) कहते हैं, जबकि मुसलमान 'अलीम' कहते हैं। 'अल्-हक़' (= सत्य) के लिए उनके पास (शब्द) 'अनन्त' है, 'क़ादिर' (= शक्तिमान्) के लिए 'समर्थ', 'समीअ' के लिए 'सरुता (= श्रोता) है और (देखने वाला) के लिए 'द्रष्टा' है। यदि उस परम सत्ता को वाणी का स्वरूप कहा जाय तो उसे वे 'वक्ता' कहते हैं। 'अल्लाह' को अपनी भाषा में वे ॐ (ओम्) कहते हैं, 'हू' को वे 'सः' कहते हैं और 'फिरिश्ता' को वे दीवता (= देवता) कहते हैं। 'पूर्ण आविर्भाव' (= मज़हरे आलम) 'अवतार' कहा जाता है, जिसके माध्यम से परमेश्वर का सामर्थ्य ठीक उसी प्रकार दूसरे किसी अन्य विशेष वर्ग में, किसी विशेष

अवधि में प्रकट नहीं होता। 'वह्य' (दिव्य प्रकटन), जो पैग़म्बरों पर उतरता है उसे 'आकास बानी' (= आकाशवाणी) कहते हैं। और, यह नाम उसे इस कारण दिया गया है कि हमारे पैग़म्बर (परम सिद्ध), उन पर अल्लाह की अपार कृपा और दया हो, ने कहा है : "वह मेरे लिए कठिनतम क्षण है, जब मैं घंटियों के नाद या ततैयों की भिनभिनाने जैसी 'वह्य' सुनता हूँ, इस प्रकार आकाश से उतरने वाली वाणी 'आकासबानी' (आकाशवाणी) है। वे लोग अपौरुषेय वाणी (= किताब) को 'वेद' कहते हैं। और जिनों में सुन्दर जो परी हैं उन्हें 'नछरा' (अप्सरस्) कहते हैं, और जो पापी हैं उन्हें राछस (= राक्षस) कहते हैं। 'मनुख' (= मनुष्य) उनके अनुसार, मानव प्राणी हैं, जबकि 'रिखी' (= ऋषि) रहस्यवादी (वली) और महासुध (= महाशुद्ध) सिद्ध धर्म-प्रचारक (नबी) हैं।

१२. सिद्धत्व और ऋषीश्वरत्व का निरूपण

सिद्धों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है : प्रथम वे, जो बाह्य अथवा आभ्यन्तर दृष्टियों से, ईश्वर को देख पाये थे; द्वितीय वे, जो केवल नाद या शब्दों से निर्मित नाद के रूप में ईश्वर की वाणी सुन पाये थे, तृतीय वे, जो फ़रिश्तों को देख या सुन पाये थे।

सिद्धत्व और ऋषीश्वरत्व के तीन प्रकार हैं : (१) शुद्ध (= निर्गुणत्व सम्बन्धी तंज़ीही) सिद्धत्व, (२) साम्य रखता हुआ (= सगुणत्व सम्बन्धी, तश्बीही) सिद्धत्व और (३) दोनों का समुदाय।

प्रथम (निर्गुणत्व सम्बन्धी तंज़ीही) सिद्धत्व नूह (उन पर शान्ति कायम हो) का सिद्धत्व था, जिन्होंने निर्गुण रूप में ईश्वर को देखा और लोगों को (अपने धर्म में दीक्षित होने के लिए आमंत्रित किया, लेकिन कुछ को छोड़, उन्होंने उनके विश्वास को निर्गुणत्व सम्बन्धी होने के कारण, नहीं स्वीकार किया। और (परिणामतः) नाश के समुद्र में निमग्न हुए। इसी प्रकार हमारे समय के तपस्वियों ने ईश्वर के 'शुद्ध दर्शन' के लिए शिष्यों को आमन्त्रित किया, लेकिन कोई भी शिष्य अब तक उस एक 'आरिफ़' (= ब्रह्मज्ञानी) के पद पर नहीं पहुँचा और न ही वह उसके प्रवचनों से लाभान्वित हुआ, सुलुक (आध्यात्मिक यात्रा) और तरीक़त (आध्यात्मिक मार्ग) के द्वारा ईश्वर तक पहुँचा।

द्वितीय, तश्बीही सिद्धत्व, मूसा (उन्हें शान्ति प्राप्त हो) के सिद्धत्व के समान है, जिन्होंने स्वयं ईश्वर का साक्षात्कार वृक्ष की अग्नि में किया और मेघों से शब्द सुने। मूसा के अनुगतों के एक बड़े भाग ने मूसा पर अविश्वास होने पर गाय के बछड़े की पूजा आरम्भ की और पाप किया। आजकल, हमारे कुछ अनुगत (= मुक़ल्लिदीन) जिनका जीवन में केवल अन्धानुकरण का व्यवसाय है, पवित्रता (= तंज़ीह) से अलग होकर सन्देह और शङ्काओं में डूब गये और उसी प्रकार सुन्दर और आकर्षक चेहरों को देखने में आसक्त होकर खेल और खिलवाड़ करते हुए समय यापन करने लगे। किसी को ऐसे लोगों का अनुसरण नहीं करना चाहिए।

पद्य

''प्रत्येक चित्ताकर्षक रूप, जिसे तू देख रहा है
भाग्य उसे शीघ्र तेरी आँखों से ओझल कर देगा।
जा और अपना दिल उसे दे, जो अस्तित्व के चक्र में,
तेरे साथ सदा रहता है और उसी प्रकार रहेगा भी।''

तृतीय, तंज़ीही और तश्बीही (उभय रूप) सिद्धत्व, जैसा मुहम्मद (सल्ल०) का है, जो 'मुत्लक्' (शुद्ध) रंग के अधीन बेरंग, निर्गुण और सगुण, समीप और दूर सब कुछ हैं। पवित्र क़ुरआन में इस 'महती प्रतिष्ठा' का उद्धरण है : **''उस जैसी कोई चीज़ नहीं, और वह सुनने और देखने वाला है।''** पहला संकेत तंज़ीह के लिए है और दूसरा तश्बीह के लिए। यह विश्वजनीनता और पूर्णता की उच्चतम तथा उदात्ततम भूमि है, जो कि उन भव्य (मुहम्मद सल्ल०) के लिए आरक्षित है। इस प्रकार हमारे सन्देष्टा ने पूरे संसार को, पूर्व से पश्चिम तक घेर लिया है। अब निर्गुणत्व (तंज़ीही) सगुणत्व से रहित है और सगुणत्व (तश्बीही) निर्गुणत्व से रहित है। किन्तु संश्लिष्ट (जामिअ?) सिद्धत्व तंज़ीही (नीरूपत्व) और तश्बीही (सरूपत्व) को मिला देता है, जैसा कि पवित्र क़ुरआन में अन्तर्निविष्ट है **''वह आदि है और वही अन्त है, वही भीतर है और वही बाहर है।''** इसी प्रकार सिद्धत्व सम्प्रदाय के परिपूर्ण में सीमित है, जिसकी प्रशंसा में अल्लाह ने फ़र्माया है : **''तुम उत्तम समुदाय से हो जो लोगों में पैदा हुआ।''** अर्थात् मेरे अनुसर्ताओं में वे सबसे अच्छे हैं, जो निर्गुणत्व और सगुणत्व को मिलाते हैं। इस प्रकार हमारे सन्देष्टा (सल्ल०) के समय में, रहस्यवादियों में से थे अबू बक्र, उमर,

उस्मान, अली, हसन और हुसैन, छ बाक़ी (सित्तेबाक़िया), दस प्रतिनन्दित (असरारे मुबश्शरा) में मुहाज़िरों में महान् अन्सार और सूफ़ी।

और ताबि'ईन के ज़माने में थे उवैस करनी वग़ैरह। और दूसरे काल के सन्त थे, जैसे जुननून मिस्री, फ़ुज़ैल अयाज़, मारूफ़ करख़ी, इब्राहीम अद्हम, बिस्र हाफ़ी, सिर्रियुस्सकती, बायज़ीद बिस्तामी, उस्ताद अबुल क़ासिम जुनैदी, सह्ल बिन अब्दुल्लाह अत्तुस्तरी, अबू सईद ख़राज़, रुवैम, अबुल हसन अन्नूरी, इब्राहीम ख़वास, अबू बक्र शिब्ली, अबू बक्र वासिती और इस प्रकार के लोग। दूसरे काल में थे अबू स'ईद अबुल ख़ैर, शेख़ुल इस्लाम, ख़्वाजा अब्दुल्लाह अन्सारी, शेख़ अहमद जाम, मुहम्मद मा'शूक़ तूसी, अहमद ग़ज़्ज़ाली और अब्दुल क़ासिम गुरगानी। बाद के काल में अन्य (सन्त) थे, जेसे मेरे पीर (आध्यात्मिक गुरु) शेख़ मुहीउद्दीन अब्दुल क़ादिर जीलानी, अबू मदीनुल मग़्रिबी, शेख मुहीउद्दीन इब्नुल अरबी, शेख़ नज्मुद्दीन कुब्रा, शेख़ फ़रीदुद्दीन अत्तार और मौलाना जलालुद्दीन रूमी। और बाद के समय में थे ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती, ख़्वाजा बहाउद्दीन नक़्शबंद, ख़्वाजा अहरार, मौलाना अब्दुर्रहमान जामी। अन्य काल के थे जैसे मेरे शेख़ जुनैद शाह मीर, मेरे गुरु मियां बारी, मेरे मुर्शिद मुल्ला शाह, शाह मुहम्मद दिलरुबा, शेख़ तय्यब सरहिन्दी और बावा लाल बैरागी।

१३. ब्रह्माण्ड-निरूपण

'ब्रह्माण्ड' से तात्पर्य है 'सब' (= कुल), जो वृत्त या गोले के रूप में हज़रत वजूद (ईश्वर) के निश्चय को व्यक्त करता है और चूंकि यह किसी की ओर नहीं झुकता, और न किसी से जुड़ता है। इसका भाग सब ओर से समान होता है और प्रत्येक सृष्टि या प्रदर्शन इसके भीतर होता है। भारतीय एकात्मवादियों ने इसे 'ब्रह्माण्ड' नाम दिया है।

१४. दिङ्निरूपण

मुसलमान एकात्मवादी पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे प्रत्येक की अलग दिशा मानते हैं। अतः उनके अनुसार, छः दिशाएँ हैं, जबकि भारतीय एकात्मवादियों की गिनती के अनुसार, दस दिशाएँ हैं। वे पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के अन्तरालों में भी दिशाएँ (ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य और वायव्य) भी मानते हैं, इसलिए उन्हें 'दस दिशा' नाम देते हैं।

१५. आकाशों का निरूपण

आकाश, जिन्हें भारतीय लोग 'गगन' कहते हैं, संख्या में आठ हैं। इनमें सात आकाश सात ग्रहों के भ्रमणशील सरणि रूप हैं, अर्थात् जुह्ल (= सेटर्न, शनि), मुश्तरी (= जुपिटर), मिर्रीख़ (मार्स), (मंगल) शम्स (सूर्य), जुह्रा (= शुक्र), उतारुद (= बुध) और क़मर (= चन्द्र)। भारतीय भाषा में इन्हें सात निछत्तर्ज (नक्षत्र) कहा जाता है, जैसे शनीचर (= शनैश्चर), ब्रस्पत (बृहस्पति), मंगल, सूरज (= सूर्य), सुकुर (शुक्र) बुध और चन्द्रमस्। ये सभी स्थिर तारे, जो आकाश में रहते हैं, आठ माने जाते हैं। और विद्वान् लोग इस आकाश को अष्टग्रहक या फ़लके सवाबित कहते हैं, जब कि मुसलमान धार्मिक विद्वान् (अह्ले शर') अपनी धार्मिक परिभाषा में इसे 'कुर्सी' कहते हैं। पवित्र क़ुरआन की आयत है : **''उसका प्रभुत्व (= कुर्सी) आकाशों और धरती पर छाया हुआ है।''**

नवां आकाश, जो महा आकास (= महाकाश) कहलाता है, आकाशों की सूची में सम्मिलित नहीं है, क्योंकि यह (= महाकाश) सभी को घेरे हुए है, यहां तक कि कुर्सी, आकाश और पृथिवी इसमें अन्तर्निविष्ट हैं।

१६. पृथिवी-निरूपण

भारतीयों के अनुसार, पृथिवी को चार परतों में विभक्त किया गया है, जिन्हें 'सपत ताल' (सप्त तल) कहते हैं। उनके नाम हैं- अतल, बतल (वितल), सुतल, तलातल, महतल, रसातल और पाताल। मुसलमानों के अनुसार भी, पृथिवी की सात परते हैं, जैसा कि पवित्र क़ुरआन में है : **''अल्लाह ही है जिसने सात आकाश पैदा किये और उन्हीं की तरह (कई) धरती भी।''**

१७. पृथिवी के विभाग (क़िस्मते ज़मीन) का निरूपण

(मुस्लिम) विद्वानों ने लोगों के निवास स्वरूप भूमण्डल के सात विभाग किये है, जिन्हें वे हफ़्त इक़्लीम कहते हैं। उन्हें भारतीय लोग 'सप्त दीप' (= सप्तद्वीप) कहते हैं। वे लोग सातों क्षेत्रों को एक प्याज़ की परतों की तरह (एक दूसरे पर आवृत्त) नहीं मानते, बल्कि वे उन्हें एक सीढ़ी के पायदानों की

भांति समझते हैं और सात पर्वत, जिन्हें भारतीय लोग 'सप्त कुलाचल' कहते हैं, मानते हैं कि प्रत्येक क्षेत्र को घेरे हुए हैं। उनके नाम हैं- (१) सुमिरु (= सुमेरु), (२) समूपत (= शुक्तिमाली), (३) हिमकूट (= हेमकूट), (४) हिमवान् (= हिमवत्), (५) नकध (= निषध?), (६) पारजात्र (= पारियात्र), (७) कैलास।

इसी प्रकार यह क़ुरआन में भी उल्लिखित है- "और पहाड़ों को मेखें (शङ्कु)।" या'नी "पहाड़ों को हम धरती की खूंटियां समझते हैं।"

अब, सातो पर्वतों में से प्रत्येक के चारों ओर सात समुद्र हैं, जो प्रत्येक को घेरे हुए हैं, जो ये सप्त समुन्दर (= सप्त समुद्र) कहे जाते हैं उनके नाम हैं : (१) लवन समुन्दर (= लवण समुद्र) या नमक का सागर, (२) उंछरस समुन्दर (= इक्षुरस समुद्र) या ईख के रस का सागर, (३) सुरा समुन्दर (सुरा समुद्र), या मदिरा का सागर, (४) घिरत समुन्दर (= घृत समुद्र) या घी का सागर, (५) दध समुन्दर (= दधिसमुद्र) या दही का सागर, (६) खीर समुन्दर (= क्षीर समुद्र) या दूध का सागर और (७) सवाद जल (= ह्वादु जल) या मधुर जल का सागर। सात समुद्रों की संख्या क़ुरआन की इस आयत से निश्चेतव्य है : **"और धरती में जितने वृक्ष हैं यदि वे सब लेखनी हो जायें और यह समुद्र हो जिसे सात और समुद्र रोशनाई पहुंचायें तब भी अल्लाह की बातें (लिखने से) समाप्त न हों।"** अब प्रत्येक ज़मीन, पर्वत और नदी में सृष्टियों का प्रकार है। ज़मीन, पर्वत और नदी, जो सभी ज़मीनों, पर्वतों और नदियों से ऊपर हैं, को भारतीय आचार्य सरग (= स्वर्ग) कहते हैं, जो दूसरे शब्दों में बिहिश्त या जन्नत (पैराडाइज़) कहलाता है। अब, ज़मीन, नदी और पर्वत, जो नीचे (सभी) ज़मीनों, पर्वतों और नदियों के नीचे (अधोभाग में) है, को नरक या दोज़ख़ और जहन्नम, नरक और आभ्यन्तर अग्नि कहा जाता है। भारतीय एकात्मवादियों ने निश्चय किया है कि स्वर्ग और नरक इस विश्व के बाहर नहीं हैं, जिसे ब्रह्माण्ड कहा जाता है। (और वे यह भी मानते हैं कि) सात आकाश जो सात ग्रहों के अधिष्ठान हैं, स्वर्ग के ऊपर नहीं है, बल्कि उसके चारों ओर घूमते हैं। स्वर्ग की छत को 'मन आकास' (मन आकाश) कहते हैं। उसे (हमारे लोग) 'अर्श' कहते हैं और (स्वर्ग की) भूमि को कुर्सी।

१८. बर्ज़ख का निरूपण

हमारे महासिद्ध, उन पर अल्लाह की कृपा और दया हो, ने फ़र्माया है : **''जो मर जाता है वास्तव में उसके लिए पुनरुत्थान है।''** मृत्यु के बाद आत्मा, जो रूह है, भौतिक शरीर को छोड़कर, अविलम्ब 'मुक्त' शरीर, जिसे सूछम सरीर (= सूक्ष्म शरीर) कहते हैं, में प्रवेश कर जाता है। यह एक सुन्दर शरीर है, जो हमारे कर्मों के अनुसार निर्मित होता है। धर्म कर्म अच्छा रूप वाला तथा अधर्म कर्म ख़राब रूप वाला होता है। क़ियामत के "प्रश्न और उत्तर" (जो मृत्यु के बाद किये जायेंगे) के बाद जो स्वर्ग के योग्य (पात्र) हैं उन्हें अविलम्ब स्वर्ग पहुँचाया जायेगा और जो नरक के पात्र हैं उन्हें नरक, जैसा कि पवित्र क़ुरआन में कहा है : तो **जो अभागे होंगे वे आग में होंगे, जहां उनके लिए सांस खींचना और फिर फुंकार मारना होगा (१०६), वे सदैव उसी में रहेंगे, जब तक आकाश और धरती स्थिर हैं, हाँ, यदि तेरा 'रब' ही चाहे तो दूसरी बात है। निःसन्देह तेरा 'रब' जो चाहे कर डाले (१०७)। और रहे वे लोग जो भाग्यवान् होंगे तो वे जन्नत में होंगे, जहां वे सदैव रहेंगे, जब तक कि आकाश और धरती स्थिर हैं, हां यदि तेरा 'रब' ही चाहे तो दूसरी बात है। एक देन है जिसका सिलसिला कभी न टूटेगा।**

"नरक से बाहर निकालने" का मतलब है कि आकाशों और पृथिवियों के नाश के पहले, यदि वह चाहे, निकाल दे (पापी व्यक्ति को) नरक से, और उसे स्वर्ग पहुंचा दे। इस वचन की व्याख्या करते हुए इब्न मस'ऊद, उनसे अल्लाह राज़ी रहे, ने कहा है कि **एक ऐसा भी समय नरक के (जीवन) में आयेगा, जब लम्बे ठहराव के बाद कोई भी इसके भीतर नहीं रहेगा।** और "स्वर्ग से बाहर निकालने" का तात्पर्य है कि आकाशों और पृथिवियों (= द्यावा-भूमियों) के नाश के पहले, ईश्वर, यदि चाहे तो उच्च स्वर्ग (= फ़िर्दौसे आ'ला) के निवासियों को अपनी असीम उदारता के कारण उच्चतर स्वर्ग में भेज सकता है। **"और अल्लाह की ख़ुशी और रज़ामंदी तो सबसे बड़ी चीज़ है।"** तात्पर्य कि अल्लाह के पास एक स्वर्ग है, जो दूसरे स्वर्गों से विशालतर है।

भारतीय इसे 'बेकुंठ' (= वैकुण्ठ) कहते हैं, जो भारतीय एकात्मवादियों की मान्यता में महामुक्ति है।

१९. महाप्रलय-निरूपण

भारतीय एकात्मवादी (= सिद्ध) यह मानते हैं कि स्वर्ग अथवा नरक में रहने के बाद महापर्ली (= महाप्रलय) या महानाश होगा। उसे भी पवित्र क़ुरआन से निश्चय करना चाहिए। **''फिर वह जब बड़ी वाली आपत्ति आयेगी।''** आगे की 'सूरत' भी ऐसा ही कहती है, **''और 'सूर'** (क़ियामत के समय दो बार फ़रिश्ता इस्राफ़ील द्वारा बजाई गयी तुरही) **में फूक मारी गई कि बेहोश हो गया, जो भी था आकाशों में और जो भी था धरती में, सिवाय उसके जिसे अल्लाह ने चाहा (कि बेहोश न हो)।''**

यह (अपवाद) उन ज्ञानी लोगों (= आरिफ़ों) को सूचित करता है, जो बेहोशी और बेख़बरी, दोनों से इस या उस संसार में सुरक्षित हैं। अब, आकाशों के विपर्यस्त होने, स्वर्गों और नरकों के नष्ट होने तथा ब्रह्माण्ड की आयु के पूर्ण होने के बाद, स्वर्ग और नरक के निवासी 'मुक्ति' को प्राप्त करेंगे। ये दोनों ही शुद्ध ब्रह्म में ऐक्य प्राप्त होंगे, जैसा कि पवित्र क़ुरआन में कहा है, **''जो कोई इस (धरती) पर है, विनाशवान् है, और तुम्हारे 'रब' का प्रतापवान् एवं उदार स्वरूप शेष रहेगा।''**

२०. मुक्ति का निरूपण

मुक्ति, अर्थात् शुद्ध चैतन्य में परिच्छिन्नों का विलय या विगलन। जैसा कि पवित्र क़ुरआन की इस आयत से पता चलता है : **''और अल्लाह की ख़ुशी और रज़ामंदी तो सबसे बड़ी चीज़ है। यही बड़ी सफलता है।''**

रिज़्वाने अकबर (= उच्च स्वर्ग) में प्रवेश महामुक्ति, परम मोक्ष कहलाता है। मुक्ति के तीन प्रकार हैं : प्रथम, जीवन्मुक्ति या जीवन की स्थिति में मोक्ष। उनके (भारतीयों के) अनुसार, जीवन्मुक्ति किसी के मोक्ष या स्वातन्त्र्य की प्राप्ति होने पर होती है। वह ज्ञानसम्पत्ति और सत्य के परिचय से होती है। (जीवन्मुक्त व्यक्ति) इस संसार की प्रत्येक वस्तु को समष्टि रूप में देखता है और समझता है और कर्मो, संचरणों, शुभ-अशुभ आदि को न अपने और न किसी और से सम्बद्ध करता है। सब सृष्टि के साथ अपने सत्य स्वरूप को जानता है। वह सभी भूमियों में ईश्वर को स्वयं प्रकट होते हुए देखता है और सर्व ब्रह्माण्ड में (देखता और जानता है)। जिसे सूफ़ी लोग 'आलमे कुब्रा (या महान् जगत्) कहते हैं, वही परमेश्वर का 'समष्टि रूप' ईश्वर का

भौतिक शरीर है। वह उन्सुरे आज़म (महाभूत) अर्थात् 'महा आकास' (= महाकाश) को सूछम सरीर (= सूक्ष्म शरीर) या ईश्वर का सुन्दर शरीर समझता है और ईश्वर के शुद्ध चैतन्य को उस शरीर का आत्मा समझता है। सब कुछ ईश्वर का व्यक्तित्व समझने के कारण कण से लेकर पर्वत तक वह ईश्वर के अतिरिक्त कुछ नहीं देखता। जैसे कि मनुष्य (जिसे लघु संसार कहा गया है) अलग-अलग अंगों के होते हुए भी एक ही व्यक्तित्व है। इस प्रकार वह विलक्षण चैतन्य बहुविध नहीं माना जाता, निश्चयों की विविधता के कारण। पद्य :

सम्पूर्ण जगत्, चाहे आत्माएं हों चाहे शरीर हो
एक निश्चित व्यक्ति है, जिसका नाम संसार है

(जीवन्मुक्त) पवित्र और उच्च ईश्वर को यहां तक कि बाल-बाल तक उस "निश्चित व्यक्ति" (संसार या सृष्टि) की आत्मा और जीव समझता है। जैसा कि शेख़ सा'दुद्दीन हम्वी ने फ़र्माया है : रुबाई

"ईश्वर जगत् का आत्मा है, सम्पूर्ण जगत् शरीर,
आत्मा, फ़रिश्ते और इन्द्रियां इस शरीर के अंग हैं।
आकाश, भूत, प्रकृति के तीन राज्य (पशु, व्यञ्जन और खनिज) भी अंग ही हैं।
यही एकात्मवाद है और बाक़ी सभी फ़रेब और चालाकी है।"

इसी प्रकार भारतीय एकात्मवादी, जैसे व्यास आदि, ब्रह्माण्ड, आलमे कबीर (महत् जगत्) है, एक व्यक्ति जान कर इसके शरीर के विभिन्न अंगों का वर्णन करते हैं। (इस प्रकार के वर्णन का) कारण है कि जब भी कोई एकात्मवादी (सूफ़ी) किसी वस्तु या व्यक्ति को देखे तो अनुभव करे कि वह महापुरुष के विशेष अंग को देख रहा है, यह सत्य का स्वरूप है जो कि पवित्रीकृत और उन्नत वह है।

'पाताल', जो कि धरती का सातवां पुट है, महापुरुष के चरण का तलवा है। रसातल, जो छठा पुट है म० के चरण का पृष्ठ भाग है। पिशाचादि म० के चरण की उंगलियां हैं, पिशाचों के बाहन म० के चरण के नख हैं। 'महातल', जो धरती का पांचवां पुट है, म० के गुल्फ़ (टखने) हैं। तलालल, जो धरती का चौथा पुट है, म० की जांघें हैं। सुतल, जो धरती का तीसरा पुट है, म० की ऊरु (रान) है। अतल, जो धरती का प्रथम पुट है, म० का पायु (गुप्तेन्द्रिय)

है। काल या समय म० की गमनक्रिया है। पर्यन्त देवता, जो सम्पूर्ण विश्व भर में सन्तानोत्पादन का कारण है, म० का पुंस्त्व चिह्न और मनुष्य की शक्ति/मर्दानगी है। वृष्टि म० का बिन्दु (वीर्य) है। भूलोक, अर्थात् आकाश पर्यन्त म० की नाभि का नीचे का भाग है। दक्षिण और उत्तर के तीन-तीन पर्वत म० के दायां और बायां हाथ हैं। सुमेर परत (= सुमेरु पर्वत) म० का नितम्ब है। प्रातःसन्ध्या का प्रकाश म० के कौपीन की तन्तु है। सायं सन्ध्या का प्रकाश म० की चादर की सफ़ेदी है। सन्ध्या, जब लाली छा जाती है, म० का अधोवस्त्र है। समुद्र अर्थात् चारों ओर व्याप्त महासागर म० की नाभि है। 'वडवानल' जो आज भी समुद्र के जल को सोखता रहता है और जो महाप्रलय के समय आंधियों को रोकेगा और जल को सोखेगा म० की जठराग्नि है। गंगा, यमुना, सरस्वती म० की प्रधान नाड़ियां हैं, जैसे सभी नाड़ियां नाभि में मिलती है उसी प्रकार सभी समुद्र में मिलती हैं। इंगला जमनान, पिंगा जमनान, सखमना (= सुषुम्ना) और सरस्ती (= सरस्वती)। भुवर्लोक, जो भूलोक से ऊपर है और गन्धर्व देवताओं का निवास है और जहां सभी शब्द उत्पन्न होते हैं, म० का उदर है, खण्ड प्रलय (= क़ियामते सुग़्रा) महापुरुष की प्रात की क्षुधा है। खण्ड प्रलय में जलों का नाश महापुरुष की पिपासा है। भुवर्लोक के ऊपर का स्वर्ग लोक, जो स्वर्ग लोक का एक विभाग है, म० का वक्ष है, क्योंकि वहां नित्य सुख, उत्सव और शान्ति है। सभी नक्षत्र म० के मणिमुख्यद्वार हैं, बिन मांगे मिला दान, जो उदारता और आनुतोषिक है, महापुरुष का दाहिना स्तन है। और मांगने पर मिला दान, जो उसकी अनुकम्पा है म० का बायां स्तन है, तीनों गुणों, सत्त्व, रजस् और तमस् का जो साम्य (= ए'तिदाल) है उसका तथा जिसे प्रकृति कहा जाता है महापुरुष का मन है, और कमल के तीन वर्ण, अर्थात् श्वेत, रक्त और श्याम होते हैं, उसी प्रकार हृदय भी, जिसका वर्ण कमल के समान होता है, के भी तीन गुण हैं, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश। ब्रह्मा, जिन्हें 'मन' भी कहा जाता है, म० के हृदय की धड़कन और चेष्टा हैं। विष्णु म० के स्नेह और दया हैं। महेश म० के क्रोध और घात हैं। चन्द्र, जो शोक और दुःखी की ऊष्मा का निवारण करता है, म० का हास और प्रसाद है। रात्रि म० का धनुष (या पीठ का झुकाव) है, सुमेरु पर्वत म० का मेरुदंड है। पर्वत जो सुमेरु के दक्षिण और वाम की ओर हैं, म० की पसलियों की अस्थियाँ हैं। म० के दो हाथ आठ लोकपाल, जिनमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं, जो वर्षा करने तथा उसे रोकने की

पूरी शक्ति रखता है, म० के दोनों हाथ हैं। म० का दायां हाथ उदारता तथा वर्षा स्वरूप और बायां हाथ अनावृष्टि और अनौदार्य है। स्वर्ग की अमछरा या हूर (अप्सराएं) महापुरुष के हाथ की रेखायें हैं। फ़िरिश्ते, जिन्हें चछ (= यक्ष) कहा जाता है, महापुरुष के हाथ के नख हैं। तीन लोकपाल म० के दाहिने हाथ हैं, उनमें अग्नि देवता प्रकोष्ठ (हथेली), यम देवता कूर्पर (कोहनी) निर्ऋति देवता प्रगण्ड (कोहनी से कंधे तक का ऊपर का भाग) हैं। तीन लोकपाल देवता म० के वाम बाहु हैं- उनमें ईशान वाम प्रकोष्ठ, कुबेर वाम कूर्पर और वायु वाम प्रकोष्ठ प्रगण्ड हैं।

कल्प वृक्ष (या तूबा वृक्ष) म० की छड़ी है। दक्षिण और उत्तर ध्रुव म० के क्रमशः दायां और बायां कंधा हैं। लोकपाल वरुण, जो जल में अधीक्षक हैं तथा पश्चिम दिशा में रहते हैं, म० की ककुद् (गर्दन की अस्थि) हैं। अनाहत नाद (सुल्ताने अज़कार) महापुरुष की पतली आवाज़ (चक्र में होने वाली) है। स्वर्ग लोक के ऊपर महर्लोक म० की ग्रीवा है। जन लोक, जो महर्लोक के ऊपर है, म० का शोभमान मुख है। जगत् की इच्छा म० की ठुड्डी (चिबुक) हैं। संसार के लोभ म० का अधर हैं। लज्जा और संकोच/विनय महा० का उत्तरोष्ठ है। स्नेह अर्थात् प्रेम और अनुराग म० के दांतों के मसूड़े हैं। इस संसार का सारा भोजन-पदार्थ म० का भोज्य है। जल का तत्त्व म० के मुख और गलरन्ध्र हैं। अग्नि तत्त्व म० की जिह्वा है। सरस्वती म० की वाक्शक्ति है। चार वेद अर्थात् सत्य की चार क़िताबें म० की वाणी हैं। 'माया' अर्थात् इश्क़, जो विश्व की सृष्टि का कारण है, म० का हास-परिहास है, संसार की आठ दिशाएं म० के दोनों कान हैं। अशनी कुमार (= अश्विनी कुमार), जो दो सुन्दर फ़िरिश्ते हैं, म० के दो नासारन्ध्र (नथने) हैं, गन्ध-तन्मात्रा रज का तत्त्व म० की घ्राणेन्द्रिय है। वायु तत्त्व म० का निःश्वसित है, जनलोक और तपलोक, जो स्वर्ग के पांचवां और छठा भाग हैं, जो उसके स्वयं प्रकाश से भरे हुए हैं, और उनके दक्षिणी और उत्तरी अन्तराल म० के क्रमशः दक्षिण और वाम नेत्र हैं। मुख्य पवित्र प्रकाश (नूर), जो आफ़ताबे अज़ली (अनादि आभ्यन्तर सूर्य) कहलाता है, म० की दृष्टि-शक्ति है। सम्पूर्ण जगत् सृष्टि म० का सुन्दर कटाक्ष है। रात और दिन म० के निमेष-उन्मेष हैं। 'मित्र' नाम के देवता, जो स्नेह और सौहार्द के अधिष्ठाता हैं, और तवस्ता (= त्वष्टा) देवता, जो क्रोध के अधिष्ठाता हैं, म० की दोनों भवें (भ्रू) हैं। तप लोक जो जनलोक से ऊपर है म० का ललाट है, और 'सत-लोक', जो सभी लोकों से ऊपर है म० का मूर्द्धा

है। तौहीद (एकात्मवाद के पद्य और ईश्वर की किताब (उपनिषद्) महापुरुष के दुरामातर/ब्रह्मरन्ध्र हैं। काले मेघ, जो 'महाप्रलय' के जल धारण करते हैं, म० के केश हैं। तृण लता गुल्मादि म० के शरीर के लोम हैं। लक्ष्मी, जो संसार का वैभव और शृङ्गार हैं, म० का सौन्दर्य हैं। प्रकाशमान सूर्य म० की स्वच्छन्दता है, भूताकाश म० के शरीर के रोम-कूप हैं। चिदाकाश म० के शरीर का आत्मा है। प्रत्येक मनुष्य की आकृति म० का निवास है। ज्ञानी मनुष्य म० के सौध-स्थान और रहःस्थान है, जैसा कि उसने दाऊद (उन्हें शान्ति प्राप्त हो) से कहा (को आज्ञा दी)- 'हे दाऊद, मेरे लिए एक घर बनाओ', (उसने) उत्तर दिया- अय ख़ुदा! तू तो अनिकेत है!" ख़ुदा ने कहा- 'तू मेरा आश्रय है, मेरे लिए अपने घर को दूसरों से ख़ाली कर।" जो ब्रह्माण्ड में, बहुतायत में, गुण पाये जाते हैं, वे मनुष्य में भी वर्तमान हैं, जो 'आलमे कबीर' का सार (निचोड़) है, जो इसे अच्छे ढंग से इस प्रकार देखता और समझता है, वह जीवन्मुक्ति को उपलब्ध होता है। क़ुरआन की यह आयत उपर्युक्त के अनुकूल है- **"जो कुछ अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल से उन्हें दिया है उस पर ख़ुशियाँ मनाते हैं।"**

दूसरा, सरब मुक्त (= सर्व मुक्ति) या सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्ति, चित्स्वरूप में विलयन है। यह (मुक्ति) सभी जीवनधारियों के लिए विश्व स्तर पर मौजूद है, और आकाश, पृथिवी, स्वर्ग, नरक, ब्रह्माण्ड, दिन और रात के नाश के पश्चात् वे सभी चित्स्वरूप में लीययान होकर मुक्त होते हैं।

मुक्ति या मोक्ष की ओर पवित्र क़ुरआन की यह आयत इंगित करती है : **और अल्लाह की ख़ुशी और रज़ामंदी तो सबसे बड़ी चीज़ है।**

सुनो अल्लाह के मित्रों को न तो कोई भय हो और न वे दुःखी होंगे।

तीसरा, सर्बदा मुक्त (सर्वदा मुक्ति अर्थात् नित्य मुक्ति) 'ज्ञानी' होने पर होती है, प्रत्येक प्रगति (= सैद) की भूमि में उपलब्ध होने पर होती है। यह (भूमि) चाहे दिन या रात में हो, प्रकट या गुप्त जगत् में हो, ब्रह्माण्ड प्रकट हो अथवा नहीं, भूत, वर्तमान या भविष्य में यह हो, और जहां पवित्र क़ुरआन ने स्वर्ग के विषय में कहा है : **उनमें वे सदैव रहेंगे। उन्हें उनका 'रब' शुभ सूचना देता है, अपनी दयालुता और रज़ामंदी की, और ऐसे बाग़ों की जिनमें उनके लिए स्थायी सुख है उनमें वे सदैव रहेंगे। निःसन्देह**

अल्लाह के पास बड़ा पारितोषिक है। यहां 'जन्नत' (= स्वर्ग) ईश्वर के मा'रिफ़त (ज्ञान) को और 'अबदा' मुक्ति की स्थायिता या निरन्तरता को सूचित करते हैं। ऐसा इसलिए है कि कोई भूमि हो, ईश्वर को जानने की क्षमता (मा'रिफ़त) और आभ्यन्तर अनुकूलता को प्राप्त करना आवश्यक है। अतः ये दो पवित्र आयतें उतारी गई हैं इन जैसे लोगों के लिए, जो मुक्ति या मोक्ष को उपलब्ध होते हैं, **और 'ईमान' वालों को जो अनुकूल कर्म करते हैं, शुभ सूचना दे कि उनके लिए अच्छा बदला है जिससे वे सदैव रहेंगे।**

२१. ब्रह्मा की रात्रि और दिन (गुप्तता और प्रकटता) का निरूपण

सृष्टि का प्रकाशन और संगोपन भारतीय एकेश्वरवादियों के अनुसार, ब्रह्मा, जो जिब्रील से अभिन्न हैं, का युग और ब्रह्माण्ड का नाश सृष्टि के दिन का अन्त या 'दैवत्व का दिन'' संसार के अठाहर अंज वर्ष है, प्रत्येक अंज (फिर) एक हज़ार वर्ष के समान है, जैसा कि पवित्र क़ुरआन की दो सूरतों में निर्दिष्ट है- **तेरे 'रब' के यहां एक दिन तुम्हारी गणना के हज़ार वर्ष जैसा है,..... ('फ़िरिश्ते' और 'रूह') उसकी ओर बढ़ते हैं। एक ऐसे दिन में जो पचास हज़ार वर्ष के बराबर है।** इस प्रकार, मेरी गणना के अनुसार, जिब्रील का युग सम्पूर्ण विश्व के जीवन के दिन की अवधि, जो ब्रह्माण्ड से अभिन्न है, विश्व के अठारह अंज वर्षों के समान है, जिसका प्रत्येक अंज (बदले में) हज़ार वर्ष के समान है। इसमें बढ़ना या घटना नहीं होता। भारतीय एकात्मवादियों (पौराणिकों) की गणना के अनुसार यह भी अवश्य जान लेना चाहिए कि उनका अठारह का विनिर्देशन 'आठ' और 'दस' की (संख्याओं) पर निर्भर है। उनके ऊपर वे कहते हैं, गणना नहीं की जा सकती। अब, छोटा नाम, जो पहले हुआ था और उसी प्रकार आगे भी होगा, 'खण्ड प्रलय' कहलाता है, जो या तो जल-प्लावन के रूप में या अग्निकाण्ड या तूफ़ान के रूप में आता है, और, इस कालावधि के समाप्त होने पर (हमारा यह) सन्ध्या में बदल जाता है और तब सर्वनाश, जो 'महाप्रलय' कहलाता है, होता है, जैसा कि दो आयतों में फ़र्माया **जिस दिन यह धरती दूसरी धरती से बदल दी जायेगी..... वह दिन जबकि हम आकाश को लपेट लेंगे जैसे पंजी में पन्नों को लपेट दिया जाता है।** अब संगोपन (Concealment) की रात्रि में 'महाप्रलय' के बाद, जो प्रकटन के दिन के

समान स्तर का है, सभी 'निश्चय' ख़ुदा के चित्स्वरुप में विलीन हो जाते हैं। इसकी कालावधि संसार के अठारह अंज वर्ष के समान होती है और 'अवस्थातम' (अवस्थात्मन् ?) जो सखुपत (= सुषुप्ति) और जबरूत के समान है, ख़ुदा के युग के समान है, जो भौतिक शरीरों की सृष्टि या विश्व के नाश से प्रभावित नहीं होता है, और क़ुरआन की आयत : ''**हे दोनों भारी भरकम गरोहो! जल्द ही हम तुम्हारे लिए समय निकाल रहे हैं**'' यह सखूपत (= सुषुप्ति) का संकेत है। धरती पर जीवन की अवधि में, ख़ुदा नासूत (मानवीय जगत्) की भूमि में रहता है, 'खण्ड प्रलय' की अवधि में मलकूत (अदृश्य जगत्) की भूमि में रहता है, और महाप्रलय के बाद जबरूत (उच्चतम स्वर्ग में) रहता है।

ऐ मेरे दोस्तो! जो कुछ मैंने इस अध्याय में लिखा है, वह बहुत परिश्रम और यथेष्ठ अनुशीलन का परिणाम है और मेरी अपनी प्रेरणा की संगति में है, जिसे आपने किसी किताब में न पढ़ा हो या किसी से नहीं सुना हो, (उपर्युक्त) पवित्र क़ुरआन की दोनों आयतों के अनुपालन में भी है। अब, यदि यह विवरण किसी मन्द-बुद्धि के कानों के लिए गम्भीर लगे उसे लेकर मैं भय का विचार नहीं रखता : ''**अल्लाह सारे संसार से बेपरवाह है।**''

२२. ब्रह्माण्ड के प्रवाहानन्त्य का निरूपण

भारतीय शास्त्रज्ञों के अनुसार, सर्वोच्च ईश्वर का कोई एकमात्र दिन या रात नहीं है, किन्तु जब रात समाप्त होती है तो दिन आता है और जब दिन का अन्त होता है तो रात होती है।

यह प्रक्रिया अनन्त रूप से चलती रहेगी। इसे अनाद परवाह (= अनादि प्रवाह) कहते हैं। ख़्वाजा हाफ़िज़ ने, उन पर अपार कृपा हो, अनन्त चक्र की ओर इंगित करते हुए कहा है :

मेरी कहानी का अन्त नहीं है या उस प्रियतम की कहानी का अन्त नहीं है;
क्योंकि जिसका आदि नहीं उसका अन्त नहीं।

अब, उस चित्स्वरूप के प्रकटन और संगोपन की जो भी विशेषता पहले के दिनों और रात्रियों में प्रतीत होती है, पुनः यथार्थतः उसी रूप में आगे के दिनों और रात्रियों में घटित होगी, जैसा कि पवित्र क़ुरआन में कहा है :

''जिस तरह हमने (सृष्टि की) प्रथम रचना का आरम्भ किया था उसी तरह हम फिर उसकी पुनरावृत्ति करेंगे।''

इस प्रकार, इस चक्र के पूरे होने पर, अदम का संसार, मनुष्यों का पिता पुनः उसी प्रकार प्रकट होगा, और, इस प्रकार यह अन्त-रहित होगा और क़ुरआन की सूरत : **''जिस तरह उसने तुम्हें पहली बार पैदा किया उसी तरह तुम फिर पैदा होगे।''** भी उपर्युक्त (वक्तव्य) का प्रामाणिक तर्क है। यदि कोई सन्देह करे और कहे कि हमारे सन्देष्टा (सल्ल०) की अन्तिमता इस विवरण से सिद्ध नहीं होती, मैं उससे कहूँगा कि दूसरे ईश्वरीय दिन में भी, हमारे सन्देष्टा (सल्ल०) उसी रूप में पुनः प्रकट होंगे और वे कहे जाएंगे ''सन्देष्टाओं में अन्तिम''। यह परम्परा जिसे 'शबे' मे'राज़' के सम्बन्ध में! इस सम्बन्ध में एक तर्क है, यह कहा गया है कि हमारे सन्देष्टा (सल्ल०) ने देखा कि ऊंटों की एक अन्तहीन पंक्ति जा रही है और हर ऊंट पर दो सन्दूक लदे थे, और हर सन्दूक हमारे संसार जैसा एक संसार था और हर संसार में उन्हीं जैसे एक मुहम्मद थे।

जिब्रील से पूछा- ''यह क्या है ?''

जिब्र'ईल ने उत्तर दिया- ऐ ईश्वर के सन्देष्टा! मैं जब से उत्पन्न हुआ हूँ तभी मैं सन्दूक़ लिए हुए और आगे बढ़ते हुए ऊंटों की पंक्ति को देख रहा हूँ, लेकिन इसका क्या अर्थ है यह मैं नहीं जानता।

(जैसा कि मुझे विश्वास है) चक्र की अनन्तता का संकेत है।

ईश्वर की वन्दना करता हूँ और उसकी कृपा मानता हूँ जिसने इस पुस्तिका को पूरी करने की क्षमता प्रदान की, जिसका नाम 'मज्म'उल् बह्रैन है, १०६५ हिज़री में, जो इस अपीड़ित और अविषण्ण फ़क़ीर मुहम्मद दारा शुकोह की आयु के बयालीसवें वर्ष में पूर्ण हुई है।

•

समुद्र-सङ्गमः

समुद्र-सङ्गमः

प्रारम्भः किल तन्नाम्ना यस्य नाम न विद्यते।
सर्वाण्यपि हि नामानि यस्य नामानि वस्तुनः।।

नमस्कारस्य बाहुल्यमद्वितीयाय वस्तुने तस्मै, येन अनीश्वरत्वसेश्वरा-त्मकौ द्वौ शिखं(ड?)कौ अत्यन्तपरस्परविरुद्धौ शोभमान-निरुपमा-सदृशस्वीयमुखे प्रकटीकृतौ, याल्पा (याम्यां ?) सुन्दरमुखावर(णं) न कृतम्। अनीशरत्वञ्च सेशत्वं तन्मार्गमनुगच्छति स एक एवाप्रतिम इत्येवङ्गतश्च ते।

स सर्वत्र प्रकटः स सर्वावभासः स आदिः सोऽन्तस्तदतिरिक्तं वस्तु नास्तीति।

प्रतिवेशी सवासी च सहगः सर्वमेव सः।
पटच्चरे दरिद्रस्य क्षौमे राज्ञः स सर्वतः।।
भाति संसदि भेदोऽयमभेदो रहसि स्फुटः।
ईशस्य शपनं भूयस्तच्छपः सर्वमेव सः।।

प्रणामानामानन्त्यं परमप्रकाशप्रकाशके जगत्सृष्टिनिमित्तेऽस्माकं सिद्धानां सिद्धे परमेश्वरेण सत्कृते सन्मानिते च, तथा पवित्रतमे तत्परिवारे महत्तरे तत्प्रतिनिधिरूपे च।

अथ कथयति वीतराग-विगतशोकसन्दोह-महम्मददाराशुकोह। एवं यद् विज्ञाय सकलतत्त्वतत्त्वं निर्णीय च सत्यैकात्मवादतात्पर्यम्, आसाद्य च भगवन्महाप्रसादं तदनु चैतद् विचारमध्ये प्रविष्टं मया यदन्तं प्राप्नुयामभिप्रायस्य सिद्धानां निश्चेतृणां वैदिकानामनादिकुलजानामिति। अथ च कैश्चि[त्] कैश्चित्परिपूर्णैः वैदिकैः सह, विशेषतश्चैतन्यस्वरूपज्ञान-मूर्ति-सद्गुरुबाबालाल अन्तं तपस्याया ज्ञानस्य सौबुध्यफलस्येश्वरप्राप्ते[:] शान्तेश्च, प्राप्तवान्, तेन च सह पुनः पुनः सङ्गतीर्गोष्ठीश्चाकरवम्, परिभाषाभेदातिरिक्तं कमपि भेदं स्वरूपावाप्तौ नापश्यम्। अतश्च द्वयोरप्येकवाक्यतामकरवम्। त[त]श्च

सत्यावाप्त्यधिकारिभिरवश्यं ज्ञातव्यानां सफलानां कतिपयवाक्यानां सारस्य सङ्ग्रहमकरवम्, ज्ञानिनोर्द्वयोरपि मतसमुद्रयोरिह सङ्गम इति नाम चास्थापयं 'समुद्र-सङ्गम' इति।

इत्थं किलोपदेशो महानुभावानां यन्निर्मत्सरतया तत्त्व-विवेचनं सकलवेदान्तानां प्रयोजनम्। अतो यः कश्चिद् विवेकी ज्ञानी च स एव जानाति तत्त्वनिर्णयतलस्पर्शे कीदृशः श्रम इति। निश्चयेन विद्वांसो ज्ञानिनश्च बहुतरं सुखमितः प्राप्स्यन्ति, न प्राप्स्यन्ति च भेदि(द)वादिनः कुण्ठितमतय इति। स्वानुभवानुसारेण च निर्णीय तत्त्वार्थं स्वकुटुम्बेष्वनुकम्पया कृतोऽयमारम्भः, न पुनरज्ञानिनोर्विभिन्नमतसम्बन्धिनोर्बोधनेन मम प्रयोजनमिति। अन्यच्च, महापुरुषः ष्वाजै अहरारनामा शुद्धान्तःकरणः किल आज्ञप्तवान्- "यद्यहं जानीयां कश्चन निरीश्वरोऽपि कथाख्यदेशस्थितोऽपि मनोनुरञ्जकशब्दैस्तत्त्ववार्तां वदतीति, तर्हि तत्र गत्वा श्रोष्यामि शिक्षिष्यामि अनुनेष्यामि च तम्।।"

अत्र च परमेश्वरादेव मम सामर्थ्यं परमेश्वर एव मे सहाय [:]।

१. अथ अनासिरापरपर्यायभूतव्याख्या

जानीत, भूतानि पञ्च। अनुभूयमानवस्तुसमवायिकारणानि एतानि। तत्राद्यं 'उन्सुरअजम' पदामिधेयं, द्वितीयं 'बाद' पदाभिधेयं, तृतीयं आतशपदाभिधेयं चतुर्थं 'आब'पदाभिधेयं पञ्चमं 'षाक'पदाभिधेयम्। एतानि मुनिभिराकाशं वायुस्तेजो जलं पृथिवीति व्यवहृतानि। तत्राकाशं त्रिविधमुक्तम् भूताकाशश्चित्ताकाशश्चिदाकाश इति। तत्र सर्वभूतव्यापको भूताकाशः, ब्रह्माण्डव्यापकश्चित्ताकाशः, सर्वव्यापकः सर्वत्र स्थितश्चिदाकाशः। स चाजन्यः, तज्जन्यत्वस्य तद्विनाशस्य च वेदेऽस्मद्वेदे वा क्वचिदपि कण्डिकायामप्रतिपादनात्, युक्त्यसहत्वाच्च। चिदाकाशात्प्रथमं इष्क इति पदार्थः अभूत्। स वैदिकमुनिभिर्मायेत्युच्यते। यदाह परमसिद्धो भगवद्वाक्यम्, "**अहं गुप्ताकरः स्थितस्ततः प्रसिद्धः स्यामितीच्छया सृष्टिं कृतवानि**"ति। तस्या मायायाः सकाशात् जीवात्मा प्रादुर्बभूव। स एव सिद्धानां सिद्धस्य तत्त्वमिति वदन्ति। अयमेव वैदिकमुनिभिर्हिरण्यगर्भ इत्युच्यते। एष एव व्यञ्जनया अमा इत्युच्यते।

अतः परं वायुव्याख्या। तत्र वायुर्नाम परमात्मनो निःश्वसितमिति वदन्ति। निःश्वासरूपो वायुरुत्पन्नः। तस्य श्वासस्य शुद्धचैतन्येन गु(सु?)प्तकाले

सृष्ट्यर्थं निरोधः कृतस्तत ऊष्मा निःसृतः। अतो वायोस्तेजस उत्पत्तिः। तस्मिंश्च निःश्वसिते आत्मीयत्वस्रष्टृत्ववति शीतले जाते सति तेजसः सकाशाज्जलस्योत्पत्तिः। वायुतेजसोः सूक्ष्मत्वेनाप्रत्यक्षत्वाज्जलस्य स्थूलतया प्रत्यक्षत्वात् कैश्चिदुक्तं जलस्य प्रथममुत्पत्तिरिति। जलानन्तरं पृथिवी। इयं पृथिवी जलस्य शरस्थानीया, यथा दुग्धस्याधस्तादग्निज्वालने दुग्धे शरो भवति किं वेद्म्यनन्तार्णवसंज्ञकस्य बाष्पोऽन्तरिक्षं पृथिवी शरश्च। एतेषां भूतानां महाप्रलये व्युत्क्रमेण लयः। प्रथमं पृथिव्या जले लयः। ततो जलं तेजसा शुष्यत्तेजसि लीयते। ततो वायुनाऽभिहन्यमानं तेजो वायौ लीयते। ततो वायुरुन्सुरअ-अजमपदामिधेयेन सह चिदाकाशे लीयते। अस्मद्वेदे श्रूयते "**सर्वं वस्तु विनश्यति विना परब्रह्मणो मुखात्मक-चिदाकाशम्।**" अन्यत्रास्मद्वेदे श्रूयते "**सर्वं पृथिवीसंस्थितं वस्तु नश्यति नित्यं तिष्ठति त्वदीयपरब्रह्मणो रजस्तमोरूपगुणयुक्तस्य मुखम्।**" सर्ववस्तुविनाश-प्रतिपादकेऽस्मिन् कण्डिकाद्वये मुखपदस्य प्रसङ्गः कृतः। तस्य प्रयोजनं चिदाकाशोऽविनाशीति। यद्यत्र मुखपदं न स्यात्तदेत्थमुक्तं स्यात्, सर्वं वस्तु विनश्यति परब्रह्मणि। अतो मुखपदप्रसङ्गश्चिदाकाशनिमित्तं तिष्ठति यतश्चिदाकाशं शुद्धचैतन्यस्य सूक्ष्मशरीरस्थानम्। पृथिवीं तु मुनयो व्यवहारे देवी इति वदन्ति, यतः सर्वं वस्तु तया प्रसूयते, पुनः सर्वं वस्तु तस्यां लीयते। तथाऽस्मद्वेदे श्रूयते "**तस्याः पृथिव्याः सकाशात् अस्माभिर्भवतां सृष्टि[ः]कृता। पुनस्तस्यामेव भवन्तो** मया नेया[ः]। **पुनः पृथिव्याः सकाशाद् बहिरानेया इति।**

२. [इन्द्रियाणां निरूपणम्]

अथेन्द्रियाणि पञ्च-शाम्म[अ]-जायिक [जायक़ा]-वासर [बासिरा]-सामिअ-लामिसाख्यानि। तेषां मुनिवचोभि[र्] नामानि घ्राणरसनत्वक्-चक्षुःश्रोत्राणीति। एते एतेषां विषयाः - मशूमूम्-मजूष्-मुन्सर-मलमूस्-मसमूअ (?) इति पदाभिधेयाः, गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाः। तानि चेन्द्रियाणि प्रत्येकं तत्तद्भूतोत्पन्नानि। तत्र घ्राणं पार्थिवम्, पृथिवीं विना कस्मिन्नपि भूते गन्धानुपलम्भात्, गन्धवत्त्वञ्च गन्धग्राहकत्वात्। रसनेन्द्रियं जलीयम्, रसव्यञ्जकत्वात्, चक्षुरिन्द्रियं तैजसम्, रूपग्राहकत्वात्, प्रकाशकत्वस्य द्वयोरपि प्रकटत्वात्, त्वगिन्द्रियं वायवीयं स्पर्श-व्यञ्जकत्वात्, श्रवणेन्द्रियं भूताकाशीयम्, शब्दग्राहकत्वात्। अनाहतशब्दश्रवणद्वारा च सिद्धानां

चिदाकाशतत्त्वं प्रकटं जायते, सिद्धै[र्] विनान्यैर्ज्ञातुमशक्यत्वात्। इदं श्रवणरूपं ध्यानम् अस्मदीयानां सिद्धानाञ्च साधारणमेव। इदञ्च ध्यानम् अस्मदेकात्मवादिनो निरन्तरश्रवणमिति वदन्ति, तदेव सिद्धैर्ध्वनिरित्युच्यते। आभ्यन्तरेन्द्रियाणि पञ्च, ष्पाल-मुतसरिफ-हाफिज-वाहिमहि-सिमुश्ररक् [हस्से मुश्तरक़-मुतख़य्यिला-मुतफ़क्किरा-हाफ़िजा-वाहिमा] सिद्धमते चत्वारि, मनोबुद्धिचित्ताहङ्काराः। एतेषां समुदायः पञ्चममन्तःकरणमिति वदन्ति। तत्र मनसो द्वे शक्ती सङ्कल्पविकल्पात्म(त्मि)के करणाकरणरूपे। द्वितीयं बुद्धिः। बुद्धिस्तु सम्यग्वस्तुगामिनी असम्यग्वस्तुगामिनी च। चित्तमेकं स्वभावं धत्ते, तं वृत्तिं वदन्ति। अयं स्वभावस्तस्य चरणस्थानीयः। एतच्छेदेन चित्तं धावनात्परावर्तते। चित्तं तु मनसो जाङ्घिकम्। तत्कार्यं सर्वदिग्धावनम्। तत् सदसद्विवेकक्षमं च न भवति। चतुर्थमन्तरिन्द्रियमहङ्कारः, अहं करोमीत्यादिप्रतीतिसाक्षिकः। अङ्ककारः परमात्मनः कार्यम्, मायासान्निध्यात्। स चाहङ्कारस्त्रिविधः, सात्त्विको राजसस्तामसश्चेति। तत्र सत्त्विको ज्ञानस्वरूप उत्तमः। स च परमात्मनः सर्वं खल्वहमित्यभिभानरूपः। अयं सकलवस्तु-सामान्यतारूपः सर्वव्यापकः, यथास्मद्वेदे श्रूयते- "**अला इन्नहू बिकुल्लि शै-इम् मुहीत**" अस्यार्थः, ज्ञानी चेतनावान् भवति निश्चयेन सर्वव्यापकः' इति। "**हुवल् अव्वलु वल्आखिरु वज्जाहिरु वल्बातिनु**" अस्यार्थः, तन्मात्रमादिः तन्मात्रमन्तः तन्मात्रं प्रकटं तन्मात्रं गुप्तमिति। राजसोऽहङ्कारो मध्यमः। स च जीवभावमापन्नस्य शरीराद् भूतेभ्यश्चातिरिक्तोऽहम्, नाहं भूतसम्बद्ध इत्याकारकः, तथास्मद्वेदे, "**नास्ति तत्सदृशं वस्तु, ईश्वरोऽवाप्तकामः निरपेक्षः**", संसारप्राकट्यात्। तामसाहङ्कारोऽधमः। अयञ्चाविद्यातः। अविद्या तु शुद्धब्रह्मण उपासकत्वकल्पना। अधमत्वं चास्यातिनीचत्वात्, परिच्छिन्नत्वाच्च। अज्ञाना बुद्धि[:]प्रमादानङ्गीकरोति स्वीयस्थूलशरीरं दृष्ट्वा वदति अहं त्वमिति, एकत्वमान्यताया (कक्षाया) दूरे पतति। अस्मद्वेदे श्रूयते "**वद हे महासिद्ध, अयमस्ति अस्मादतिरिक्तं सद्वस्तु नास्ति। अहं मनुष्यो भवत्सदृशः**"। वसिष्ठेनाप्युक्तम्-शुद्धचैतन्यं हि परिच्छिन्नं स्यामितीच्छया तत्क्षण एव परमात्मरूपं बभूव। ततोऽतिपरिच्छिन्नतया अहङ्काररूपं बभूव। ततोऽपि परिच्छिन्नं महत्तत्त्वरूपं बभूव। तत्संकल्पेन मनो बभूव। तत्प्रकृतिपदेनाप्युच्यते। मनःसङ्कल्पात् पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्ररूपाण्युत्पद्यन्ते। तत्सङ्कल्पात् कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थाख्यान्युत्पद्यन्ते। एतत्संकल्पाद् बाह्या आभ्यन्तरा अवयवा उत्पद्यन्ते। एतत्समुदायं शरीरं वदन्ति। इत्थं सर्वपदार्थप्रपितामहरूपः परमात्मा

एतान्युत्पाद्य एतैरात्मानं बबन्ध, यथा कोशकीटो लालानिर्मितैस्तन्तुभिरात्मानम्। इत्थं जगत् सृष्ट्वा स्वयं तत्प्रविवेश, यथा बीजं स्वतो वृक्षमुत्पाद्य तत्रानुप्रविशति। पूर्वं हि चिद्रूपे सर्वं गुप्तमासीत्। साम्प्रतं प्रकटीभूतजगति स्वयं गुप्त इति।

३. अथ ध्याननिरुपणम्

तत्र यद्यपि सर्वश्वासनिरोधा नानाविधाः सिद्धैरुक्तास्तथापि अजपां सर्वोत्कृष्टां वदन्ति, यत इयं जाग्रद्दशायां स्वप्नदशायाञ्च स्वभावतः सर्व-प्राणिनां सर्वदा सम्भवति। तदुक्तमस्मद्वेदे-"**नास्ति किञ्चिदीदृशं वस्तु यत्परमेश्वरजपं सर्वदा न करोतीति, परन्तु भवन्तो न जानन्ति**"। अनेनाजपाजप एवोक्तः। तस्योच्चारणे पदद्वयं कृतम्, तत्र श्वासस्योपरिगमने स इति पदमाविर्भवति, नीचैरागमने अहमिति। अस्यार्थः सोऽहमिति। अस्मदेकात्मवादिनोऽपि श्वासक्रियायां हु अल्लाह इति जानन्ति। श्वासस्योपरि गमने 'हु' इति, बहिरागमने 'अल्लाह' इति प्रकटीभवति।

४. अथ परमेश्वरगुणाख्यानम्

एकात्मवादिनां मते परमेश्वरस्य गुणद्वयमस्ति। तच्च जलाल-जमालाख्यम्। सर्वा सृष्टिरस्माद् गुणद्वयाद् बहिर्भूता। सिद्धैस्तु त्रय उक्ता अतस्त्रिगुणं वदन्ति, सत्त्वं रजस्तम इति। तत्र रजस उत्पत्तिः, सत्त्वात्पालनम्, तमसः प्रलयः। अस्मदीयैस्तु प्रतिपालकं सत्त्वगुणं रजःपदवाच्ये जमाले अन्तर्भाव्य द्वैविध्यमुक्तम्। एते त्रयोऽपि गुणाः परस्परं संवलितवृत्तयः। एतेषामधिष्ठातारस्त्रिमूर्तिरूपा उच्यन्ते। ते च ब्रह्म-विष्णु-महेशाः। अस्मदीया जिबरईल मीकाईल इसराफील इति वदन्ति। उत्पत्त्यधिष्ठाता जिबरईल, प्रतिपालनाधिष्ठाता मीकाईल, संहारस्याधिष्ठाता इस्राफील इति। एतेषां भूतत्रयरूपा जलतेजोवायवः सम्बन्धिनः। जलं जिबरईलस्य सम्बन्धि, तेजो मीकाईलसम्बन्धि, वायुः इसराफीलसम्बन्धी। एते त्रयोऽपि सर्वशरीरे प्रकटाः। तथाहि, जलरूपो ब्रह्मा जिह्वायाम्, अतः परमेश्वरवाक्य-प्रकाशकः, उच्चारणं एतस्मात् प्रकटीभूतम्; तेजोरूपो विष्णुश्चक्षुषि, यतः प्रकाशो ज्योतिश्च तत्रास्ति, दर्शनमेतस्मात् प्रकटम्। वायुरूपो महेशो नासायाम, शंखस्य फूत्कारद्वयमस्मात् प्रकटं श्वासद्वयरूपम्; तस्य समाप्तौ विनश्यति प्राणिजातम्। त्रयो गुणाः परमेश्वरस्य गुणाः, ते चोत्पत्ति-स्थिति-लयहेतवः। एतेषां गुणानां प्रकाशका

अपि ब्रह्म-विष्णु-महेशाः। ते च गुणाः सर्ववस्तुषु प्रकटाः। प्रथममुत्पत्तिस्ततः कियत्कालं स्थितिः पश्चान्नाश इति। त्रिमूर्तेस्तस्यैतस्य सामर्थ्यापरपर्यायं शक्तित्रयं सरस्वती लक्ष्मीः पार्वतीति वदन्ति। तत्र सरस्वती रजोगुणयुक्तब्रह्मसम्बद्धा। पार्वती तमोगुणयुक्तमहेशसम्बद्धा। लक्ष्मीः सत्त्वगुणयुक्तविष्णुसम्बद्धा।

५. अथ रूहापरपर्यायस्य आत्मनो निरूपणम्

रूहो हि द्विविधः, रूहजूजई रूहकुल्ली च। मुनय एतौ द्वौ जीवात्मानं परमात्मानं च वदन्ति। शुद्धचैतन्यं स्थूलोपाधिना सूक्ष्मोपाधिना च परिच्छिन्नम्। ततः सूक्ष्मोपाधिना परिच्छिन्नं सत् रूह आत्मेत्युच्यते, स्थूलोपाधितया परिच्छिन्नं सत् देहः शरीरमित्युच्यते। अथ च शुद्धचैतन्यं प्रथमपरिच्छेदकात् परिच्छिन्नं सत् रुहआजमपदाभिधेयमेकत्वमान्यतां धारयति। सर्वे रूहास्तस्मिन्नन्तर्भूतास्तमेव परमात्मानं रूहकुल्लीति च वदन्ति। चित्रजलतरङ्गः शरीरात्मस्थानीयः। सर्वे तरङ्गाः समष्टिरूपद्वारा परमात्मपदेनोच्यन्ते। शुद्धस्वच्छ-जलं अत्रभवत्सद्रूप-शुद्धचैतन्यस्थानीयम्।

६. अथ प्राणादिनिरूपणम्

स च सर्वशरीरान्तः सञ्चरन् वायुर्यतः पञ्चसु स्थानेषु तिष्ठति ततो नामपञ्चकं धत्ते, तानि च नामानि प्राणापानसमानोदानव्यानरूपाणि। नासातः पादाङ्गुष्ठपर्यन्तं सञ्चरन् प्राणः, श्वास एतिद्विकारः, गुदान्मेढ्रपर्यन्तं सञ्चरन्नपानः। एतयोर्द्वयोर्नाभिं परितो ग्रन्थिर्जीवननिमित्तम्। नाभिहृदययोर्मध्ये सञ्चरन् समानः। कण्ठाद् ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं सञ्चरन् उदानः। सर्वशरीरे अन्तर्बहिश्च त्वचमभिव्याप्य वर्तमानो व्यानः।

७. अथ जगच्चतुष्टयनिरूपणम्

एषु जगत्सु सर्वप्राणिनः अवश्यं सञ्चरन्ति। केषाञ्चिदेकात्मवादिनां तानि जगन्ति चत्वारि, नासूत-मलकूत-जबरूत-लाहूत इति। केचिज्जगन्ति पञ्च वदन्ति, आलममिसाल-(आलमे मिसाल) पदाभिधेयं पञ्चमं वदन्ति। केचन आलममिसालं मलकूतेऽन्तर्भावयन्तश्चत्वारि वदन्ति। सिद्धा एतानि अवस्थाश्चतस्र इति वदन्ति, जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयाख्यास्तत्र जाग्रन्नासूतानुसारि, तच्च जगत्प्रकटं जागरणरूपञ्च। अथ स्वप्नः मलकूतानुसारी. स च

जगदात्मनः जगत्स्वापश्च। अथ सुषुप्तिः जबरूतानुसारिणी, तस्यां जगद्द्वयचित्राणि त्वन्ताहन्ते च न सन्ति। चक्षुषोरुन्मीलनेन निमीलनेनोपविष्टे सति बहवः कुलद्वय- विरक्तास्तज्जगदनभिज्ञाः सर्वोत्कृष्टमतेन गुरुणा जुनेदनाम्ना शुद्धान्तःकरणेन प्रतिबोधिताः सन्त आज्ञप्ताः, एकात्मता सा यन्मुहूर्त्तमात्रमुपविष्टा विना यत्नम्। अन्यो महापुरुषो वदति, यत्नं विनेति किं प्राप्तिर्विना गवेषणं दर्शनं विनाऽवलोकनम् द्रष्टा दृष्टिविषये निमित्तम् अतो मुहूर्तमात्रमुपवेशनमित्थं यत् जागत्स्वप्नरूपजगद्द्वयचित्राणि तन्मुहूर्ते मनसि नायान्ति। तदुक्तं ब्रह्मज्ञाने महादेवपार्वतीसंवादे-

दृष्टिः स्थिरा यस्य विनावलोकनं
वायुः स्थिरो यस्य विना निरोधनम्।
मनः स्थिरं यस्य विनाऽवलम्बनं
स एव योगी स गुरुः स सेव्यः।।

तदेवोक्तं चास्माकं सिद्धैः शुद्धान्तःकरणैः-वाञ्छसि चेत् प्राप्तुं क्षणमात्रं नान्वेषय, वाञ्छसि चेज् ज्ञातुं क्षणमात्रं मा जानीहि, यतो रहसि चेदन्वेषयसि प्रकटाद् दूरीभवसि, प्रकटे चेदन्वेषयसि रहसो दूरीभवसि, अतो रहःप्रकटाभ्यां युक्तितो बहिर्भूय पादप्रसारं सुखं स्वपिहि तमाश्रित्य इति। अथ तुरीया लाहूतानुसारिणी। सा शुद्धचैतन्यस्वरूपा व्यापिकाच्छादिका जगत्त्रयस्य। यदि अधिकारी जाग्रतः स्वप्ने स्वप्नात् सुषुप्तौ सुषुप्तेस्तुरीयायामित्येवं क्रमेण सञ्चरति तदेत्थं तस्य वर्द्धनं भवति, क्षरश्चाक्षरो भवति। अत्रभवत्तत्त्वानां तत्त्वं सिद्धा निर्गुणं वदन्ति। तदेव यदि तुरीयातः सुषुप्तौ, सुषुप्तेः स्वप्ने, स्वप्नाज्जाग्रति विसञ्चरन्ति तदा अक्षरः क्षरो भवति।

८. अथ शब्दनादयोर्व्याख्या

परमात्मनो निःश्वसितं निमित्तं प्रणवपर्याय-कुन्-शब्दस्रष्टृत्वस्य प्रकटं जातम्। तस्य शब्दनादस्य सिद्धैः सरस्वतीति नाम स्थापितम्। सर्वे शब्दा ध्वन्यात्मका वर्णात्मकाश्च तस्मादुत्पन्नाः। सर्वं जगत् तस्यानुरञ्जकस्य ध्वनिमयम्। केन श्रुत ईदृशो लम्बमानो ध्वनिः? अयं नादशब्दः सिद्धानां मते त्रिविधः। प्रथमोऽनाहतः। अयमर्थः, ईदृशशब्दः सार्वदिकः। एकात्मवादिन एतच्छब्दं अपरिच्छिन्नं सर्वजपानां चक्रवर्तिनं वदन्ति। अयं नादोऽनादिः प्रत्यक्षत्वं चिदाकाशस्य, एतस्मात् एतच्छब्दं न प्राप्नुवन्ति कुलद्वयगतमहान्तौ

विना। द्वितीय आहतः शब्दस्तु परस्पराभिधातादुत्पद्यते विना वर्णोच्चारणम्। तृतीयशब्दो वर्णात्मकः पदे(दो)च्चारण- प्रयत्नादुत्पद्यते। उक्तञ्च,

आहतोऽनाहतश्चेति द्विविधः शब्द उच्यते।
तत्रानाहतनादं तु मुनयः समुपासते।।
गुरूपदिष्टमार्गेण मुक्तिदं न तु रञ्जकम्। इति

अयं वर्णात्मकः शब्दः सरस्वतीसम्बन्धी। एतस्माच्छब्दात् नाम्नां महीयानस्माकं मध्ये अस्ति स 'इस्मआज़म' उच्यते। सिद्धास्तु तं वेदमुख इति वदन्ति। 'ओम्' अस्य वेदमुखस्यार्थः। सोऽस्ति गुणत्रयस्वामी, गुणत्रयं तु उत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तम्। तदेवाकारोकारमकारा वदन्ति, ते च तत्र प्रकटाः। अथ चैतन्नाम्नो लिपिद्वयेऽप्याकृतिविशेष एक एव। चतुर्णामपि भूतानाम् जलतेजोवायूवाकाशानाम्। शुद्धचैतन्यस्य चात्र चिह्नानि प्रकटानि।

९. अथ नूरपर्यायप्रकाशव्याख्या

स च त्रिविधः। यदि जलालगुणपर्यायतमोगुणात् प्रकटो भवति तदा सूर्यरूपं वा सुवर्णरूपं वा अग्निरूपं वा भवति। यदि जमालगुणपर्यायसत्त्वगुणात्प्रकटो भवति तदा चन्द्ररूपं वा रजतरूपं वा जलरूपं वा भवति। अथ च गुणासंस्पृष्टस्वरूपप्रकाशन्तु विना परमेश्वरीय- सिद्धैः(?) एषामित्थमस्मद्वेदे आज्ञप्तं, **स्वप्रकाशं स्वमार्गं ज्ञापयति, तं प्रति यमपेक्षते, तैः अन्ये न प्राप्नुवन्ति**। किञ्च, स प्रकाशस्तु यदि कश्चित् पुरुषः स्वपिति, अथवा चक्षुषी निमील्य तिष्ठति, चक्षुषा न पश्यति, कर्णेन न शृणोति, न वाचा वदति, न नासिकया जिघ्रति न त्वचा स्पृशति, स्वप्ने सर्वा एता [:] क्रिया एकेनैव क्रियन्ते। तत्र निष्प्रयोजना अवयवा बाह्येन्द्रियाणि ज्योतींषि प्रदीपाश्च। घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणि मिथ एकीभूतानि एकव्यक्तिरूपाणि जायन्ते, स ब्रह्मप्रकाश उच्यते। हे सखे त्वं विचारय मया, किमुक्तम्। यत इदं तीक्ष्णबुद्धेर्विचारस्य स्थानम्। सिद्धानां सिद्धेन एतद्विचारस्य प्रशंसायां आज्ञप्तम्- अयमेको विचारस्तस्मिन् मुहूर्तमात्रमवस्थानं भुवनत्रयगतमनुष्यदैत्यादिधर्मादपि श्रेष्ठतममिति। स प्रकाशः शुद्धचैतन्यस्य स्वरूपम्, यथास्मद्वेदे- **परमेश्वर आकाश- पृथिव्योः प्रकाशः**, तं प्रकाशं सिद्धा ज्योतिःस्वरूपं सदाप्रकाशं स्वयम्प्रकाशञ्च वदन्ति। अयमर्थः, स्वयं स्वयमेव नित्यं प्रकाशोऽस्ति। जगत् तस्मिन् दृश्यते वा न वा। यथा

एकात्मवादिनः, प्रकाशरूपो न तु प्रकाशवान् इति वदन्ति तथा सिद्धा अपि ज्योतिःस्वरूपो न तु ज्योतिष्मानिति वदन्ति। तदुक्तमस्मद्वेदे **शुद्धं ब्रह्म प्रकाशः पृथिव्याकाशयोः, स प्रकाशो यथा गवाक्षदीपः। स दीपः काचघटीमध्ये, काचघटी च प्रकृष्टप्रकाश-तारावत् प्रकाशते। स दीपः प्रज्वलित इंगुदीतैलेन। स चैंगुदीवृक्षो न पूर्वे न वा पश्चिमे। निकटे तु शोभमानेङ्गुदीफलतैलं प्रकाशते विनाऽग्नि-संयोगे। प्रकाशस्योपरि प्रकाशः। मार्गं ज्ञापयति परमेश्वरः स्वप्रकाशस्य यमिच्छति।** अथ यद् विरक्तेन मया बुद्धं तदिदम्- गवाक्षपदस्य प्रयोजनं ब्रह्माण्डं प्रकटं, दीपपदप्रयोजनं ज्योतिःस्वरूपम्, काचघटीपदप्रयोजनमात्मा। सा काचघटी आत्मा भवति, तारासदृशप्रकाशवती भवति। अस्य दीपस्य प्रकाशेन काचघटी अपि दीपसदृशतां ज्ञापयति। प्रज्वलितः स दीपो व्यञ्जनया शुद्धचैतन्यप्रकाशः। शोभमानशुद्धचैतन्यस्वरूपवृक्षात् स सर्वदिग्भ्यो व्यावृत्तः न पूर्वस्यां न पश्चिमायाम्। इङ्गुदीतैलपदप्रयोजनं परमात्मा। तच्च तैलं अतिसूक्ष्मम् अतिस्वच्छम्। स्वयं स्वयमेव प्रकाशते। प्रयोजनं नास्ति प्रज्वलने। एकात्मवादिनां **गुरुर्वासितीनामा** आत्मप्रशंसायामाज्ञप्तवान्-आत्मनस्तु काचघटी तथा प्रकाशवती यथा स्मार्तत्वा(स्या)ग्नेः स्पर्शस्य वेद श्रवणस्य चापेक्षा नास्तीति। अत्यन्तसामर्थ्येन निकटे स्वयं स्वयमेव प्रकाशो भवति। अयं तैलप्रकाशः शुद्धब्रह्मप्रकाशेन सह प्रकाशोपरिप्रकाशः। अस्यार्थः, अतिस्वच्छत्व-प्रकाशत्वाभ्यां प्रकाशः प्रकाशोपरि। ईदृशोऽपि प्रकाशोपरि-प्रकाशो न दृश्यते केनापि तावद् यावद् स्वीयैकत्वप्रकाशेन ...मार्गं ज्ञापयति। प्रयोजनमिदम्, शुद्धं ब्रह्म स्वप्रकाशेन प्रकाशसम्बन्धिना सूक्ष्माणामावरणानां मध्ये प्रकटम्। कश्चन अन्धकारः आवरणं वा तन्मध्ये नास्ति। यादृशः शुद्धब्रह्मप्रकाशः परमात्मावरणे प्रकटः, अथ परमात्मा आत्मनामावरणे, आत्मनः शरीराणामावरणे। अनेन प्रकारेण दीपस्तैलसहितः काचघट्यावरणमध्ये प्रकटः, काचघटी गवाक्षावरणमध्ये। एते शुद्धब्रह्मप्रकाश-व्यापारेण प्रकाशोपरि प्रकाशं कृतवन्तः।

१०. अथेश्वरदर्शननिरूपणम्

ईश्वरदर्शनं सिद्धैः साक्षात्कार इत्युच्यते, बाह्यचक्षुषा अन्तश्चक्षुषा च। जानीहि, परमेश्वरदर्शने इहामुत्र दृशा(?)बाह्याभ्यन्तरचाक्षुषे केषामपि सिद्धानां मुनीनां वा परमेश्वरकृतशुद्धान्तःकरणानां नास्ति शङ्का विप्रतिपत्तिः परस्परविरोधो

वा। सर्वेषामथ(प्य?)पौरुषेयग्रन्थवतां परिपूर्णानां दर्शनवतां प्रतिमतम् अस्मिन्नर्थे श्रद्धाऽस्ति, किं कुराणवतां किं वेदवतां किं तौरातवतां किं इंजीलवताम्। अज्ञानिनोऽन्धाश्च ते ये स्वस्वमार्गे परमेश्वर- प्रत्यक्षं नाङ्गीकुर्वन्ति। सर्वसामर्थ्यवतः परमेश्वरस्य स्वप्रत्यक्षकरणे कुतो न सामर्थ्यम्? अस्मिन् विषये सुत्रीनां सम्यक् मार्गोपलब्धिः। यदि निर्गुणं शुद्धचैतन्यं द्रष्टुं शक्नोति तदेदमत्यन्तबाधितम्, शुद्धस्य एकाकिनः सूक्ष्मस्यापरिछिन्नस्य यावत् परिच्छेदः सूक्ष्मावरणप्रकाशश्च न भवति तावत् प्रत्यक्षस्यासम्भवात्। तस्मात् ईदृशस्य प्रत्यक्षस्यात्यन्ताभावः। यदुक्तं परलोक एवेश्वरप्रत्यक्षं न त्विह लोक इति तन्निर्मूलम्। यदि तस्मिन् सर्व- सामर्थ्यम् अस्ति, तदा सर्वप्रकारेण सर्वस्मिन् देशे सर्वकाले च स्वप्रत्यक्षकरणस्यापि सम्भवात्। यस्यात्रादर्शनम्, कठिनं खलु तस्य तत्रापि दर्शनम्। तथा चास्मद्वेदे श्रूयते- **यः कश्चिदस्मिंल्लोके दर्शनसम्पदो निराशो भवति स तस्मिन् अवलोकनसम्पदो हताशो भवति।**

ये तु हुक्मामार्तासुल् (?) ईश्वरप्रत्यक्षं नाङ्गीकुर्वन्ति ते महापराधं कृतवन्तः। यदि शुद्धस्य प्रत्यक्षं न सम्भवतीति वदेयुः तदास्य विवादस्यास्पदं किञ्चिदपि स्यात्। सर्वप्रकारेणापि प्रत्यक्षं न सम्भवतीति वदद्भिरत्यन्तं महापराधः कृतः, यतो बहुधा परिपूर्णैः सिद्धैर्मुनिभिश्च बाह्य- चक्षुषा परमेश्वरस्य दर्शनं शब्दश्रवणञ्च साक्षात्कृतम्। यदि तद्वाक्य-श्रवणं सर्वदिक्षु अङ्गीकरोषि कुतस्तर्हि सर्वदिक्षु तद्दर्शनमपि नाङ्गीकरोषि? यथा परमेश्वरो देवताः अपौरुषेयग्रन्थाः सिद्धा महाप्रलयः साध्वसाधुनी परमेश्वरात् तीर्थादीनि च अवश्यश्रद्धेयाः तथा परमेश्वरदर्शनमप्यवश्यं श्रद्धेयम्। यत ईश्वरदर्शनमेव सर्वेषां प्रयोजनम्। किञ्च परस्परं विरोधः कृतः परमसिद्धवाक्ये, अस्मदीयपण्डितैः कश्चन प्रश्नः कृतो दृष्टः परमेश्वरस्त्वयेति? ततः आज्ञप्तवान्, प्रकाशमानं पश्याम्यहं तम्। तैरेतद् वाक्यमित्थं पठितं, ज्योतिःस्वरूपं कथं पश्याम्यहं तम्! युक्तं न भवति यत् परमसिद्धस्यादर्शनम्। यः प्रथमतोऽर्थोऽस्माभिः स्वीकृतः व्यञ्जनास्ति तस्य दर्शनं प्रकाशावरणे यं (द्वितीयं) स्वीकुर्मः, व्यञ्जनास्ति अत्यन्तशुद्धचैतन्यं नीरूपमिति। एतत्पाठद्वयं परस्परविरुद्धार्थकं न भवति, किन्तु अद्भुतसिद्धीयम्। एकस्मिन् वाक्ये द्वयोः सिद्धान्तयोर्निर्णयः कृतः। यथाऽस्मद्वेदे श्रूयते- **तस्मिन् दिवसे मुखानि प्रसन्नानि, सन्तुष्टानि पश्यन्ति स्वीयपरमेश्वरम्।** स्पष्टं प्रमाणं दर्शनविषये,

किम् इदं दर्शनं ईश्वर-पदसम्बन्धि जातमिति तस्य परिच्छिन्नेश्वरत्वस्य दर्शनं सम्भवति। क्वचित् कण्डिकायामिदं श्रूयते- **चक्षूंषि तं न पश्यन्ति स चक्षूंषि पश्यति**। स सूक्ष्मः स सर्वज्ञ इति। व्यञ्जना नीरूपत्वस्यास्ति। अस्यार्थः, चक्षूंषि तं न पश्यन्ति निर्गुणत्वनीरूपत्वाभ्याम्, स सर्वं पश्यति, स परमसूक्ष्मो नीरूपश्च। अस्यां कण्डिकायां स इति पदं तिष्ठति तेन व्यज्यते शुद्धचैतन्यस्याप्रत्यक्षत्वम्।

दर्शनं ईश्वरस्य पञ्चप्रकारकम्। प्रथमदर्शनं स्वप्ने मनश्चक्षुषा, द्वितीयं दर्शनं जाग्रति शिरश्चक्षुषा, तृतीयं तु स्वप्नजागरणयोर्मध्ये विशेष-निरहङ्कारतया, चतुर्थं विशेषपरिच्छिन्ने दर्शनम्, पञ्चमं दर्शनं एकस्वरूपस्य बहूनां परिच्छिन्नानां बाह्यानां आभ्यन्तराणां जगतां मध्ये। एवमेव दृष्टं परमसिद्धेन तस्मिन् समये, स्वयं न स्थितः दृग्दृश्ययोरैक्यं च स्थितम्। अथ च स्वप्नजाग्रन्निरहन्तानामैक्यं ज्ञातमभूत्। किञ्च, बाह्याभ्यन्तरचक्षूंषि एकीभूतानि अभूवन्। दर्शनस्य इयमेव मान्यता परिपूर्णा। एतद्दर्शनस्येहलोकपरलोकापेक्षा नास्ति, सर्वस्मिन् देशे काले च सम्भवति।

११. अथ नामानि निरूप्यन्ते

परमेश्वरस्यानन्तानि नामानि मर्यादापरिच्छेदातीतानि। मुत्लक् बहत्। शुद्धचैतन्यस्य सिद्धाः शून्यं निर्गुणं निराकारं निरञ्जनं सत् चित् आनन्द इति वदन्ति। अस्मद्वेदमुखस्य अल्लाह इत्यस्य ऊँ इति वदन्ति हू इत्यस्य स इति वदन्ति। ज्ञानापरपर्याय'इल्म'सम्बन्धात् आलिम इति वदन्ति, सिद्धाश्चैतन्यमिति नाम वदन्ति। हैयः नित्यमिति कादरः समर्थः मुरीदः स्वतन्त्रः समीअः श्रोता वसीरः द्रष्टा इति वदन्ति। वचनसम्बन्धात् वक्तेति। फिरिस्तानां देवता इति मजहरअतमस्य महाअवतार इति। अवतारस्तु स यस्मिन् समये यत्र परमेश्वरसामर्थ्यं यावत् प्रकटं अन्यत्र कुत्रापि तस्मिन् समये प्रकटीभवितुं न शक्नोति। वह्यस्य आकाशवाणीति आज्ञप्तवान् परमसिद्धः। सर्वाभ्य आकाशवाणीभ्यो मह्यमियमत्यन्तम् अतिकठिनतरा घण्टाभ्रमरशब्दानुकारिणी। यतोऽयं शब्दः आकाशात् प्रकटो भवति अत आकाशवाणीत्युच्यते। अपौरुषेयग्रन्थोऽस्माकं कुराणं सिद्धानां वेद इत्युच्यते। पिशाचानां मध्ये सुजनाः परीशब्दवाच्याः तेषामेव दुर्जना देव(?)शयातीन (शैतान-समूहाः) राक्षसाश्चोच्यन्ते। अथ आदमी मनुष्यः, नबी सिद्धः, वली ऋषीश्वर इति नाम कथयन्ति।

१२. अथ सिद्धत्व-ऋषीश्वरत्वनिरूपणम्

सिद्धास्त्रिविधाः। एकः स येन परमेश्वरो दृष्टो बाह्येन आभ्यन्तरेण वा चक्षुषा। द्वितीयः स येन शब्दः श्रुतः, स शब्दः वर्णात्मको वा ध्वन्यात्मको वा। तृतीयः स येन देवता दृष्टा तच्छब्दो वा श्रुतः। सिद्धत्वं ऋषीश्वरत्वञ्च त्रिविधम्, एकं सिद्धत्वं ऋषीश्वरत्वञ्च निर्गुणत्वसम्बन्धि, द्वितीयं सगुणत्वसम्बन्धि, तृतीयमुभयसम्बन्धि। निर्गुणत्वसम्बन्धि रूह(नूह?)-सिद्धत्वम्, यथा तेन तत्त्वसमुद्रस्य निर्गुणत्वसम्बन्धि दृष्टं तेनैवोपदिष्टं तदीयलौकैर्न स्वीकृतम्, निर्गुणत्वसम्बन्धित्वात्। अल्पैः स्वीकृतं तदुपदिष्टम्। ते नाशसमुद्रे निमग्नाः विरागिणः समये स्वीयान् शिष्यानुपदिशन्ति निर्गुणत्वम्। तदुपदेशान् कोऽपि न ज्ञातवान् न जायते फलञ्च नाप्नोति। मार्गमध्ये गच्छन्तो विनश्यन्ति च, परमेश्वरं न प्राप्नुवन्ति। सिद्धत्वं सगुणत्वसम्बन्धि, यथा मूसासिद्धत्वम्। तेन महीरुहाग्नौ दृष्टं, अभ्रमध्यतो वाक्यं श्रुतम्। तन्मार्गानुयायिनः तदनुकारिणश्च सगुणसम्बन्धिनस्तन्मध्ये निमग्नाः सन्तः प्रतिमोपासका जाताः। तैरीश्वरस्याज्ञाभङ्गःकृतः। उच्छृङ्खलाः केचनाद्यन्ते अस्माकं समये पूर्णानुकारिणस्ते स्वव्यापारं कृतवन्तोऽमुना प्रकारेण जीवन्ति। निर्गुणत्वसम्बन्धरहिताः सन्तः सगुणत्वसम्बन्धिनिमग्नाः सुन्दरं रूपं पश्यन्तः अनुरञ्जकशब्दं संशृण्वानाः असत्प्रकारेण क्रीडन्तो बद्धा भवन्ति। तत्पृष्ठतो गमनं न युक्तम्, यद्रूपं स्वस्वरूपं प्रदर्श्य चेतो हरति, तत्कालस्त्वद्दृष्टेदूरं नयति। अतो मनस्तत्र देयं यत्तव सङ्गे स्थितं वर्तते, स्थास्यति च। तृतीयमुभयसम्बन्धि। अस्यार्थः, सगुणत्व-निर्गुणत्वसम्बन्धिनोरेकीकरणं तत् परिपूर्णसिद्धत्वं परमसिद्धस्य सिद्धत्वम्। यतो निर्गुणत्वसगुणत्वापरिच्छिन्नत्वपरिच्छिन्नत्वनीरूपत्व- सरूपत्वानामेकीकरणं कृतम्। यथाऽस्मद्वेदे श्रूयते, **नास्ति तत्सदृशं वस्तु**। इयं व्यञ्जना निर्गुणत्वमान्यतायाम्। अथ च श्रोता द्रष्टा च। इयं व्यञ्जना सगुणत्वमान्यतायाम्। इयं परममान्यता यद्द्वयोरेकीकरणम्। सिद्धत्वं समापनञ्च, सर्वलोकशिरोरूपा असाधारणी पूर्वपश्चिमायतं सर्वं जगत् व्याप्य स्थितवती। सिद्धत्वं निर्गुणत्वसम्बन्धि निराशमस्ति, सगुणत्वसम्बन्धिसिद्धत्वात्। सगुणत्वसम्बन्धि सिद्धत्वं हताशम्, निर्गुणत्वसम्बन्धिसिद्धत्वात्। परिपूर्णसिद्धत्वं निर्गुणत्वसगुणत्वयोः आच्छादकम्। यथास्मद्वेदोपनिषदि श्रूयते-**हुवल-अव्वलु, वल्- आखिरु वज्जाहिरु वल्-बातिनु**। अस्यार्थः, स आदिः सोऽन्तः स प्रकटः स गुप्तः स

निर्गुणः स सगुणः स परिच्छिन्नः सोऽपरिच्छिन्नः स साकारः स निराकार इति। स एव सर्वमिदं तदतिरिक्तं किमपि वस्तु नास्ति। ईदृशं सिद्धत्वं एतेषां परिपूर्णानुयायिनामेव विशेषतः, यथोक्तमस्मद्वेदे-**सर्वमतानुसारिभ्यो भवन्त उत्कृष्टाः, सगुणनिर्गुणयोर्द्वयोरपि ऐक्येन उपासनाकरणात्**। अस्यार्थः, परमसिद्धानुसारिणः ते च ईश्वरसत्कृतपरम-सिद्ध-समयवर्तिनः सिद्धास्तत्परिवार- भूतास्तत्प्रतिनिधिभूताश्च अबूबक्र-उमर्-उस्मान्-अली-हसन्-हुसैन। अन्यस्मिन् समये च एतादृशाः जुन्नून मिसौरी (मिस्री?) जुनेदो ज्ञानिनां गुरुः मीरान् मुहद्दीन्-इब्नु अरबी, मद्गुरुः मियां मीर-मुल्लाशाह्-मियां वारी।

[१३. ब्रह्माण्डनिरूपणं नानूदितम्]

१४. अथ दिङ्निरूपणम्

अस्मदेकात्मवादिनः पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणोद्ध्वाधोभेदेन षड् वदन्ति। सिद्धा दश इति वदन्ति। द्वयोर्द्वयोदिशोर्मध्ये एकैका विदिक् आग्नेयी नैर्ऋती वायवी ऐशानीति दश दिशो वदन्ति। पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये आग्नेयी। दक्षिणपश्चिमयोर्मध्ये नैर्ऋती। पश्चिमोत्तरयोर्मध्ये वायवी। उत्तरपूर्वयोर्मध्ये ऐशानी।

१५. अथासमानापर्यायगगननिरूपणम्

सिद्धाः अष्टौ वदन्ति। तत्र सप्तग्रहाणां भ्रमणशीलानां सरणिरूपाणि सप्त गगनानि। ते च ग्रहाः, जुहल्-मुश्तरी-मिर्रीख़-शम्स्-जुह्रः-उतारिद्- क़मर् इति वदन्ति। ग्रहनामानि सिद्धाः, शनैश्चर-बृहस्पति-मङ्गल-सूर्य-शुक्र-बुध-चन्द्रा इति वदन्ति। सर्वनक्षत्राणामाधारभूतं गगनमष्टमम्। एतस्य गगनस्य दार्शनिकाः अष्टमं नक्षत्रगगनं वदन्ति। यथास्मद्वेदे श्रूयते-**गगनानि पृथ्वी च कुर्शीमध्ये सम्मान्ति**। नवमं महाकाशं ज्ञात्वा गगनमध्ये न निक्षिप्तम्, स सर्वव्यापक इति स सर्वेषां गगनानां पृथिवीनां कुर्श्याश्चाच्छादक इति।

१६. अथ पृथिवीनिरूपणम्

पृथिव्याः सप्त भेदाः। ते च भेदाः सप्तपुटान्युच्यन्ते। तानि पुटानि, अतल-वितल-सुतल-तलातल-महातल-रसातल-पातालाख्यानि। अस्मन्मतेऽपि

सप्त भेदाः। यथास्मद्वेदे श्रूयते-**परमेश्वरः स परमेश्वरः येन सप्त गगनानि कृतानि तद्वत् सप्त पृथिव्यः कृताः।**

१७. अथ पृथिव्या विभागनिरूपणम्

यत्र लोकास्तिष्ठन्ति तस्या दार्शनिकैः सप्तधा विभागः कृतः। तान् विभागान् सप्त अक्लीम इति वदन्ति। पौराणिकास्तु सप्तद्वीपानि वदन्ति। एतान् खण्डान् पलाण्डुत्वग्वत् उपर्यधोभावेन न जानन्ति, किन्तु निःश्रेणी-सोपानवज्जानन्ति। सप्त पर्वतान् सप्त कुलाचलान् वदन्ति। तेषां पर्वतानां नामान्येतानि, प्रथमः सुमेरुः मध्ये, द्वितीयः हिमवान्, तृतीयो हेमकूटः, चतुर्थो निषधः एते सुमेरोर्दक्षिणतः। नीलः पञ्चमः, श्वेतः षष्ठः, शृङ्गवान् सप्तमः। एते सुमेरोरुत्तरतः। माल्यवान् पूर्वस्यां, गन्धमादनः पश्चिमायां, कैलासस्तु मर्यादापर्वतेभ्योऽतिरिक्तः। यथास्मद्वेदे श्रूयते-**अस्माभिः पर्वताः शङ्कवः पृथिव्याः कृताः।**

एतेषां सप्तद्वीपानां प्रत्येकमावेष्टनरूपाः सप्त समुद्राः। लवणो जम्बुद्वीपस्य आवरकः। इक्षुरसः प्लक्षद्वीपस्य, सुरासमुद्रः शाल्मलीद्वीपस्य, घृतसमुद्रः कुशद्वीपस्य, दधिसमुद्रः क्रौञ्चद्वीपस्य, क्षीरसमुद्रः शाकद्वीपस्य, स्वादुजलसमुद्रः पुष्करद्वीपस्यावरक इति समुद्राः सप्त। अस्मद्वेदेऽपि प्रकटा भवन्ति। **वृक्षा लेखन्यो भवेयुः समुद्रो मषी भवेत् ततः पश्चात् सप्त समुद्राः मषी भवेयुः, भगवद्वाक्यानि समाप्तानि न भवन्ति।** प्रतिद्वीपं प्रतिपर्वतं प्रतिसमुद्रं नानाजातयोऽनन्ता जन्तवस्तिष्ठन्ति। या पृथिवी ये समुद्राः सर्वाभ्यः पृथिवीभ्यः सर्वेभ्यः पर्वतेभ्यः सर्वेभ्यः समुद्रेभ्यः उपरि तिष्ठन्ति तान् स्वर्ग इति वदन्ति। या पृथिवी ये पर्वता ये समुद्राः सर्वाभ्यः पृथिवीभ्यः सर्वेभ्यः पर्वतेभ्यः सर्वेभ्यः समुद्रेभ्यः अधोभागे तिष्ठति स नरक इति वदन्ति। निश्चितं किल सिद्धैः स्वर्गनरकादिकं सर्वं ब्रह्माण्डान्न किञ्चिद् बहिरस्तीति। ते सप्तगगनाश्रिताः सप्त ग्रहाः स्वर्गं परितो मेखलावत् परिभ्रमन्तीति वदन्ति। न स्वर्गस्योपरि। अथ च स्वर्गस्य यदि मन आकाशं जानन्ति अस्मदीयास्तं अर्शं वदन्ति, स्वर्गभूमिं कुर्शीति वदन्ति।

१८. अथ जगद्वर्जखपर्याय-प्रेतलोकनिरूपणम्

अस्मन्महासिद्धेनाज्ञप्तं, निश्चयेन खलु यः कश्चिन्मृतस्तस्य प्रलयो जातः। तत आत्मा तत्क्षण एव भौतिकस्थूलशरीरा[द्] वियोगं प्राप्य सूक्ष्म-

शरीरे प्रविशति। तस्य सूक्ष्मशरीरस्य कर्मण उत्पत्तिः, तच्च कर्म धर्मो वा अधर्मो वा। प्रश्नोत्तरे समाप्ते तत्क्षणं स्वर्गिणं स्वर्गे नयन्ति नारकिणं नरके नयन्ति। अनुसारी एतद्वेदकण्डिकायाः, **ते निर्भाग्या जाताः सन्तोऽग्नि-मध्ये उच्चैराक्रोशन्तः सकरुणं जल्पन्तो नित्यं तत्रैवाग्नौ तिष्ठन्ति तावद् यावद् द्यावाभूमी तिष्ठतः परमेश्वरेच्छां विना। निश्चयेन किल तव परमेश्वरः करोति यदिच्छति। ये भाग्यवन्तस्ते स्वर्गे नित्यं तिष्ठन्ति यावद् धावाभूमी तिष्ठतः, तावत्तिष्ठन्ति, विना परमेश्वरस्य तन्निष्कासनेच्छाम्। कृपादानं तस्यानन्तं यद्द्यावाभूम्योर्नाशात् पूर्वमपि यदीच्छति नरकात् स्वर्गे नयति।** एको महापुरुष एतत्कण्डिकाया अर्थमित्थमकरोत्, एकः समय एतादृश आयास्यति यत्र नारकिणः केऽपि नरके न स्थास्यन्ति। चिरकालं नरकस्थित्यनन्तरं निष्कासनं स्वर्गिणां स्वर्गात् तद्यद् द्यावाभूम्योर्नाशात् पूर्वमपि यदीच्छति स्वर्गात् फिर्दौसआलामध्ये नयति, यतः कृपादानं तस्यानन्तम्। यथाऽस्मद्वेदे श्रूयते, **परमेश्वरस्यैकस्वर्गस्तिष्ठति यः सर्वस्वर्गेभ्य उत्कृष्टतमः**, यं सिद्धा वैकुण्ठं वदन्ति, इयं महामुक्तिः।

१९. अथ महाप्रलयनिरूपणम्

सिद्धानामिदं मतं यत् नारकिणां नरके स्वर्गिणां स्वर्गे चिरकालं स्थित्यनन्तरं महाप्रलयो जायते। यथाऽस्मद्वेदे श्रूयते-**शङ्खे ध्माते सति पश्चान्मूर्छन्ति द्युस्था भूमिष्ठाश्च सर्वे, विना तं पुरुषं यं परमेश्वरो मूर्च्छातो रक्षितुमिच्छति।** ते च ज्ञानिन एव ये परमेश्वरेणेहामुत्र च मूर्च्छातः प्रमादाच्च रक्षिताः। तदुक्तं वासिष्ठरामायणे

कल्पान्तवायवो यान्तु यान्तु चैकत्वमर्णवाः।
तपन्तु द्वादशादित्या नास्ति निर्मनसः क्षतिः।।

ततः पश्चान्नाशं प्राप्नुवन्ति दिशः पृथिव्यः नरकाः स्वर्गाश्च। समाप्ते ब्रह्मण आयुषि ब्रह्माण्डे चादृश्यतां गते सति नारकिणां स्वर्गिणाञ्च विदेह-मुक्तिर्भाविनी। अस्यार्थ उभयेषामपि शुद्धब्रह्मणि ऐक्यं भविष्यति। उक्तञ्च,

ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम्।।

२०. अथ मुक्तिनिरूपणम्

मुक्तिर्नाम शुद्धचैतन्ये परिच्छिन्नानां विलयः, विगलनमिति यावत्। यथा एतत्कण्डिकातः परमेश्वरात् रुज्वा न् (रिजवानुम् ?) अकव्वरोऽस्ति स महाफलमिति प्रकटं भवति। प्रवेशनं रुज्वान् (रिज़वान ?) अकव्वरे फिर्दौसआलापरपर्याये महामुक्तिः परममोक्ष इत्यर्थः। सा च मुक्तिस्त्रिविधा। प्रथमा जीवन्मुक्तिः, अयमर्थः, जीवद्दशायामेव मुक्तिरिति। जीवन्मुक्तस्तु यः कश्चिज्जीवद्दशायां ज्ञानसम्पत्त्या सत्यपरिचयेन च मुक्तो भवति। अस्मिन् संसारे सर्वं वस्तु एकं पश्यति, एकं च जानाति। प्रवृत्तयो निवृत्तयः शुभा अशुभाश्च, एतेषां स्वसम्बन्धं न करोति। स्वस्य सर्वसृष्ट्या सह सत्यस्वरूपतया जानाति। सर्वत्र प्रकाशः सत्यस्वरूप इति जानाति पश्यति च। सर्वस्य ब्रह्माण्डस्य एकात्मवादिनो महज्जगदिति नाम वदन्ति। तदेव परमेश्वरस्य समष्टिरूपमस्ति। अथ परमेश्वरस्य स्थूलशरीरस्थानीयं चिदाकाशं परमेश्वरस्य नित्यसूक्ष्मशरीर-स्थानीयं शुद्धचैतन्यं तस्य शरीरस्यात्मस्थानीयं व्यक्तिरेकैवेति जानीयात्। एकमणु एकं तृणं गुप्तं प्रकटञ्च तस्मादसदृशद्वैतादतिरिक्तं न पश्येत्, न जानीयात्। यथा च एकस्य पुरुषस्यामहज्जगद् वदन्ति स्म परस्परविलक्षणा बहवोऽवयवा एक- व्यक्तिः अथ च भिन्नावयवा न तु सोऽनेकः, तथैव तस्य शुद्ध-चैतन्यस्यापि बहवः परिच्छिन्ना अवयवाः, परन्तु अनेकं तं न जानीयात्। यथैवैको महापुरुषः शुद्धान्तःकरण आज्ञप्तवान्-सत्यस्वरूपं सर्व-ब्रह्माण्डस्यात्मा सर्वब्रह्माण्डं सत्यस्वरूपस्य शरीरम्। आत्मानो देवताश्च, इन्द्रियाणि तस्य शरीरस्य गगनानि, भूतानि स्थावराणि जङ्गमानि च सर्वाणि अवयवाः। ज्ञानमिदमेव अन्यदप्रयोजकम्। अनेनैव प्रकारेण व्यास- प्रभृतयः सिद्धा अपि सर्व्वब्रह्माण्डं महज्जगत् एकव्यक्तिं ज्ञात्वा तच्छरीरावयवानेवं वर्णयन्ति-

एतदर्थं एकात्मवादी यं यं पश्यति जानातु स पदार्थो महापुरुषस्य स सोऽवयव इति। सप्तमं पातालं महापुरुषस्य चरणतलं, रसातलं षष्ठं महापुरुषस्य चरणपृष्ठं, पिशाचाद्याः पादांगुल्यः, पिशाचानां वाहनरूपाः पशवो महापुरुषस्य नखाः, महातलं पञ्चमं पुटं गुल्फौ महापुरुषस्य, तलातलं चतुर्थं पुटं महापुरुषस्य जङ्घे, सुतलं तृतीयं पुटं जानुनी महापुरुषस्य, वितलं द्वितीयपुटं ऊरू महापुरुषस्य, कालो महापुरुषस्य गमनक्रिया, अतलं प्रथमपुटं महापुरुषस्य पायुः, प्रजापतिर्देवता संवता (?) सन्ताननिमित्तं चिह्नं पुस्त्वं महापुरुषस्य,

वृष्टिर्महापुरुष[स्य] बिन्दुः, पृथिवीगगनपर्यन्तो भागो नाभेरधस्तान्महापुरुषस्य, मेरोर्दक्षिणतः पर्वतत्रयं दक्षिणबाहुरुत्तरतश्च पर्वतत्रयं वामबाहुर्महापुरुषस्य, श्रोणी-सन्ध्ये वाससी महापुरुषस्य, प्रातःसन्ध्या शुक्लप्रकाशः, सायंसन्ध्या पाटलप्रकाशः कौपीनाच्छादकौ वस्त्रखण्डौ महापुरुषस्य, समुद्रस्थो नाभिर्महापुरुषस्य, वडवानलः समुद्रो जलशोषको महाप्रलये महापुरुषस्य, जठरस्थ ऊष्मा वस्तुमात्रस्य पाचकः, अन्ये जलाशयाः नाड्यः शरीरस्था महापुरुषस्य, तथा सर्वजलाशयाः समुद्रे मिलन्ति। यथा सर्वा नाड्यौ नाभौ मिलन्ति। गङ्गायमुनासरस्वत्यस्तिस्रो नाड्यस्ताश्चेडागङ्गापिङ्गला यमुना सुषुम्ना सरस्वती। भूर्लोकोपरिवर्तमानो भुवर्लोकः यत्र देवा गन्धर्वास्तिष्ठन्ति यतश्च शब्द उत्पद्यते तदुदरं महापुरुषस्य, खण्डप्रलयाग्निः महापुरुषस्य, प्रातर्भक्षणीयभक्षिका क्षुत्, खण्डप्रलये जलानां नाशो महापुरुषस्य जलपानं पिपासा च, भुवर्लोकोपरि वर्त्तमानः स्वर्गलोकः स्वर्गस्य पुटानां एकं पुटं महापुरुषस्य वक्षःस्थलं, नित्यं सुखोत्सवशान्तयस्तत्र, सर्वाणि नक्षत्राणि मणिमुक्ताहारो महापुरुषस्य, अयाचितदानधर्मो दक्षिणस्तनो महापुरुषस्य, याचितदान-धर्मो वामस्तनो महापुरुषस्य, साम्यं त्रिगुणानां सत्त्वरजस्तमोरूपाणां प्रकृतिरित्युच्यते, तन्महापुरुषस्य मनः, यतः कमलमपि त्रिरूपं श्वेतं रक्तं श्यामञ्च। मनोऽपि कमलाकारं त्रिगुणं ब्रह्मा मनो नाम धारयति महापुरुषस्य, मनश्चेष्टा भवति विष्णुर्दया स्नेहश्च महापुरुषस्य, महेशः क्रोधो घातो महापुरुषस्य, चन्द्रो हासः प्रसादश्च महापुरुषस्य, शोकदुःखोष्म-निवारकत्वात्। वसिष्ठो ज्ञानं महा०, वायु [:] प्राणो महा०, असाधु कर्म अधर्मश्च पृष्ठं महा०, मेरुः पृष्ठदण्डो म०, अन्ये पर्वताः सुमेरोर्दक्षिणोत्तराः पार्श्वे दक्षिणोत्तरे म०, अष्टौ देवा लोकपालास्तेषामिन्द्रः श्रेष्ठोऽत्यन्तसमर्थो दाता वर्षुकोऽदाताऽवर्षुकश्च महा० हस्तद्वयं दक्षिणहस्तो दाता वर्षुकश्च वामहस्तोऽदाताऽवर्षुकश्च, अप्सरसः कररेखा महा०, धनाधिष्ठा[ता]रो देवा महापुरुषस्य कराङ्गुल्यः, यक्षा नखा महा०, त्रयो देवा लोकपाला दक्षिणहस्तो म०, तत्राग्निनामा देवः प्रकोष्ठः यमनामा देवः कूर्परः, निर्ऋतिनामा देवः प्रगण्डः, लोकपालास्त्रयो देवा वामबाहुर्महापुरुषस्य, तत्र ईशानो वामप्रकोष्ठः, कुबेरो वामकूर्परः, वायुर्वामप्रगण्डः, कल्पवृक्षो दानं महा०, दक्षिणोत्तरध्रुवौ दक्षिणोत्तरावंसौ महापुरुषस्य, कुलाधिष्ठाता पश्चिमदिक्स्थो वरुण[:] ककुन् महापु०, महर्लोकः स्वर्गलोकोपरि विद्यमानो ग्रीवा गलश्च महापु०, अनाहतनादश्चक्रवर्ती शब्दो महापु०, जनलोको महर्लोकोपरिविद्यमानः शोभमानं मुखं म०, जगतामिच्छा

चिबुकं महा०, जगद्वर्तिनो लोभा अधरोष्ठो महा०, लज्जा उत्तरोष्ठो महापुरुषस्य, स्नेहाः दन्ता महा०, सर्व्वलोकभक्ष्यं भक्ष्यं महापु०, सर्वं जलं गलरन्ध्रं म०, अग्निर्जिह्वा महा०, सरस्वती वाक्शक्तिर्महा०, वेदाः सत्यवचनं म०, सृष्टिकरी माया लीलाहास्यं महा०, अष्टौ दिशः कर्णौ म०, अश्विनीकुमारौ सुन्दरौ देवौ नासापुटे महा०, गन्धतन्मात्रा घ्राणेन्द्रियं महापुरुषस्य, वायुगतिर्निश्वसितं म०, जनलोकतपोलोकयोः स्वर्गस्य पञ्चमषष्ठपुटयोः प्रकाशेन परिपूर्णमन्तरालं तस्य दक्षिणो भागो दक्षिणमक्षि वामभागो वाममक्षि महा०, मुख्यप्रकाशं अनादिसूर्यं वदन्ति स दृष्टिशक्तिर्महापुरुषस्य, अहोरात्राणि जगतो निमेषोन्मेषौ महा०, सर्वजगत्सृष्टिः सुकटाक्षो महा०, मित्रनामा देवोऽधिष्ठाता स्नेहस्य, त्वष्टा देवोऽधिष्ठाता क्रोधस्य भ्रुवौ महा०, जनलोकोपरि विद्यमानस्तपोलोको ललाटं महा०, सत्यलोकः सर्वलोकोपरि विद्यमानो मूर्द्धा महा०, उपनिषदो ब्रह्मरन्ध्रं महापुरुष०, महाप्रलयकालीनमेघाः केशा महा०, तृणलतागुल्मादिकं लोमानि म०, जगतो लक्ष्मीः सौन्दर्यं महा०, सूर्यः प्रतापः स्वच्छत्वं महापुरुषस्य, भूताकाशं रोमकूपा महापु० चिदाकाश ईदृशशरीरस्यात्मा महा०, मनुष्यशरीराकृतयो गृहं महापुरुषस्य, ज्ञानिनः सौधस्थानं रहःस्थानं च महा०, यथा दावूदं प्रत्याज्ञप्तवान्- हे दाऊद, मदर्थं गृहं सज्जं कुर्व्विति। स उक्तवान् शुद्धस्य निराश्रयस्य का गृहापेक्षेति। पुनराज्ञप्तवान्, त्वमेव मम गृहं ततो मदतिरिक्तं दूरीकृत्य हृदयं रिक्तं सम्पादयेति। यथा किलास्मिन् महाब्रह्माण्डे नानापदार्थास्तथा तत्प्रतिकृतिरूपे शरीरब्रह्माण्डेऽपि सन्ति, परन्तु सर्वेऽपि परस्परसम्बद्धाः। य इत्थं महापुरुषस्य रूपं वेत्ति स जीवन्मुक्तः। इयं तस्य प्रशंसाऽस्मद्वेदे श्रूयते, सर्वदा परमेश्वरकृपादत्तेन सन्तुष्टः स जीवन्मुक्त इति।

द्वितीया सर्वमुक्तिः। एतां विदेहमुक्तिं वदन्ति, सर्वेषां मोक्ष इत्यर्थः। चित्स्वरूपे लीनता मोक्ष इति। इयं मुक्तिः सर्व्वजीवानां साधारणी। महाप्रलये नश्यत्सु भूर्लोक-स्वर्ग-नरकेषु विलीने ब्रह्माण्डे ब्रह्मदिवसे समाप्ते च जीवाः सर्वे चित्स्वरूपे लीयमाना मुक्ता भवन्ति। अस्मद्वेदे श्रूयते, परमेश्वरस्यैको महान् वैकुण्ठोऽस्ति यत्र गते सति महामुक्तिर्भवति, न भयं न शोक इति। अनया श्रुत्या इयं मुक्तिरेव प्रतिपादिता।

तृतीया मुक्तिः सर्वदामुक्तिर्नित्यं मुक्तिरित्यर्थः। सा च यत्र यत्र सञ्चरति ब्रह्मणो दिने रात्रौ वा प्रकटे जगति गुप्ते वा ब्रह्माण्डे आविर्भवति लीने वा भूते भविष्यति वर्तमाने काले वा तत्र तत्र मुक्त एव तिष्ठति यत्र यत्रास्मद्वेदे श्रुतं

नित्यं तन्मध्ये तिष्ठतीति तत्रापि तन्मध्ये इति पदेन अयं ज्ञानरूपः स्वर्ग एवोक्तः नित्यपदेनेयं मुक्तिरुक्ता। किञ्च यत्र यत्र तिष्ठति तत्र तत्र ज्ञानयोगसामर्थ्यवान् परमेश्वरप्रसादवांश्च तिष्ठति। एतत्कण्डिकाद्वये एतादृशस्यैव प्रशंसोक्ता प्रियोदन्तं ददाति तेभ्यस्तेषां परमेश्वरः स्वीयकृपया पुनरुदन्तं ददाति वैकुण्ठस्य स्वर्गाणाञ्च तेषां तिष्ठति स्वर्गेषु वैकुण्ठे च। किं तत् सर्व्वा नित्यसम्पत्, अथ च नित्यमुक्तिः, निश्चयोऽयं परमेश्वरनिकटे महाफलं तिष्ठति। द्वितीयकण्डिकेयं पुनरुदन्तं ददाति, श्रद्धावतां धार्मिकाणां तस्य धर्मस्य फलं सत्यज्ञानप्राप्तिः। निश्चयेन ज्ञानिनां सम्यक् फलमस्ति। तत्किं वैकुण्ठः? नित्यं स्थातारो वैकुण्ठे।

२१. अथाहोरात्रस्य ब्रह्मणो गुप्तप्रकटतारूपस्य निरूपणम्

पौराणिकानां मते ब्रह्मणो जिबरईलपदाभिधेयस्य ब्रह्माण्डनाशस्य पर-ब्रह्मणः प्रकटदिनसमाप्तेश्च अष्टादशाब्जपरिमितानि मनुष्यवर्षाणि एकैकमंजं कोटिशतस्य भवति। अयमर्थः अस्मद्वेदकण्डिकाद्वयानुसारी। तत्रैका, निश्चयेन च ब्रह्मणो निकटे एकं दिनमस्ति अत्रत्यगणनया सहस्रवर्ष-परिमितं भवति। द्वितीयकण्डिका, पुनस्तन्निकटे गच्छन्ति देवता आत्मा च। आत्मा जिब्रईलपदाभिधेयः। जिब्रैलो ब्रह्मा यस्मिन् दिवसे तस्य मानं पञ्चाशत्सहस्रवर्षपरिमितम्। येषां वर्षाणामेकैकं दिनं प्रसिद्धवर्षपरिमितम्। वर्षसहस्रस्य प्रथमकण्डिकायां प्रसङ्गो जातः। एवं शतवर्ष-परिमितम् आयुषः परिमाणं जिब्रईलस्य, तथा प्रकटदिनस्य परिमाणं जगत्पदवाच्यब्रह्माण्डसमाप्तेः परिमाणम्। एतेषां गणनां कुर्म्मः। अत्रत्य- लोकगणनया अष्टादशाब्जानि भवन्ति, एकमब्जं कोटिशतस्य भवति। न्यून- विषमतां विना अनुसारिणीयं गणसिद्धगणनया भवति। अष्टादशत्वनियमः, एतदर्थं गणितमर्यादा सिद्धानां निकटे अष्टादशसु परिच्छिन्ना, अष्टादशोत्तरे गणनमर्यादाया अभावात्। एतन्मध्ये प्रलया भूता भविष्यन्ति च। ते खण्ड- प्रलयाः कयामतिसुवरापरपर्याया उच्यन्ते। यथा जलप्रलयः बह्निप्रलयो वायुप्रलयो वा एतस्य दिनस्य समाप्तौ रात्रौ जायमानायां कयामतिकुवरा भवति। तं महाप्रलयं वदन्ति। कण्डिकाद्वयस्येयमाज्ञा। तत्रैकस्या इयमाज्ञा, तस्मिन् दिवसे वेष्टनं करिष्यामि गगनानां पत्र-वेष्टनवत्। द्वितीयकण्डिकाया इयमाज्ञा, भविष्यत्येतस्याः पृथिव्याः प्रतिनिधिरूपा परा पृथिवी प्रकटा भवति महाप्रलयोत्तरं गुप्तरात्रौ प्रकट-दिनसमानपरिमाणायां परिच्छिन्नं सर्वं वस्तु शुद्धचैतन्ये लीनं भवति। रात्रेरपि मानं अत्रत्यवर्षगणनया अष्टादशाब्जसंख्यानि वर्षाणि भवन्ति। इदं रात्रेः

परिमाणम् शुद्धचैतन्यस्य सुषुप्तिः सृष्टेर्जगत्-प्रकटीकरणाद् विश्राम्यति। एतत्कण्डिकायां व्यक्तेयं सुषुप्तिः। तस्याश्च कण्डिकाया अयमर्थः, शीघ्रमेव विश्रामं कुर्मो भवद्भ्यः, हे देवयोनयो मनुष्याश्च, यावद् दिवसेषु जगत्प्रकटं तावच्छुद्धचैतन्यस्य जाग्रदवस्थास्थानं, खण्डप्रलयाः स्वप्नावस्थास्थानं महाप्रलयः सुषुप्त्यवस्थास्थानम्। यदाहुः

निःश्वसितमस्य वेदा वीक्षितमेतस्य पञ्च भूतानि।
स्थितमेतस्य चराचरमस्य च सुप्तं महाप्रलयः।। इति

हे सुहृत्तम, अस्मिन्निरूपणे यल्लिखितं सूक्ष्मदृष्ट्यानेकधा निश्चितं तत्स्वानुभवानुसारि। अनुभवश्चैतत्कण्डिकाद्वयानुसारी ज्ञातः, कुत्रापि ग्रन्थे न दृष्टो न वा कुतश्चित् श्रुतः। यद्ययमर्थोऽपरिपूर्णमतीनां श्रुतिकटुस्तदास्माकं न कापि क्षतिः। परमेश्वरोऽवाप्तकामो जगतः।

२२. अथ ब्रह्माण्डप्रवाहानन्त्यनिरूपणम्

निश्चेतारः शास्त्रज्ञाः सत्यस्वरूपस्य नैकैवेयं रात्रिर्न चैकमिदं दिनम्, किन्तु एतद्रात्रिसमाप्तौ दिनमायास्यति, पुना रात्रिरायास्यति, अनेन प्रकारेणानन्त्यम्, एतस्यानादिप्रवाह इति नाम वदन्ति। अस्माकं ज्ञान(नि?)कविना व्यञ्जनयाऽयमनन्तप्रवाह उक्तः।

वृत्तान्तस्य मम प्रियतमस्य चान्तो नास्ति।
यद्वस्तु आदिरहितं तदन्तवदपि न भवति।।

यत्किञ्चिद् वस्तुजातं विशेषतः प्रकटं गुप्तं च पूर्वं दिवा रात्रौ स्थितम् तदेव विना न्यूनविषमताम् अन्यस्मिन्नहोरात्रे तथैव पुनराविर्भवति तिरोभवति च। यथास्मद्वेदे श्रूयते, यथा प्रकटीकृताः पूर्वं सर्ववस्तुसृष्टयः पुनरपि तथैव ताः प्रकटसृष्टीः करिष्यामः, याः सृष्टयो नष्टाः आसन् पश्चात् समाप्ते ब्रह्माण्डे मनौ च यथापूर्वं स्थिताः तथैव तत्स्वरूपेण पुनराविर्भवन्ति, सर्वदैव एवं प्रकारेण जायन्ते। यथास्मद्वेदे श्रूयते- **यथा भवन्तः पूर्वं सृष्टास्तथैव पुनः स्रक्ष्यामि**। ननु अस्मत्परमसिद्धस्य सिद्धत्वसमाप्तिरनेन प्रकारेण न सिध्येत्? अत्र वयं ब्रूमः-अन्यस्मिन् दिवसेऽपि परमेश्वरसत्कृतेऽस्मत्परमसिद्धे तत्स्वरूपेण प्रादुर्भूते तस्मिन् दिवसे परमसिद्धत्वं तत्रैव समाप्स्यते। अस्मत्परमसिद्धस्येदं वाक्यं रात्रावीश्वरदर्शनार्थमुपरिगतसम्बन्धि। अस्मिन्नर्थे प्रमाणम्, तस्यां रात्रावस्मन्महासिद्धाः प्रवाहमुष्ट्राणां दृष्टवन्तः। ते च उष्ट्रा

अनवरतं चलन्ति। एकैकस्योपरि मञ्जूषाद्वयं द्वयम्। एकैकमञ्जूषायामेकैकं जगत्तिष्ठति एतज्जगत्सदृशम्। एकैकस्मिन् जगति स्वसदृशो महासिद्धोऽस्ति। ब्रह्माणम्प्रति पृष्टम्, इदं किम्? उक्तम्, हे महासिद्ध,तस्मिन् समयेऽहमुत्पन्नो जातः, पश्याम्येनमुष्ट्राणां प्रवाहं मञ्जूषासहितं गच्छन्तम्; परन्तु अहं न जानामि किमिति। इह मञ्जूषा-पदस्य ब्रह्माण्डेष्वभिप्रायः, उष्ट्रप्रवाहपदस्य कालेऽभिप्रायः। नित्यं ब्रह्माण्डानि तस्योपरि चलन्ति। यच्च ब्रह्मणोक्तमिदं न जानामीति तस्यायमाशयः प्रवाहस्य आदिमन्तञ्च न जानामीति।

विष्णुरूपात्मन इच्छया स्वीयमनो मन्दरं कृत्वा सङ्कल्पविकल्पान् देवदैत्यान् कृत्वा वेदसमुद्रं मथित्वा ज्ञानरत्नमेकमीदृशं निष्कासितं यद्देवैर्दैत्यैश्च समुद्रमथनं कृत्वा निष्कासितेषु चतुर्दशरत्नेष्वपि न प्राप्तम्। आराधना परमेश्वरस्य विज्ञापना च या कृता तया **समुद्रसङ्गमसमाप्तौ** सामर्थ्यं प्राप्तम्। सहस्रोत्तरपञ्चषष्ठितमे [१०६५] संवत्सरेऽस्म(त्)- परमसिद्धशकाद् व्यतीते द्विचत्वारिंशत्तमे च संवत्सरेऽस्य वीतरागस्याप्यायुषो विद्यमाने परमेश्वरेण सत्करणीयः स्वजन- श्रेष्ठतमोऽस्मत्परमसिद्धःस परिवारप्रतिनिधिसमूहः।

इति श्रीसमुद्रसङ्गमनामा ग्रन्थः परिपूर्णतामगमत्।

शुभमस्तु लेखकपाठकयोः। श्रीः। संवत् १७६५ वर्षे मार्गशिर वदिसप्तम्यां चन्द्रजवारे। श्रीः।

(बीकानेर - प्रति -)

ग्रन्थसंख्या श्लोक ५०१
सं १३१४ वर्षे मितिकार्तिक सुदि १५ तिथै
श्री साहिजहानाबादनगरे एतत् पुस्तकं लिखितं
पंपद (पिपद्य?) निधानेन।

समुद्र-सङ्गमः

(हिन्दी-अनुवाद)

समुद्र-सङ्गमः
(हिन्दी-अनुवाद)

उसके नाम से आरम्भ, जिसका नाम नहीं है।

सभी नाम उस वस्तु के नाम हैं।

उस अद्वितीय वस्तु को बहुत-बहुत नमस्कार, जिसने अत्यन्त परस्पर विरुद्ध अनीश्वरत्व और सेश्वरत्व रूप दो शिखण्डकों को शोभमान, निरुपम, असदृश अपने मुख पर प्रकट कर रखा है जिससे (?) थोड़ा भी मुख का आवरण नहीं किया। अनीशत्व और सेशत्व उसके मार्ग का अनुगमन करते हैं। वह एक ही अप्रतिम है और ऐसा समझा जाता (?) है।

वह सब जगह प्रकट है, सब कुछ उससे प्रकाशित होता है, वह आदि है, वह अन्त है। उसके अतिरिक्त वस्तु नहीं है।

वह पड़ोसी है, साथ रहता है और साथ चलता है, वह सब कुछ है।

ग़रीब की गुदड़ी में, बादशाह के रेशमी परिधान में, वह सब जगह है।

यह भेद सभा में लगता है, किन्तु रहस (एकान्त या रहस्यमय प्रकोष्ठ में) अभेद, ईश्वर की शपथ, पुनः उसकी शपथ, वह सब कुछ है।

परम प्रकाश के प्रकाशक, संसार के निर्माण में निमित्त (कारण), हमारे सिद्धों के सिद्ध, जिन्हें परमेश्वर ने सत्कृत और सम्मानित किया है, तथा उनके पवित्रतम परिवार और महत्तर उनके प्रतिनिधि रूप जनों को अनन्त प्रणाम प्राप्त हों।

अब वीतराग, विगतशोकसंदोह मुहम्मद दारा शुकोह कहता है-

ऐसा है कि सभी तत्त्वों के तत्त्व की जानकारी करके, सच्चे एकात्मवाद के तात्पर्य का निर्णय करके, भगवान् की महती कृपा प्राप्त करके, और विचार के

बीच यह आया कि मैं सिद्धों, निश्चयकर्ताओं, वैदिकों, अनादि- कुलों में उत्पन्न जनों के अभिप्राय का अन्त प्राप्त करूँ (जानूं), तब किन्हीं-किन्हीं वैदिकों के साथ, विशेष रूप से चैतन्य-स्वरूप, ज्ञानमूर्ति, सद्गुरु बाबा लाल, जो तपस्या, ज्ञान और सौबुध्य का फल ईश्वर-प्राप्त और शान्ति की पराकाष्ठा हैं, की (निकटता) प्राप्त की और उनके साथ बार-बार भेंट और गोष्ठियाँ कीं। मैंने देखा कि स्वरूप की प्राप्ति को लेकर, परिभाषा-भेद के अतिरिक्त कुछ भी भेद नहीं है। अतः मैंने दोनों की एकवाक्यता की। और तब सत्य की प्राप्ति के अधिकारी जनों द्वारा अवश्य ज्ञातव्य कतिपय वाक्यों के सार का संग्रह किया और ज्ञानियों के **दोनों भी मत-समुद्रों का सङ्गम** ऐसा नाम रखा।

इस प्रकार बिना किसी मात्सर्य के, सभी वेदान्तों का तत्त्व-विवेचन महानुभावों का प्रयोजन है। इसलिए, जो कोई विवेकी और ज्ञानी है वही, तत्त्व के निर्णय की गहराई तक पहुँचने में कैसा श्रम होता है, जानता है। निश्चय ही विद्वान् और ज्ञानी लोग यहाँ बहुत सुख प्राप्त करेंगे और जो भेदवादी तथा कुण्ठित विचारों के लोग हैं, वे (सुख) नहीं प्राप्त करेंगे। इस अनुभव के अनुसार तत्त्वार्थ का निर्णय करके मैंने अपने कुटुम्ब-जनों के प्रति अनुकम्पा के भाव से यह आरम्भ किया है। दोनों विभिन्न मतों से सम्बन्ध रखने वाले अज्ञानी जनों के बोधन से मुझे कोई मतलब नहीं है। और भी, महापुरुष ख्वाज़ा अहरार, जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, ने फ़र्माया है- "यदि मुझे ज्ञात हो जाय कि कोई नास्तिक (निरीश्वर) भी, कथावाचक के स्थान पर बैठा (?) भी मनोरंजक शब्दों से तत्त्व-सम्बन्धी वार्ता का वक्तव्य दे रहा है तो मैं वहाँ जाकर सुनूंगा, सीखूंगा और अनुनय करूंगा।"

और, यहाँ परमेश्वर से ही मेरा सामर्थ्य है और परमेश्वर ही मेरा सहायक है।

१. अनासिर (भूतों) की व्याख्या

जानो, भूत पांच हैं। ये अनुभूयमान वस्तु के समवायी कारण हैं। उनमें पहला है, जिसे 'उन्सुरे आज़म' कहा जाता है, दूसरा 'बाद' पद से कहा जाता है, तीसरा 'आतश' पद से, चौथा 'आब' पद से और पांचवां 'ख़ाक' पद से कहा जाता है। इन्हें मुनियों ने आकाश, वायु, तेजस्, जल और पृथिवी- इन शब्दों से व्यवहृत किया है। उनमें आकाश तीन प्रकार का कहा गया है- भूताकाश, चित्ताकाश और चिदाकाश। जो सभी भूतों (तत्त्वों) में व्याप्त रहता

है वह भूताकाश है; ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहने वाला चित्ताकाश और चिदाकाश सर्वव्यापक, सर्वत्र स्थित (विद्यमान) है। और वह (चिदाकाश) अजन्य (अजन्मा) है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति और उसका विनाश, वेद और हमारे वेद (क़ुरआन) में, किसी भी कण्डिका (सूक्त या सूरः) में प्रतिपादित नहीं है तथा इनमें (इनके प्रतिपादन की) कोई युक्ति (तर्क) भी नहीं है। चिदाकाश से पहले 'इश्क़' पदार्थ उत्पन्न हुआ। उसे वैदिक मुनियों ने 'माया' कहा है, जैसा कि परमसिद्ध ने ख़ुदा का वाक्य कहा है :

''मैं एक छिपा हुआ ख़ज़ाना था, तब मैंने इच्छा की कि लोग मुझे जानें, इसलिए मैंने सृष्टि की।''

उस माया से जीवात्मा का प्रादुर्भाव हुआ। वही सिद्धों के सिद्ध का तत्त्व है, ऐसा कहते हैं। इसी को वैदिक मुनि लोग 'हिरण्यगर्भ' कहते हैं। इसी को व्यंजना से 'अमा' कहते हैं।

इसके बाद वायु की व्याख्या। वायु को परमात्मा का निःश्वसित कहते हैं। निःश्वास रूप वायु उत्पन्न हुआ। उस श्वास का, शुद्ध चैतन्य द्वारा सोने के समय, सृष्टि के लिए निरोध किया गया। तब ऊष्मा निकला। इस कारण वायु से तेजस् की उत्पत्ति हुई। उस निःश्वसित के (दया और एकता के गुणों से सम्पन्न होने के कारण) शीतल हो जाने पर, तेजस् से जल की उत्पत्ति हुई। वायु और तेजस्, दोनों सूक्ष्म होने के कारण प्रत्यक्ष नहीं होते (और) जल स्थूल होने के कारण प्रत्यक्ष होता है। (अतः) किन्हीं लोगों ने कहा कि जल की उत्पत्ति पहले हुई। जल के पश्चात् पृथिवी (उत्पन्न हुई)। यह पृथिवी जल की पपड़ी है। जैसे दूध के नीचे आग जलाने पर, दूध पर पपड़ी (छाली) हो जाती है। क्या जानता हूँ (?) कि 'अनन्त-अर्णव' संज्ञा वाले समुद्र का बाष्प अन्तरिक्ष है और पृथिवी पपड़ी है! इन भूतों का महाप्रलय काल में व्युत्क्रम से लय (होता है)। पहले, पृथिवी का जल में लय (होता है)। तब जल तेजस् से सूखता हुआ तेजस् में लीन होता है। तब वायु, चिदाकाश, जिसे 'उन्सुरे आज़म' कहा जाता है, में लीन होता है। हमारे वेद (क़ुरआन) में सुना जाता है- **''परब्रह्म के मुख रूप चिदाकाश को छोड़ सब वस्तु विनष्ट हो जाती है।''** दूसरे स्थान में भी, हमारे वेद में सुना जाता है- **''पृथिवी में रहने वाली सभी वस्तु नष्ट हो जाती है, नित्य रहता है रजस् और तमस् रूप गुणों वाला मुख।''** सभी वस्तुओं के विनाश का प्रतिपादन करने वाली इन दोनों कण्डिकाओं में 'मुख' पद का प्रसङ्ग (उल्लेख?) किया गया है।

उसका उद्देश्य है कि चिदाकाश अविनाशी है। यदि यहाँ 'मुख' पद नहीं होता तो ऐसा कहा जाता, "परब्रह्म में सब वस्तु विनष्ट हो जाती है।" इसलिए 'मुख' पद का प्रसङ्ग चिदाकाश की (नित्यता) के निमित्त बना है, क्योंकि चिदाकाश शुद्ध चैतन्य का सूक्ष्मशरीरस्थानीय है। व्यवहार में, मुनि लोग पृथिवी को 'देवी' कहते हैं, क्योंकि सभी वस्तुएं उसके द्वारा उत्पन्न होती हैं, फिर सभी वस्तुएं उसमें लीन हो जाती हैं। ऐसा हमारे वेद में, सुना जाता है : **"उस पृथिवी से हमने तुम्हें उत्पन्न किया है, फिर उसमें ही तुमको पहुँचा देंगे। फिर पृथिवी से तुम्हें बाहर लायेंगे।"**

२. (इन्द्रियों का निरूपण)

इन्द्रिय पाँच हैं- शाम्मा, ज़ायक़ा, बासिरा, सामिआ और लामिसा। मुनि-वचनों के अनुसार इनके नाम हैं- घ्राण, रसन, त्वक्, चक्षुष् और श्रोत्र। इनके ये विषय हैं- मश्मूम (?), मजूष् (?), मुन्सर (?), मलमूस (?)- इन पदों से अभिहित हैं, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द। वे इन्द्रिय प्रत्येक उन-उन भूतों से उत्पन्न हैं। उनमें, घ्राण पार्थिव (पृथिवी से उत्पन्न) है; क्योंकि पृथिवी के अतिरिक्त किसी भूत में गन्ध नहीं प्राप्त होती, और गन्धवत्त्व गन्ध के ग्राहक होने के कारण है। रसनेन्द्रिय जलीय होती है; क्योंकि वह रस की व्यञ्जक है। रूप की ग्राहक होने के कारण चक्षुरिन्द्रिय तैजस होती है। त्वगिन्द्रिय वायवीय है, क्योंकि वह स्पर्श की व्यञ्जक है। शब्द की ग्राहक होने से श्रवणेन्द्रिय भूताकाशीय है। और, अनाहत शब्दों के श्रवण द्वारा सिद्धों को चिदाकाश तत्त्व का प्रत्यक्ष होता है; क्योंकि सिद्धों को छोड़ उसका ज्ञान सम्भव नहीं है। यह श्रवण रूप ध्यान हमारे और सिद्धों के समान रूप से होता है। इस ध्यान को हमारे एकात्मवादी लोग 'निरन्तर श्रवण' कहा करते हैं। उसे ही सिद्ध लोग 'ध्वनि' कहते हैं। आभ्यन्तर इन्द्रिय पांच हैं- मुस्तरक, मुतख़य्यिल, मुतफ़क्किर, हाफ़िज़ और वाहिम। सिद्ध-मत में चार हैं- मनस्, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार। इनके समुदाय को पञ्चम 'अन्तःकरण' कहते हैं। उनमें, मन की दो शक्तियाँ हैं- संकल्प और विकल्प रूप, करण और अकरण रूप। दूसरी बुद्धि है। किन्तु बुद्धि सम्यग्वस्तुगामिनी और असम्यग्वस्तुगामिनी होती है। चित्त का एक स्वभाव होता है, उसे 'वृत्ति' कहते हैं। यह स्वभाव उसके चरण का काम करता है। इसके अभाव में चित्त दौड़ लगाने से विरत हो जाता है। चित्त मन का जाङ्घिक (दूत) है। उसका काम सभी दिशाओं में दौड़ लगाना है। और, वह सत् और असत् के विवेक की क्षमता नहीं रखता।

चौथी अन्तरिन्द्रिय अहङ्कार है, जो 'मैं करता हूँ' इस प्रतीति का साक्षी है। माया के सान्निध्य के कारण अहङ्कार परमात्मा का कार्य है। और, वह अहङ्कार तीन प्रकार का होता है- सात्त्विक, राजस और तामस। उनमें सात्त्विक (अहङ्कार) ज्ञान स्वरूप उत्तम है। वह परमात्मा का 'सब कुछ मैं हूँ' इस प्रकार अभिमान रूप है। यह सभी वस्तुओं में सामान्यता रूप सर्वव्यापक होता है। जैसा कि हमारे 'वेद' में सुना जाता है- **''अला इन्नह बिकुल्लि शै-इम् मुहीत''**, इसका अर्थ है- ज्ञानी चेतनावान् होता है और निश्चय ही सर्वव्यापक है। **''हुवल-अव्वलु वल्-आख़िरु वज्जाहिरु वल्बातिनु।''** इसका अर्थ है- वही आदि है, वही अन्त है, वही प्रकट है, वही गुप्त है।" राजस अहङ्कार मध्यम होता है। वह जीव भाव को प्राप्त (व्यक्ति के) शरीर तथा भूतों से भिन्न, "मैं हूँ, मैं भूतसम्बद्ध नहीं हूँ", इस आकार का होता है "मेरा मन शरीर और भूतों की सीमा से स्वतन्त्र हो चुका है, शारीरिकता मुझसे सम्बन्ध नहीं रखती" इस आकार का होता है। हमारे 'वेद' में- **''उस जैसी कोई वस्तु नहीं है, ईश्वर आप्तकाम (निरपेक्ष) है।''** संसार के प्राकट्य के कारण तामस अहङ्कार अधम है। और यह अविद्या के कारण है। अविद्या शुद्ध ब्रह्म की उपासक (समीपवर्ती ?) होने की कल्पना है। इस (अविद्या) के अति नीच और परिच्छिन्न होने के कारण, इसे अधम माना जाता है। ज्ञानरहित बुद्धि प्रमादों को स्वीकार कर लेती है। अपने स्थूल शरीर को देखकर (अज्ञानी) कहता है- "मैं" और "तू"; इस प्रकार दोनों के एकत्व की मान्यता से दूर जा गिरता है। हमारे 'वेद' में सुना गया है- **''हे महासिद्ध, कहो यह है, इसके अतिरिक्त सत्ता वाली वस्तु नहीं है। मैं मनुष्य हूँ, मैं तुम्हारे जैसा हूँ।''** वसिष्ठ ने भी कहा है- शुद्ध चैतन्य, मैं परिच्छिन्न होऊँ, इस इच्छा से उसी क्षण परमात्मा रूप हो गया। उससे अति परिच्छिन्न रूप होने के कारण अहङ्कार रूप हो गया। उससे भी परिच्छिन्न होकर महत्तत्त्व रूप प्रकट हुआ। उसके सङ्ग रूप से (सम्बन्ध से?) मन हुआ। उसे (मन को) 'प्रकृति' पद से भी कहा जाता है। मन के सङ्कल्प से (संकल्प रूप मन से) पांच ज्ञानेन्द्रिय घ्राण, रसन, चक्षुष्, त्वक् और श्रोत्र उत्पन्न होती हैं। उसके (मन) सङ्कल्प से कर्मेन्द्रिय वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ उत्पन्न होती हैं। उसके (मन के) सङ्कल्प से बाह्य और आभ्यन्तर अवयव उत्पन्न होते हैं। इनके समुदाय को 'शरीर' कहते हैं। इस प्रकार, सभी पदार्थों के प्रपितामह रूप परमात्मा ने इन्हें उत्पन्न करके इनसे अपने को बाँध लिया है, जिस प्रकार रेशम का कीड़ा लार से निर्मित धागों से अपने को बाँध लेता है। इस प्रकार, जगत् की सृष्टि करके

(परमात्मा) स्वयं उसमें प्रवेश कर गया; जैसे बीज अपने से वृक्ष को उत्पन्न करके उसमें प्रवेश कर जाता है। पहले चिद् रूप में सब कुछ छिपा हुआ था, अब जगत् के प्रकट होने पर उसमें (चिद् रूप परमात्मा) छिप गया है।

३. ध्यान का निरूपण

वहाँ, यद्यपि सब श्वास के निरोध नाना प्रकार के होते हैं, तथापि 'अजपा' को सबसे उत्कृष्ट मानते हैं; क्योंकि यह (अजपा) जाग्रद्दशा और स्वप्नदशा में स्वभावतः सब प्राणियों के, सब समय होती है। अतः हमारे 'वेद' में कहा है : **''कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो परमेश्वर का सदा जप/सुमिरन न करती हो, परन्तु तुम लोग नहीं समझते हो।''** इससे 'अजपा जप' ही कहा गया है। 'उसके' बयान में दो शब्द कर दिये जाते हैं, वहाँ, जब श्वास ऊपर की ओर निकलती है तब 'सः' पद उत्पन्न/आविर्भूत होता है (और) नीचे की ओर आती है तब 'अहम्' शब्द। इसका अर्थ हुआ 'सोऽहम्'। हमारे एकात्मवादी भी श्वास-क्रिया में ''हुअल्लाह्'' ऐसा समझते हैं। श्वास के ऊपर आने पर 'हु' (और) बाहर आने पर 'अल्लाह' प्रकट होता है।

४. परमेश्वर के गुणों का आख्यान

एकात्मवादियों के मत में परमेश्वर के दो गुण हैं- जलाल और जमाल। सिद्ध लोगों ने तो तीन गुण कहे हैं, अतः 'त्रिगुण' कहते हैं, सत्त्व, रजस् और तमस्। उनमें रजस् से उत्पत्ति, सत्त्व से पालन और तमस् से प्रलय होता है। परन्तु हमारे वालों ने प्रतिपालक सत्त्व गुण का 'रजस्' पद के वाच्य 'जमाल' में अन्तर्भाव करके दो प्रकार कहा है। इन तीनों गुणों की वृत्ति परस्पर मिली होती है। इनके अधिष्ठाता 'त्रिमूर्ति' रूप कहे जाते हैं। वे हैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश। हमारे लोग इन्हें जिब्रील, मीकाईल और इस्राफ़ील कहते हैं; उत्पत्ति के अधिष्ठाता जिब्रील, प्रतिपालन के अधिष्ठाता मीकाईल और संहार के अधिष्ठाता इस्राफ़ील। इनके साथ सम्बन्ध रखने वाले तीन भूत जल, तेजस् और वायु हैं। जल जिब्रील का सम्बन्धी, तेजस् मीकाईल का और वायु इस्राफ़ील का। ये तीनों सब शरीर में प्रकट हैं। जैसे ब्रह्मा जिह्वा में (प्रकट हैं), इसलिए परमेश्वर के वचनों के प्रकाशक हैं। उच्चारण इनसे प्रकट होता है। तेजोरूप विष्णु चक्षु में प्रकट हैं, क्योंकि प्रकाश या ज्योति वहाँ (चक्षु में) है। दर्शन उनसे प्रकट होता है। वायु रूप महेश नासा में (प्रकट) हैं। शङ्ख के दो

फूत्कार, जो दो श्वास रूप हैं, इनसे प्रकट हैं। उस (श्वास रूप वायु) के समाप्त हो जाने पर प्राणि-समूह नष्ट हो जाता है। तीन गुण परमेश्वर के गुण हैं। और, वे उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण हैं। इन गुणों के प्रकाशक भी ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। और, वे गुण सभी वस्तुओं में प्रकट हैं। पहले उत्पत्ति, फिर कुछ काल तक स्थिति और बाद में नाश। उस त्रिमूर्ति की सामर्थ्य रूप ये तीन शक्तियाँ हैं जिन्हें सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती कहते हैं। इनमें सरस्वती रजोगुण वाले ब्रह्मा से, पार्वती तमोगुण वाले महेश से और लक्ष्मी सत्त्वगुण वाले विष्णु से जुड़ी हैं।

५. रूह नामक आत्मा का निरूपण

रूह दो प्रकार की है- रूह जुजई और रूह कुल्ली। मुनि लोग इन दोनों को जीवात्मा और परमात्मा कहते हैं। शुद्ध चैतन्य स्थूल उपाधि और सूक्ष्म उपाधि से परिच्छिन्न है। सूक्ष्म उपाधि से परिच्छिन्न होने पर 'रूह' आत्मा कही जाती है, स्थूल उपाधि से परिच्छिन्न होकर देह (या) शरीर कहलाती है। और, शुद्ध चैतन्य जब प्रथम परिच्छेदक (सूक्ष्म उपाधि) से परिच्छिन्न होता है तब 'रूह आज़म' कहलाता है और 'एक' होने की मान्यता धारण करता है। सभी रूहें इसमें अन्तर्भूत हो जाती हैं, उसी को परमात्मा और रूह कुल्ली कहते हैं। चित्र तरङ्ग की भाँति शरीरात्मारूप है। सभी तरङ्गें समष्टि रूप द्वारा 'परमात्मा' कही जाती हैं। शुद्ध और स्वच्छ जल यहाँ भवत्सद्रूप (?) शुद्ध चैतन्य रूप है।

६. प्राणादि का निरूपण

सब शरीरों में सञ्चार करने वाली वायु जिस कारण पाँच स्थानों में रहती है उस कारण उसके पाँच नाम हो जाते हैं। और वे नाम हैं- प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। नासा से अंगूठे तक सञ्चरण करती हुई वायु 'प्राण' है। श्वास उसका विकार है। गुद से मेढ्र (शिश्न) पर्यन्त सञ्चार करने वाली (वायु) 'अपान' है। नाभि के चारों ओर इन दोनों की ग्रन्थि जीवन का हेतु है। नाभि और हृदय के बीच सञ्चार करने वाली (वायु) 'समान' है। कण्ठ से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक सञ्चार करने वाली 'उदान' और सम्पूर्ण शरीर में, भीतर और बाहर, त्वक् (चर्म) को अभिव्याप्त करने वाली वायु 'व्यान' है।

७. चार जगत् का निरूपण

इन जगत् में सभी प्राणी अवश्य सञ्चार करते हैं। किन्हीं एकात्मवादियों के अनुसार, वे जगत् चार हैं- नासूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत। कुछ लोग जगत् को पांच कहते हैं। 'आलम मसाल' (आलमे मिशाल) इस पांचवें जगत् को कहते हैं। कुछ लोग 'आलमे मिसाल' को 'मलकूत' में अन्तर्भूत करते हुए चार (जगत्) कहते हैं। सिद्ध लोग 'चार अवस्थाएँ' कहते हैं- जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया रूप। उनमें, जाग्रत् (अवस्था) नासूत का रूप है और वह जगत् प्रकट और जागरण रूप है। और, स्वप्न मलकूत का रूप है, वह (स्वप्न) आत्मा का है (?) और जगत् का स्वाप (निद्रा) रूप है। और, सुषुप्ति जबरूत का स्वरूप है। उसमें दोनों जगत् के चित्र, त्वन्ता और अहन्ता नहीं हैं। दोनों नेत्रों के खुलने से अथवा मुँदने से बहुत लोग दोनों कुल के विरुद्ध उस जगत् के ज्ञान से रहित हैं। सबसे उत्कृष्ट मन वाले तथा शुद्ध अन्तःकरण वाले 'जुनेद' नाम के गुरु द्वारा प्रतिबोधित होकर आज्ञप्त हुए- एकात्मता वह है जो बिना यत्न के मुहूर्त मात्र उपविष्ट है। दूसरे महापुरुष कहते हैं- 'बिना यत्न के' क्या बिना गवेषण के, प्राप्ति, बिना अवलोकन के दर्शन है? द्रष्टा दृष्टि के विषय में निमित्त होता है, इसलिए मुहूर्त मात्र उपवेशन का (तात्पर्य है) कि जाग्रत् और स्वप्न रूप दोनों जगत् के चित्र उस मुहूर्त, मनमें नहीं आते हैं, जैसा कि 'ब्रह्मज्ञान' में, महादेव और पार्वती के संवाद में कहा है-

बिना अवलोकन के, जिसकी दृष्टि स्थिर है,
बिना निरोध के, जिसकी वायु स्थिर है,
बिना अवलम्बन के, जिसका मन स्थिर है
वही योगी है, वही गुरु है, वही सेव्य है।

शुद्ध अन्तःकरण वाले हमारे सिद्धों ने उसे ही कहा है- **''यदि चाहते हो प्राप्त करना तो क्षण भर, अन्वेषण न करो, यदि चाहते हो जानना तो क्षण भर, मत जानो, क्योंकि रहस् के विषय में यदि खोज करते हो तो प्रकट से दूर हो जाते हो, प्रकट के विषय में यदि खोज करते हो तो रहस् से दूर होते हो। इसलिए रहस् और प्रकट, दोनों से बाहर निकल कर, पैर फैलाकर सुखपूर्वक उसका आश्रय लेकर सो जाओ।''**

और, तुरीया (अवस्था) लाहूत के ढंग की है, वह शुद्ध चैतन्य स्वरूप है, तीनों जगत् में व्याप्त है तथा तीनों को ढँकने वाली है। यदि अधिकारी, जाग्रत् से स्वप्न में, स्वप्न से सुषुप्ति में, सुषुप्ति से तुरीया में, इस प्रकार क्रम से सञ्चार करता है तब इस प्रकार उसका वर्धन होता है और क्षर अक्षर होता है। यहाँ भव तत्त्वों के तत्त्व को सिद्ध लोग 'निर्गुण' कहते हैं। यदि तुरीया से सुषुप्ति में, सुषुप्ति से स्वप्न में, स्वप्न से जाग्रत् में सञ्चार करता है तब अक्षर क्षर होता है।

८. शब्द और नाद की व्याख्या

परमात्मा का निःश्वसित रूप, प्रणव का पर्याय 'कुन्' शब्द स्रष्टृत्व का निमित्त है, प्रकट हुआ। उस शब्द-नाद का नाम सिद्धों ने 'सरस्वती' रखा है। ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक सभी शब्द उस (शब्द-नाद) से उत्पन्न हुए हैं। सम्पूर्ण जगत् उस अनुरञ्जक का ध्वनि रूप है। ऐसे लम्बमान ध्वनि को किसने सुना है? यह नाद-शब्द सिद्धों के मत से तीन प्रकार का है। प्रथम, अनाहत है। अर्थात् ऐसा शब्द "सार्वदिक' (सदा विद्यमान रहने वाला) है। एकात्मवादी लोग इस शब्द को अपरिच्छिन्न, सभी जपों का चक्रवर्ती कहते हैं। यह नाद अनादि है, चिदाकाश का प्रत्यक्ष रूप है। इस कारण, कुलद्वयगत दोनों महानों (?) के बिना इस शब्द को प्राप्त नहीं करते हैं, किन्तु दूसरा आहत शब्द वर्णोच्चारण के बिना, परस्पर आघात से उत्पन्न होता है। तीसरा शब्द वर्णात्मक है, पदोच्चारण के प्रयत्न से उत्पन्न होता है। और कहा है-

"शब्द दो प्रकार का होता है, आहत और अनाहत। उसमें अनाहत नाद की उपासना मुनि लोग करते हैं (वह) गुरूपदिष्ट मार्ग से मुक्ति देता है, किन्तु रञ्जक नहीं है।"

यह वर्णात्मक शब्द 'सरस्वती' से जुड़ा है। इस शब्द से नामों में सबसे महान् हमारे बीच (जो) है वह 'इस्म आज़म' कहलाता है। किन्तु सिद्ध लोग उसे 'वेदमुख' कहते हैं। 'ओम्' इस वेदमुख का अर्थ है। वह तीनों गुणों का स्वामी है। तीन गुण उत्पत्ति, स्थिति और लय के निमित्त हैं। उन तीनों को ही अकार, उकार, मकार कहते हैं और वे वहाँ प्रकट हैं। इस नाम का दोनों लिपियों में, आकृति-विशेष एक ही है। चारों भूतों, जल, तेजस्, वायु और आकाश तथा शुद्ध चैतन्य के चिह्न वहाँ प्रकट (स्पष्ट) हैं।

९. नूर अर्थात् प्रकाश की व्याख्या

वह (नूर) तीन प्रकार का है। यदि जलाल गुण अर्थात् तमोगुण से प्रकट होता है तब सूर्य-रूप अथवा सुवर्ण-रूप अथवा अग्नि-रूप होता है; यदि जमाल गुण अर्थात् सत्त्व गुण से प्रकट होता है तब चन्द्र-रूप, अथवा रजत-रूप, अथवा जल-रूप होता है। गुण से असंस्पृष्ट स्वरूप प्रकाश से रहित (होता) है। परमेश्वरीय सिद्धों ने इनके (सम्बन्ध में) हमारे वेद में फ़र्माया है- **अपने प्रकाश को, अपने मार्ग को उसे बताता है जिसे अपेक्षा करता है।** उनसे (?) दूसरे प्राप्त नहीं करते। और वह प्रकाश तो (ब्रह्म प्रकाश) है। यदि कोई पुरुष सोता है अथवा आंखें मूंद कर बैठता है, आँख से नहीं देखता, कान से नहीं सुनता, वाणी से नहीं बोलता, नाक से नहीं सूँघता, त्वक् इन्द्रिय से नहीं स्पर्श करता, [तो] स्वप्न में ये सभी क्रियाएँ एक से ही होती हैं। वहाँ (स्वप्न में) अवयव, बाह्य इन्द्रिय, ज्योति और प्रदीप निष्प्रयोजन हो जाते हैं। घ्राण-रसन-चक्षुष्-त्वक्-श्रोत्र परस्पर मिल कर एकीभूत, एक व्यक्ति रूप हो जाते हैं। उसे ब्रह्म प्रकाश कहते हैं। हे मित्र, तुम सोचो, मैंने क्या कहा है! क्योंकि यह तीक्ष्ण बुद्धि वाले के लिए विचार का विषय है। सिद्धों के सिद्ध ने इस विचार की प्रशंसा में फ़र्माया है- "**यह एक विचार है, उसमें मुहूर्त मात्र अवस्थान तीनों भुवनों के मनुष्य, दैत्य आदि के धर्म से भी श्रेष्ठ है।**" वह प्रकाश शुद्ध चैतन्य का स्वरूप है। जैसे हमारे 'वेद' में, **परमेश्वर आकाश और पृथिवी का प्रकाश है।** उस प्रकाश को सिद्ध लोग ज्योतिःस्वरूप, सदा प्रकाश और स्वयम्प्रकाश कहते हैं। यह अर्थ है- स्वयं स्वयमेव नित्य प्रकाश है, उसमें जगत् दिखाई देता है अथवा नहीं (दिखाई देता है)। जैसे एकात्मवादी लोग 'प्रकाश रूप, न कि प्रकाशवान्' यह कहते हैं। जैसा कि हमारे 'वेद' में कहा है- "**शुद्ध ब्रह्म पृथ्वी और आकाश का प्रकाश है। वह प्रकाश गवाक्ष के दीप की भाँति है। वह दीप काचघटी के बीच (होता है) और काचघटी उत्तम प्रकाश वाले तारे की भाँति प्रकाशित होती है। वह दीप इङ्गुदी के तेल से जलता है। वह इङ्गुदी वृक्ष न पूर्व में है न पश्चिम में। किन्तु निकट में शोभित हो रहा इङ्गुदी तैल प्रकाशित है बिना अग्नि-संयोग (की स्थिति में) प्रकाश के ऊपर प्रकाश है। परमेश्वर अपने प्रकाश का मार्ग (उसे) बताता है जिसे चाहता है।**" अब जो विरक्त मैंने समझा वह यह है- "गवाक्ष" पद का प्रयोजन ब्रह्माण्ड स्पष्ट है। 'दीप' पद का प्रयोजन

ज्योतिःस्वरूप है। 'काचघटी' पद का प्रयोजन आत्मा है। वह (काचघटी) तारे की भाँति प्रकाशवती होती है। इस दीप के प्रकाश से काचघटी भी दीप जैसी अपने को प्रकट करती है। प्रज्वलित वह दीप व्यञ्जना से शुद्ध चैतन्य का प्रकाश है। शोभमान शुद्ध चैतन्य स्वरूप वृक्ष से वह सभी दिशाओं से अलग है; न पूर्व दिशा में, न ही पश्चिम दिशा में। 'इङ्गुदी तैल' पद का प्रयोजन परमात्मा है। और वह तैल अतिशय सूक्ष्म, अतिशय स्वच्छ है, अपने-अपने ही प्रकाशित होता है। प्रज्वलन में (उसका) कोई प्रयोजन नहीं है। एकात्मवादियों के गुरु **वासिती** ने आत्मा की प्रशंसा में फ़र्माया है- आत्मा की काचघटी वैसे प्रकाशवती है जैसे..... अग्नि के स्पर्श और वेद के श्रवण की अपेक्षा नहीं है। अत्यन्त सामर्थ्य के कारण, निकट में स्वयं ही प्रकाश होता है। यह तैल-प्रकाश क्या है? शुद्ध ब्रह्म के प्रकाश के साथ, प्रकाश के ऊपर प्रकाश है। इसका तात्पर्य है- अतिस्वच्छत्व और प्रकाशत्व के कारण प्रकाश प्रकाश के ऊपर है, इस प्रकार का भी प्रकाश के ऊपर प्रकाश किसी को भी नहीं दिखाई देता जब तक अपने एकत्व के प्रकाश से (मार्ग) को नहीं दिखाता है। तात्पर्य यह है- शुद्ध ब्रह्म का प्रकाश से सम्बन्ध रखने वाले अपने प्रकाश से सूक्ष्म आवरणों के बीच प्रकट (होता) है। कोई भी अन्धकार अथवा आवरण उसमें नहीं है, जिस प्रकार का शुद्ध ब्रह्म प्रकाश परमात्मा के आवरण में प्रकट है। परमात्मा आत्माओं के आवरण, आत्मा शरीर के आवरण में। इस प्रकार तैलरहित दीप काचघटी के आवरण में प्रकट है और काचघटी गवाक्ष के आवरण के बीच (प्रकट है)। इन्होंने शुद्ध ब्रह्म के प्रकाश के व्यापार से प्रकाश के ऊपर प्रकाश किया हुआ है।

१०. ईश्वर के दर्शन का निरूपण

ईश्वर के दर्शन को सिद्ध लोग 'साक्षात्कार' कहते हैं। बाह्य चक्षु से और अन्तश्चक्षु से उसे जानो। परमेश्वर के दर्शन में, यहाँ (इह लोक में) या परलोक में, बाह्य या आभ्यन्तर चाक्षुष (प्रत्यक्ष) को लेकर किन्हीं सिद्धों या मुनियों की, परमेश्वर द्वारा जिनका अन्तःकरण शुद्ध कर दिया गया है, कोई शङ्का विप्रतिपत्ति या परस्पर विरोध नहीं है। सभी, जो अपौरुषेय ग्रन्थ वाले, परिपूर्ण दर्शन वाले हैं, प्रत्येक मत में इस विषय में श्रद्धा है, चाहे वे 'क़ुरआन' वाले हों, चाहे 'वेद' वाले, चाहे 'तौरात' वाले, चाहे 'इंजील' वाले। वे अज्ञानी और अंधे हैं जो अपने-अपने मार्ग (सिद्धान्त) में परमेश्वर के प्रत्यक्ष को स्वीकार

नहीं करते हैं। परमेश्वर, जो सब प्रकार के सामर्थ्य से सम्पन्न है ऐसे परमेश्वर का अपने प्रत्यक्ष करने (प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होने) में कैसे नहीं सामर्थ्य है? इस विषय में 'सुन्नियों' को सही मार्ग प्राप्त है। यदि निर्गुण शुद्ध चैतन्य देख सकता है तो यह अत्यन्त बाधित बात है, क्योंकि शुद्ध एकाकी, सूक्ष्म, अपरिच्छिन्न का जब तक परिच्छेद और सूक्ष्म आवरण रूप प्रकाश नहीं होता तब तक प्रत्यक्ष असम्भव है। इसलिए, ऐसे प्रत्यक्ष का अत्यन्ताभाव है। जो कि कहा है, परलोक में ही ईश्वर प्रत्यक्ष होता है, न कि इहलोक में, यह निराधार है। यदि इसमें सब प्रकार का सामर्थ्य है तब सब प्रकार से, सब देश में और सब काल में अपने को प्रकट करने का भी (सामर्थ्य) सम्भव है। जिसका यहाँ दर्शन कठिन है उसका वहाँ भी दर्शन (कठिन) है। ऐसा हमारे 'वेद' में सुना जाता है, **जो कोई इस लोक में दर्शन की सम्पत्ति से निराश होता है, वह उस लोक में अवलोकन की सम्पत्ति से हताश होता है।**

किन्तु जो हुक्मामार्तासुल (?) ईश्वर का प्रत्यक्ष स्वीकार नहीं करते हैं उन्होंने महापराध किया है। यदि कहें कि शुद्ध का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है तब इस विवाद का कुछ स्थान हो। सब प्रकार से प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है, यह कहने वालें ने अत्यन्त महापराध किया है; क्योंकि अनेक प्रकार से परिपूर्ण सिद्धों और मुनियों ने बाह्य चक्षु द्वारा परमेश्वर का दर्शन और शब्द-श्रवण साक्षात् किया है। यदि उस (परमेश्वर) का वाक्य-श्रवण सभी दिशाओं में स्वीकार करते हो तो क्यों नहीं सभी दिशाओं में उसका दर्शन भी स्वीकार करते हो? जिस प्रकार पमरेश्वर, देवता, अपौरुषेय ग्रन्थ, सिद्ध, महाप्रलय, साधु-असाधु परमेश्वर के कारण तीर्थ आदि अवश्य श्रद्धेय हैं उसी प्रकार परमेश्वर का दर्शन भी अवश्य श्रद्धेय है। क्योंकि ईश्वर का दर्शन ही सबका प्रयोजन है। और भी, परम सिद्ध के वाक्य में परस्पर विरोध का आरोप किया है। हमारे पण्डितों ने कोई प्रश्न किया- क्या तुमने परमेश्वर को देखा है? तब फ़र्माया, प्रकाशित हो रहे उसे देखता हूँ। उन्होंने इस वाक्य को इस प्रकार पढ़ा, उस ज्योतिःस्वरूप को कैसे मैं देख सकता हूँ? परम सिद्ध का अदर्शन ठीक नहीं बैठता है। प्रथम अर्थ को हमने मान लिया, व्यञ्जना है, उसका दर्शन प्रकाश के अवारण में हम स्वीकार करते हैं। जिस द्वितीय प्रश्न को हम स्वीकार करते हैं कि व्यञ्जना है, अत्यन्त शुद्ध चैतन्य नीरूप है। ये दोनों पाठ परस्पर विरुद्ध अर्थ वाले नहीं हैं, किन्तु अद्भुत सिद्ध-सम्बन्धी हैं।

एक वाक्य में दोनों सिद्धान्तों का निर्णय किया है। जैसे हमारे 'वेद' में सुना गया है- **उस दिन, प्रसन्न और सन्तुष्ट मुख (वाले) अपने परमेश्वर को देखते हैं।** दर्शन को लेकर यह स्पष्ट प्रमाण है। क्या यह दर्शन ईश्वरत्व का दर्शन ईश्वर पद सम्बन्धी हुआ? **इस प्रकार उसके परिच्छिन्न ईश्वरत्व का दर्शन सम्भव होता है।** किसी कण्डिका में यह सुना जाता है- **आँखें उसे नहीं देखतीं, वह आँखों को देखता है, वह सूक्ष्म है, सर्वज्ञ है।** (यह) नीरूपत्व की व्यञ्जना है। इसका तात्पर्य है- आँखें उसे नहीं देखतीं, निर्गुण और नीरूप होने के कारण वह सबको देखता है। वह परम सूक्ष्म और नीरूप है। इस कण्डिका में 'सः' पद विद्यमान है, उससे शुद्ध चैतन्य का अप्रत्यक्षत्व व्यञ्जित होता है।

ईश्वर का दर्शन पांच प्रकार का है। प्रथम दर्शन स्वप्न में, मन की आँख से (होता है); द्वितीय दर्शन जाग्रत् अवस्था में सिर की आँख से (होता है); किन्तु तृतीय (दर्शन) स्वप्न और जागरण के बीच विशेष निरहङ्कार की स्थिति में (होता है); चतुर्थ दर्शन विशेष परिच्छिन्न में होता है और पञ्चम दर्शन एक स्वरूप का बहुत परिच्छिन्नों, बाह्य और आभ्यन्तर जगत् के बीच (होता है)। ऐसा ही परम सिद्ध ने देखा, उस समय स्वयं वे स्थित नहीं रहे, दृक् और दृश्य का ऐक्य कायम रहा। फिर, स्वप्न और जाग्रत् के निरन्तों (अन्तहीनों?) का ऐक्य ज्ञात हुआ। और भी, बाह्य और आभ्यन्तर आँखें एक हो गयीं। दर्शन की यही मान्यता परिपूर्ण है। इस दर्शन को इहलोक और परलोक की अपेक्षा नहीं है। (यह दर्शन) सभी देश और काल में हो सकता है।

११. नामों का निरूपण

परमेश्वर के अनन्त नाम, मर्यादा के परिच्छेद से अतीत हैं। मुत्लक् बहत् (स्वच्छन्द, निष्केवल) शुद्ध चैतन्य के (नाम) सिद्ध लोग शून्य, निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, सत्, चित्, आनन्द कहते हैं। हमारे वेद का मुख 'अल्लाह्' का नाम ॐ कहते हैं। 'ह' इसका रूप 'सः' कहते हैं। ज्ञान का अपरपर्याय (दूसरा नाम) 'इल्म' के सम्बन्ध से 'आलिम' कहते हैं। सिद्ध लोग 'चैतन्य' नाम कहते हैं। 'हैयः' को नित्य, 'कादर' को समर्थ, 'मुरीद' को स्वतन्त्र, 'समीअ' को श्रोता, 'वसीर' को द्रष्टा कहते हैं। वचन के सम्बन्ध से वक्ता है। फ़िरिश्तों के देवता मजहर अतम का महा अवतार नाम है। अवतार

वह है; जो जिस समय में जहाँ परमेश्वर का सामर्थ्य जितना प्रकट है, अन्यत्र कहीं भी उस समय प्रकट नहीं हो सकता। परम सिद्ध ने 'वह्य' को 'आकाशवाणी' फ़र्माया है। सभी आकाशवाणियों से मुझे यह अत्यन्त अति कठिन घण्टा है जो भौंरों के शब्दों जैसी है। जिस कारण वह शब्द आकाश से प्रकट होता है अतः 'आकाशवाणी' कहलाता है। अपौरुषेय ग्रन्थ हमारा क़ुरआन सिद्धों का वेद कहलाता है। पिशाचों के बीच जो अच्छे लोग हैं उन्हें 'परी' कहते हैं। उनमें ही जो दुर्जन (शैतानों का गिरोह) देव (?) शयातीन राक्षस कहे जाते हैं। 'आदमी' को मनुष्य, 'नबी' को सिद्ध, 'वली' को ऋषीश्वर कहते हैं।

१२. सिद्धत्व-ऋषीश्वरत्व का निरूपण

सिद्ध तीन प्रकार के हैं। एक वह, जिसने बाह्य अथवा आभ्यन्तर चक्षु से परमेश्वर को देखा। दूसरा वह, जिसने शब्द को सुना। वह शब्द वर्णात्मक अथवा ध्वन्यात्मक (होता है)। तीसरा वह, जिसने देवता को देखा अथवा उसके शब्द को सुना। सिद्धत्व और ऋषीश्वरत्व तीन प्रकार का है। एक सिद्धत्व और ऋषीश्वरत्व निर्गुणत्व-सम्बन्धी होता है, दूसरा सगुणत्व-सम्बन्धी और तीसरा उभय-सम्बन्धी। निर्गुणत्व-सम्बन्धी रूह (नूह) का सिद्धत्व होता है। जैसे उसने तत्त्व रूपी समुद्र का निर्गुणत्व-सम्बन्धी (सिद्धत्व) देख लिया है। उसने ही उपदेश दिया है (किन्तु) उसके ही लोगों ने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वह निर्गुणत्व-सम्बन्धी सिद्धत्व था। थोड़े लोगों ने उनका उपदेश स्वीकार किया। वे नाश-समुद्र में डूबे। विरागी लोग अपने समय पर अपने शिष्यों को निर्गुणत्व का उपदेश देते हैं। उनके उपदेशों को किसी ने न जाना, न (कुछ) होता है और फल नहीं प्राप्त करता है। और, मार्ग के बीच चलते हुए विनाश प्राप्त होते हैं, परमेश्वर को प्राप्त नहीं करते। सिद्धत्व सगुणत्व-सम्बन्धी, जैसे मूसा का सिद्धत्व। उन्होंने वृक्ष की अग्नि में देखा, मेघ के बीच से वाक्य सुना। उनके मार्ग पर चलने वाले और उनका अनुसरण करने वाले सगुणत्व- सम्बन्धी लोग उसके बीच निमग्न रहते प्रतिमोपासक हो गये। उन्होंने ईश्वर की आज्ञा भङ्ग की। उच्छृङ्खल कुछ लोग आदि-अन्त में हमारे समय में पूर्ण अनुकरण करने वाले हैं। वे अपना व्यापार करते हुए इस ढंग से जी रहे हैं। (वे) निर्गुणत्व-सम्बन्ध से रहित होते हुए,

सगुणत्व-सम्बन्धी (सिद्धत्व) में निमग्न होकर सुन्दर रूप को देखते हुए, अनुरञ्जक शब्द को सुनते हुए, असत् प्रकार से (?) क्रीडा करते हुए बद्ध होते हैं। इनके पीछे चलना ठीक नहीं है। जो रूप अपना स्वरूप दिखाकर चित्त को हर लेता है, तत्काल (?) तुम्हारी दृष्टि से, दूर ले जाता है। अतः मन को उसमें लगाना चाहिए, जो तुम्हारे साथ में स्थित है और स्थित रहेगा। तृतीय (सिद्धत्व) उभय-सम्बन्धी है। इसका तात्पर्य है- सगुणत्व- सम्बन्धी तथा निर्गुणत्व-सम्बन्धी, दोनों सिद्धत्वों का जो एकीकरण है वह परिपूर्ण सिद्धत्व है (और वह) परम सिद्ध का सिद्धत्व है; क्योंकि (उसमें) निर्गुणत्व-सगुणत्व, अपरिच्छिन्नत्व-परिच्छिन्नत्व और नीरूपत्व-सरूपत्व का एकीकरण किया गया है। जैसा हमारे 'वेद' में सुना जाता है- उसके जैसी कोई वस्तु नहीं है। यह व्यञ्जना निर्गुणत्व की सामान्यता को लेकर है और श्रोता और द्रष्टा है। यह व्यञ्जना सगुणत्व की सामान्यता को लेकर है। जो दोनों का एकीकरण है, यह श्रेष्ठ (मान्यता) है। सिद्धत्व और समापन (?) है। (यह मान्यता) सभी लोगों की शिरोरूपा (तथा) असाधरणी (है और) पूर्व से पश्चिम तक विस्तृत जगत् को व्याप्त करके स्थित है। निर्गुणत्व-सम्बन्धी सिद्धत्व निराश है, क्योंकि वह सगुणत्व- सम्बन्धी सिद्धत्व है और सगुणत्व-सम्बन्धी सिद्धत्व हताश है, क्योंकि वह निर्गुणत्व-सम्बन्धी सिद्धत्व है। परिपूर्ण सिद्धत्व निर्गुणत्व और सगुणत्व दोनों का आच्छादक है। जैसा हमारे 'वेदोपनिषद्' में सुना जाता है- **हुवल्-अव्वलु वल्-आख़िरु वज्जाहिरु वल्-बातिनु।** इसका अर्थ है- वह आदि है, वह अन्त है, वह प्रकट है, वह गुप्त है, वह निर्गुण है, वह सगुण है, वह परिच्छिन्न है, वह अपरिच्छिन्न है, वह साकार है, वह निराकार है। वही यह सब है, उसके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है। ऐसा सिद्धत्व इन परिपूर्णानुयायियों का ही विशेष रूप से है। जैसा हमारे 'वेद' में कहा है- **सभी मतों के अनुसरण करने वालों से आप लोग उत्कृष्ट हैं, क्योंकि सगुण और निर्गुण, दोनों के एकीकरण द्वारा उपासना करते हैं।** इसका अर्थ है- परम सिद्ध का अनुकरण करने वाले, और वे जो ईश्वर के द्वारा सत्कृत परम सिद्ध के समसामयिक सिद्ध और प्रतिनिधिभूत थे, जैसे अबूबक्र, उमर, उस्मान, अली, हसन और हुसैन। और दूसरे समय में इस प्रकार के जुन्नून मिसौरी (मिस्त्री), जुनेदो, ज्ञानियों के गुरु मीरान मुहद्दीन इब्नु-अरबी, मेरे गुरु मियां मीर, मुल्लाशाह, मियां वारी।

१३. (ब्रह्माण्ड निरूपण अध्याय नहीं है)

१४. दिशाओं का निरूपण

हमारे एकात्मवादी लोग दिशा के छः भेद कहते हैं- पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अधः। सिद्ध लोग दस (भेद) कहते हैं। दो-दो दिशाओं के बीच एक विदिक् होती है, जैसे आग्नेयी, नैऋती, वायवी, ऐशानी- इस प्रकार दस दिशाएँ कहते हैं। पूर्व-दक्षिण के बीच में आग्नेयी, दक्षिण-पश्चिम के बीच में नैऋती, पश्चिम-उत्तर के बीच में वायवी और उत्तर-पूर्व के बीच में ऐशानी।

१५. आसमान अर्थात् गगन का निरूपण

सिद्ध लोग आठ (आसमान/गगन) कहते हैं। उनमें भ्रमणशील सात ग्रहों के मार्ग रूप सात गगन हैं। और, वे ग्रह कहे जाते हैं- ज़ुहल, मुश्तरी, मिर्रीख़, शम्स, जशरः ज़ुह्रा, अतारः (उतारिद), क़मर। ग्रहों के नामों को सिद्ध लोग शनैश्चर, बृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र कहते हैं। सभी नक्षत्रों का आधारभूत गगन आठवां है। दार्शनिक लोग इस गगन का नाम आठवां नक्षत्र-गगन कहते हैं। जैसा कि हमारे 'वेद' में सुना जाता है- गगन और पृथिवी 'कुर्शी' के बीच में सम्मिलित होते हैं। नवम महाकाश को जानकर गगन के बीच से निक्षिप्त है (अतः) वह 'सर्वव्यापक' रूप से सभी गगनों (तथा) पृथिवियों की 'कुर्शी' का 'आच्छादक' है।

१६. पृथिवी का निरूपण

पृथिवी के सात भेद हैं। और उन भेदों को 'सप्त पुट' कहा जाता है। वे पुट-अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल (और) पाताल (नामों से कहे जाते) हैं। हमारे मत में भी सात भेद हैं। जैसा हमारे 'वेद' में सुना जाता है- परमेश्वर वह परमेश्वर है जिसने सात गगन बनाये, उसी प्रकार सात पृथिवियां (ज़मीनें) बनायीं।

१७. पृथिवी के विभागों का निरूपण

जहाँ लोक ठहरे हैं उसका दार्शनिकों ने सात विभाग किया है। उन विभागों को 'सात अक़लीम' (इक़्लीम) कहते हैं। पौराणिक लोग 'सप्त द्वीप'

कहते हैं। इन खण्डों को (पौराणिक लोग) प्याज़ के छिलके की भाँति ऊपर-नीचे के भाव से नहीं समझते हैं, किन्तु सीढ़ी-सोपान की भाँति समझते हैं। सात पर्वतों को 'सप्त कुलाचल' कहते हैं। उन पर्वतों के नाम ये हैं- प्रथम सुमेरु, (जो) मध्य में है; द्वितीय हिमवान्; तृतीय हेमकूट; चतुर्थ निषध, ये (सभी) सुमेरु से दक्षिण की ओर हैं; नील पञ्चम है; श्वेत षष्ठ है (और) शृङ्गवान् सप्तम है, ये सुमेरु से उत्तर की ओर हैं। माल्यवान् पूर्व दिशा में, गन्धमादन पश्चिम दिशा में है; किन्तु कैलास मर्यादा-पर्वतों से अतिरिक्त है। जैसा कि हमारे 'वेद' में सुना जाता है- "हमने पर्वतों को पृथिवी के शंकु बनाये हैं।"

इन सात द्वीपों के प्रत्येक आवेष्टन रूप सात समुद्र हैं। लवण (द्वीप) जम्बुद्वीप का आवरक है, इक्षुरस प्लक्षद्वीप का, सुरा समुद्र शाल्मलीद्वीप का, घृत-समुद्र कुशद्वीप का, क्षीरसमुद्र शाकद्वीप का, स्वादुजल-समुद्र पुष्करद्वीप का आवरक है। इस प्रकार समुद्र सात हैं। हमारे 'वेद' में भी प्रकट (स्पष्ट उल्लिखित) हैं- "वृक्ष लेखनियां हों, समुद्र स्याही हो जाय, उसके पश्चात् सात समुद्र स्याही हो जायें, अल्लाह के वाक्य समाप्त नहीं होंगे। प्रत्येक द्वीप, प्रत्येक पर्वत, प्रत्येक समुद्र में नाना जातियां, अनन्त जन्तु रहते हैं। जो पृथिवी, जो पर्वत, जो समुद्र सभी पृथिवियों, सभी पर्वतों, सभी समुद्रों से ऊपर रहते हैं उन्हें 'स्वर्ग' कहते हैं; जो पृथिवी, (जो पर्वत), जो समुद्र सभी पृथिवियों, सभी पर्वतों, सभी समुद्रों से नीचे भाग में रहते हैं उसे 'नरक' कहते हैं। सिद्धों का निश्चय है कि सब नरकादिक सभी ब्रह्माण्डों से कुछ बाहर नहीं है। वे सात गगनों के आश्रित सात ग्रह स्वर्ग के चारों ओर मेखला की भाँति चक्कर लगाते रहते हैं, ऐसा कहते हैं, स्वर्ग से ऊपर नहीं। और भी, यदि स्वर्ग का मन आकाश को समझते हैं, हमारे लोग उसे 'अर्श' कहते हैं और स्वर्ग-भूमि को 'कुर्शी' कहते हैं।

१८. जगत् वर्ज़ख़ = प्रेतलोक का निरूपण

हमारे महासिद्ध ने फ़र्माया है कि निश्चय ही जो कोई मर गया उसका प्रलय (विनाश) हो गया। तब आत्मा उसी क्षण भौतिक स्थूल शरीर से वियोग प्राप्त कर सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर जाती है। उस सूक्ष्म शरीर से कर्म की

उत्पत्ति होती है और वह कर्म या तो धर्म है अथवा अधर्म। प्रश्नोत्तर के समाप्त होने पर उसी क्षण स्वर्ग वाले को स्वर्ग ले जाते हैं और नरक वाले को नरक। इस वेद-कण्डिका का अनुसारी (वचन?) है, वे भाग्यहीन होकर, अग्नि के बीच ऊंचे स्वर में चिल्लाते हुए, सकरुण आवाज़ करते हुए नित्य वहीं, उसी अग्नि में तब तक रहते हैं जब तक द्यावाभूमी विद्यमान हैं, परमेश्वर की इच्छा के बिना। निश्चय ही तुम्हारा परमेश्वर करता है, जो चाहता है। जो भाग्यवान् हैं वे स्वर्ग में नित्य निवास करते हैं, जब तक द्यावाभूमी विद्यमान हैं तब तक रहते हैं। बिना परमेश्वर के निष्कासन की इच्छा के। उसका कृपादान अनन्त हैं, क्योंकि द्यावाभूमी के नाश के पहले भी यदि चाहता है नरक से स्वर्ग में ले जाता है। एक महापुरुष ने इस कण्डिका का अर्थ इस प्रकार किया- एक ऐसा समय आयेगा, जब कोई भी नारकी नरक में नहीं रहेगा। चिरकाल नरक में रहने के पश्चात् स्वर्गियों का स्वर्ग से निष्कासन की जो बात है वह द्यावाभूमी के नाश से पहले भी यदि चाहता है स्वर्ग से 'फ़िरदौसे आला' के बीच ले जाता है, क्योंकि उसका कृपादान अनन्त है। जैसा हमारे 'वेद' में सुना जाता है- परमेश्वर का एक स्वर्ग कायम है जो सभी स्वर्गों से उत्कृष्टतम है, जिसे सिद्ध लोग 'वैकुण्ठ' कहते हैं। यह महामुक्ति है।

१९. महाप्रलय का निरूपण

सिद्ध लोगों का यह मत है कि नारकियों के नरक में (तथा) स्वर्गियों के स्वर्ग में चिरकाल तक रहने के पश्चात् महाप्रलय होता है। जैसा हमारे 'वेद' में सुना जाता है- **शङ्ख फूके जाने पर स्वर्ग और पृथिवी पर रहने वाले सभी मूर्च्छित हो जाते हैं, उस पुरुष को छोड़, जिसे परमेश्वर मूर्च्छा से बचाना चाहता है।** और, वे ज्ञानी ही थे, जो परमेश्वर द्वारा इहलोक और परलोक में मूर्च्छा और प्रमाद से बचाये गये। इसलिए **वासिष्ठ रामायण** में कहा है-

चाहे कल्पान्त के पवन बहें और चाहे समुद्र एक हो जायें, चाहे बारह आदित्य तपने लगें, निर्मनस् का कुछ भी नहीं बिगड़ता!

तब, फिर दिशाएँ, पृथिवियाँ, नरक और स्वर्ग नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा की आयु समाप्त हो जाने और ब्रह्माण्ड के अदृश्य हो जाने पर नारकियों और

स्वर्गियों को विदेह-मुक्ति होने वाली है। इसका अर्थ है- एक प्रकार के प्रलय रूप प्रतिसञ्चर[1] के प्राप्त होने पर (लोक?) के अन्त होने पर वे सभी ब्रह्मा के साथ मृतात्मा होकर परम पद में प्रवेश करते हैं।

२०. मुक्ति का निरूपण

मुक्ति अर्थात् शुद्ध चैतन्य में परिच्छिन्नों (जीवों) का विलय या विगलन। जैसे इस कण्डिका से, परमेश्वर..... अकव्वर (अकबर) है, वह महाफल है यह प्रकट होता है। प्रवेशन का अर्थ है अङ्गों का अकव्वर (अकबर) में, जो 'फ़िर्दौस आला' का पर्याय है, में महामुक्ति; परम मोक्ष। और वह मुक्ति तीन प्रकार की है- प्रथम जीवन्मुक्ति है। जो कोई जीते जी ज्ञान-सम्पत्ति के कारण और सत्य के परिचय के कारण, मुक्त होता है। इस संसार में वस्तु को एक देखता है और एक को जानता है; प्रवत्तियाँ, निवृत्तियाँ, शुभ, अशुभ- इनसे अपने को नहीं जोड़ता है; समग्र सृष्टि के साथ अपने को सत्य सत्य-स्वरूप के रूप में समझता है; सब जगह प्रकाश, सत्य स्वरूप है ऐसा समझता है और देखता है। एकात्मवादी लोग समग्र ब्रह्माण्ड का 'महज्जगत्' यह नाम बताते हैं। वही परमेश्वर का समष्टि रूप़ है। अब, परमेश्वर के स्थूल शरीर-स्थानीय चिदाकाश, परमेश्वर का नित्य सूक्ष्मस्थानीय शुद्ध चैतन्य को उसके शरीर का आत्मस्थानीय एक ही व्यक्ति है, यह जाने। एक अणु, एक तृण, गुप्त और प्रकट को उस असदृश द्वैत से अलग न देखे, न जानें। और जैसे एक महापुरुष का 'अमहज्जगत्' कहते थे, परस्पर विलक्षण बहुत से अवयव एक व्यक्ति है, और भिन्न अवयव है, न कि वह अनेक है, उसी प्रकार इस शुद्ध चैतन्य के भी बहुत परिच्छिन्न अवयव हैं, परन्तु उसे अनेक नहीं समझें। जैसे शुद्ध अन्तःकरण वाले एक महापुरुष ने फ़र्माया है- समग्र ब्रह्माण्ड का सत्य स्वरूप आत्मा है, समग्र ब्रह्माण्ड सत्य स्वरूप का शरीर है। और आत्मा देवता हैं, इन्द्रिय उस शरीर के गगन हैं, स्थावर और जङ्गम सभी भूत अवयव हैं।

---

१. प्रतिसञ्चरन्ति क्रियाशून्यतया विलीयन्तेऽस्याम्।
यदा तु प्रकृतौ याति स्वयं विश्वमिदं जगत्।
तदोच्यते प्राकृतोऽयं विद्वद्भिः प्रतिसञ्चरः।।
मार्क० पुरा० ६अ०

यही ज्ञान है, इससे भिन्न किसी काम का नहीं है। इसी प्रकार व्यास प्रभृति सिद्ध भी समग्र ब्रह्माण्ड को महज्जगत्, एक व्यक्ति जानकर उसके शरीर के अवयवों का इस प्रकार वर्णन करते हैं-

इसलिए एकात्मवादी जिस-जिस पदार्थ को देखता है, जानें कि वह पदार्थ महापुरुष का वह-वह अवयव है।

सातवां पाताल म० का चरण तल है, छठा म० का चरण-पृष्ठ है, पिशाच आदि चरण की उंगलियाँ हैं, पिशाचों के वाहन रूप पशु म० के नख हैं। महातल, पञ्चम पुट म० के गुल्फ हैं। तलातल चतुर्थ पुट म० की दोनों जांघें हैं। सुतल, तृतीय पुट म० के जानु हैं। वितल, द्वितीय पुट म० के दोनों ऊरु हैं। काल म० की गमनक्रिया है। अतल, प्रथम पुट म० का पायु है। प्रजापति देवता संवता (?) म० के सन्तान-निमित्त चिह्न पुंसत्व है। वृष्टि म० के बिन्दु (शुक्र) है। पृथिवी से गगन तक का भाग म० की नाभि के नीचे का (भाग) है। मेरु के दक्षिण तीन पर्वत म० की दक्षिण भुजा और उत्तर के तीन पर्वत भुजा हैं। प्रातः सन्ध्या का शुक्ल प्रकाश और सायं सन्ध्या का पाटल प्रकाश म० के कौपीन-छादक वस्त्र-खण्ड हैं। समुद्र म० की नाभि है। समुद्र में स्थित, महाप्रलय में जल को सोखने वाला वडवानल म० के जठर का, वस्तुओं को पचाने वाला ऊष्मा है। अन्य जलाशय म० के शरीर में स्थित नाड़ियाँ हैं। उसी प्रकार सभी जलाशय समुद्र में मिलते हैं, जिस प्रकार सभी नाड़ियाँ नाभि में मिलती हैं। इडा गङ्गा, पिङ्गला यमुना और सुषुम्ना सरस्वती है। भूर्लोक के ऊपर भुवर्लोक है, जहां देव, गन्धर्व रहते हैं, और जहाँ से शब्द उत्पन्न होता है वह म० का उदर है। खण्ड प्रलयाग्नि प्रातः की कलेवा को खा-पचा जाने वाली म० की क्षुधा है। खण्ड प्रलय में जलों का नाश म० का जलपान और पिपासा है। भुवर्लोक के ऊपर वर्तमान स्वर्ग लोक, स्वर्ग के पुटों का एक पुट म० का वक्षःस्थल है, वहाँ नित्य सुख, उत्सव और शान्ति हैं। सभी नक्षत्र म० के मणिमुक्ताहार हैं। बिना माँगे दान-धर्म म० का दक्षिण स्तन है। माँगने पर का दान-धर्म म० का वाम स्तन है। सत्त्व, रजस् और तमस् रूप तीन गुणों का साम्य 'प्रकृति' कहा जाता है, वह म० का मन है, क्योंकि कमल भी तीन रूपों (वर्णों) वाला है, श्वेत, रक्त और श्याम। कमल के आकार वाला मन भी तीन वर्णों वाला है। ब्रह्मा मन नाम धारण करते हैं, मन म० की चेष्टा होता है। विष्णु म० की दया और स्नेह हैं। महेश म० के क्रोध (और) घात (प्रहार) हैं। चन्द्र म० के हास और प्रसाद हैं, क्योंकि शोक, दुःख की ऊष्मा

का निवारण करते हैं। वसिष्ठ म० के ज्ञान हैं। वायु म० के प्राण हैं। असाधु कर्म और अधर्म म० का पृष्ठ है। मेरु म० का पृष्ठ दण्ड है। अन्य पर्वत मेरु के दक्षिणोत्तर (में स्थित) म० के पार्श्व भाग हैं। आठ देव, लोकपाल, उनमें इन्द्र, (जो) अत्यन्त समर्थ दाता, वर्षा करने वाले (तथा) अदाता और अवर्षण करने वाले, म० के दोनों हाथ हैं। दक्षिण हस्त दाता और वर्षा करने वाला है, वाम हस्त अदाता और अवर्षुक है। अप्सराएँ म० की हस्तरेखा हैं। धनाधिष्ठाता देवता म० के हाथ की उँगलियाँ हैं। यक्ष म० के नख हैं। तीन देवता लोकपाल म० के दक्षिण हस्त हैं, उनमें अग्नि नामक देव प्रकोष्ठ हैं, यम नामक देव कूर्पर हैं, निर्ऋति नामक देव प्रगण्ड (कोहनी से कंधे तक का भाग) हैं। लोकपाल तीन देवता म० के वाम हस्त हैं, उनमें ईशान वाम हस्त हैं, कुबेर वाम कूर्पर हैं, वायु प्रगण्ड हैं। कल्पवृक्ष म० के दान हैं। दक्षिणोत्तर ध्रुव म० के दक्षिणोत्तर स्कन्ध हैं। कुलाधिष्ठाता पश्चिम दिशा में रहने वाले वरुण म० के ककुत् हैं। स्वर्गलोक के ऊपर विद्यमान महर्लोक म० की ग्रीवा और गल है। अनाहत नाद म० का चक्रवर्ती नाद है। यह महर्लोक के ऊपर विद्यमान जनलोक म० का शोभमान मुख है। जगतों की इच्छा म० का चिबुक है। जगत् में रहने वाले लोग म० के अधरोष्ठ हैं। लज्जा म० का उत्तरोष्ठ है। स्नेह म० के दन्त हैं। सभी लोगों का भक्ष्य म० का भक्ष्य है। सम्पूर्ण जल म० का गलरन्ध्र है। अग्नि म० की जिह्वा है। सरस्वती म० की वाक्शक्ति है। वेद म० के सत्य वचन हैं। सृष्टिकरी माया म० का लीला-रहस्य है। आठ दिशाएँ म० के कान हैं। सुन्दर देवता अश्विनीकुमार म० के नासापुट हैं। गन्ध-तन्मात्रा म० की घ्राणेन्द्रिय है। वायु की गति म० का निश्वसित है। जनलोक और तपोलोक के स्वर्ग के पञ्चम और षष्ठ पुट के प्रकाश से परिपूर्ण अन्तराल, उसका दक्षिण भाग म० का दक्षिण नेत्र, और वाम नेत्र है। मुख्य प्रकाश, (जिसे) अनादि सूर्य कहते हैं वह म० की दृष्टि-शक्ति है। जगत् के अहोरात्र म० के निमेषोन्मेष हैं। सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि म० का सुन्दर कटाक्ष है, क्योंकि स्नेह के अधिष्ठाता मित्र नामक देवता (और) क्रोध के अधिष्ठाता त्वष्टा देव म० की दोनों भवें हैं। जनलोक के ऊपर विद्यमान तपोलोक म० का ललाट है। सभी लोकों के ऊपर विद्यमान सत्य लोक म० का मूर्द्धा है। उपनिषद् म० के ब्रह्मरन्ध्र हैं। महाप्रलय काल के मेघ म० के केश हैं। तृण, लता, गुल्म आदि म० के लोम हैं। जगत् की लक्ष्मी म० का सौन्दर्य है। सूर्य म० का प्रताप (और) स्वच्छता हैं। भूताकाश म० के रोम-कूप हैं। चिदाकाश म० का ऐसे शरीर का आत्मा है।

मनुष्य के शरीर की आकृतियाँ म० का गृह हैं। ज्ञानी लोग म० के सौध-स्थान और रहःस्थान हैं, जैसे दाऊद को आज्ञा दी-- "हे दाऊद, मेरे लिए (घर) तैयार करो।" उसने कहा- "शुद्ध निराश्रय को घर की आवश्यकता क्या है? फिर आज्ञा दी- "तू ही मेरा घर है, तब मेरे अतिरिक्त को दूर कर, हृदय को रिक्त कर।" जिस प्रकार इस महाब्रह्माण्ड में नाना पदार्थ हैं, उसी प्रकार उसकी प्रतिकृति रूप शरीर ब्रह्माण्ड में भी हैं, किन्तु सभी परस्पर सम्बद्ध हैं। जो इस प्रकार महापुरुष का रूप जानता है वह जीवन्मुक्त है। यह उसकी प्रशंसा हमारे 'वेद' में सुनी जाती है- "**सर्वदा परमेश्वर की कृपा से दिये से (जो) सन्तुष्ट है वह जीवन्मुक्त है।**"

दूसरी सर्वमुक्ति है। इसे 'विदेहमुक्ति' कहते हैं, अर्थात् सबका मोक्ष। चित्स्वरूप में लीनता मोक्ष है। यह मुक्ति सभी जीवों की सामान्य होती है। महाप्रलय के समय भूर्लोक, स्वर्ग, नरक के नष्ट हो जाने पर, ब्रह्माण्ड के विलीन होने पर, और ब्रह्मा के दिन के समाप्त होने पर सभी जीव चित्स्वरूप में लीयमान होकर मुक्त होते हैं। हमारे 'वेद' में सुना जाता है- "**परमेश्वर का एक महान् वैकुण्ठ है, जहाँ पहुँचने पर महामुक्ति होती है, न भय, न शोक (होता है)।**" इस श्रुति द्वारा यह मुक्ति ही प्रतिपादित है।

तीसरी मुक्ति सर्वदा मुक्ति है। अर्थात् नित्य मुक्ति। वह जहाँ-जहाँ सञ्चरण करता है, ब्रह्मा के दिन में, रात्रि में, प्रकट जगत् में अथवा गुप्त (जगत्) में, ब्रह्माण्ड के आविर्भूत होने अथवा लीन होने पर, भूत, भविष्यत् अथवा वर्तमान काल में वहाँ-वहाँ मुक्त ही रहता है। जहाँ-जहाँ हमारे 'वेद' में सुना गया है- "नित्य उसके बीच रहता है।" वहाँ भी 'उसके बीच' इस पद से यह ज्ञान रूप स्वर्ग ही कहा गया है। नित्य पद से यह मुक्ति कही गयी है। और, जहाँ-जहाँ रहता है वहाँ-वहाँ ज्ञान-योग में सामर्थ्य रखने वाला और परमेश्वर के प्रसाद वाला रहता है। इन दोनों कण्डिकाओं में ऐसे ही की प्रशंसा कही गयी है- "उन्हें उनका परमेश्वर प्रिय समाचार देता है, अपनी कृपा से पुनः समाचार देता है, वैकुण्ठ का और स्वर्गों का, (उसका) जो स्वर्गों और वैकुण्ठ में रहता है।" क्या वह सब नित्य सम्पत् है अथवा नित्य मुक्ति है? यह निश्चय परमेश्वर के समीप महाफल (के रूप में) रहता है। यह दूसरी कण्डिका फिर समाचार देती है- श्रद्धावान् धार्मिकों का, उस ज्ञान का फल सत्य-ज्ञान की प्राप्ति है। निश्चयपूर्वक ज्ञानियों का सम्यक् फल है, वह क्या वैकुण्ठ है? (वे) वैकुण्ठ में नित्य रहने वाले हैं।

२१. अहोरात्र, ब्रह्मा के गुप्त-प्रकटता रूप का निरूपण

पौराणिकों के मत में, जिब्रील कहे जाने वाले ब्रह्मा के ब्रह्माण्ड-नाश के और परब्रह्म के प्रकट-दिन की समाप्ति के अठारह अब्ज परिमित मनुष्य वर्ष है। एक-एक अब्ज सौ करोड़ का होता हैं यह अर्थ हमारे 'वेद' की दो कण्डिकाओं के अनुसार है, उनमें से एक- "और निश्चय ही ब्रह्मा के निकट एक दिन है।" यहाँ की गणना से हज़ार वर्ष परिमित होता है। दूसरी कण्डिका- "फिर उसके समीप देवता और आत्मा जाते हैं।" आत्मा जिब्रील कहा जाता है। जिब्रील ब्रह्मा। जिस दिन में उसका मान पचास हज़ार वर्ष परिमित है, जिन वर्षों का एक-एक दिन प्रसिद्ध वर्ष परिमित है। हज़ार वर्ष का प्रथम कण्डिका में प्रसङ्ग आया है। इस प्रकार जिब्रील की आयु का परिमाण शतवर्ष परिमित है। उसी प्रकार, प्रकट दिन का परिमाण 'जगत्' पद से अभिधेय ब्रह्माण्ड की समाप्ति का परिमाण है। इनकी गणना करते हैं। यहाँ के लोक की गणना से अठारह अब्ज होते हैं। एक अब्ज हज़ार करोड़ का होता है। न्यून विषमता के बिना अनुसरण करने वाली यह (गणना) है। गण-सिद्ध गणना से अठारह होने का नियम है। इसके लिए गणित की मर्यादा सिद्धों के समक्ष अठारहों में परिच्छिन्न है, क्योंकि अठारह की गणना की मर्यादा नहीं है। इस बीच प्रलय हुए और होंगे। वे खण्ड-प्रलय 'क़यामति सुब्रा' नाम से कहे जाते हैं। जैसे जल-प्रलय, वह्नि-प्रलय अथवा वायु-प्रलय। इस दिन की समाप्ति पर, रात होने पर 'क़यामति कुब्रा' होती है। उसे महाप्रलय कहते हैं। दोनों कण्डिकाओं की यह आज्ञा है। उनमें से एक की यह आज्ञा है- उस दिन पत्तों के बेठन की भाँति गणनाओं का बेठन बनाऊँगा। द्वितीय कण्डिका की यह आज्ञा है- भविष्य में इस पृथिवी की प्रतिनिधि दूसरी पृथिवी प्रकट होगी। महाप्रलय के बाद प्रकट दिन के समान परिमाण वाली गुप्त रात्रि में परिच्छिन्न सब वस्तु शुद्ध चैतन्य में लीन हो जाती है। रात्रि का भी मान यहाँ की वर्ष-गणना से अठारह अब्ज संख्या के वर्ष होते हैं। यह रात्रि का परिमाण है। शुद्ध चैतन्य की सुषुप्ति, सृष्टि से लेकर जगत् के प्रकटीकरण तक विश्रान्त होती है। इस कण्डिका में यह सुषुप्ति व्यक्त है। और उस कण्डिका का यह अर्थ है- हम आपके लिए शीघ्र उस प्रकार का विश्राम करते हैं, हे देवयोनियो और मनुष्य, जब तक दिनों में जगत् प्रकट है, तब तक शुद्ध चैतन्य का जाग्रत् अवस्था रूप स्थान है। खण्ड-प्रलय स्वप्न अवस्था रूप स्थान है। महाप्रलय सुषुप्ति अवस्था रूप स्थान है। जो कि कहा है-

वेद इसके निश्वसित हैं, इसका देखना पञ्चभूत हैं, इसका रहना चराचर है और इसका शयन करना महाप्रलय है।

हे सुहृत्तम, इस निरूपण में जो लिखा है (तथा) सूक्ष्म दृष्टि से अनेक बार निश्चय किया है, वह अपने अनुभव के अनुसार है। और अनुभव इन दोनों कण्डिकाओं के अनुसार ज्ञान (सिद्ध?) है। किसी भी ग्रन्थ में न देखा है और न कहीं से सुना है। यदि यह अर्थ (अनुभव या विचार) अपरिपूर्ण मति वालों को श्रुतिकटु लगे, तब हमारी कोई हानि नहीं है। परमेश्वर जगत् से अवाप्तकाम है।

२२. ब्रह्माण्ड के प्रवाहानन्त्य का निरूपण

निश्चय करने वाले शास्त्रज्ञ लोग, "सत्य स्वरूप की न एक ही यह रात्रि है और न ही एक यह दिन है, किन्तु इस रात्रि की समाप्ति के बाद फिर रात्रि आयेगी। इस प्रकार आनन्त्य है। इसका 'अनादि प्रवाह' नाम कहते हैं। हमारे ज्ञान (ज्ञानी) कवि ने व्यञ्जना से इसे अनन्त प्रवाह कहा है-

"(मेरे) शान्त का और मेरे प्रियतम का अन्त नहीं है, जो वस्तु आदिरहित है वह अन्तवत् भी नहीं होती है।" जो कोई वस्तुजात विशेषतः प्रकट और गुप्त है, पहले दिन में, रात्रि स्थित है, वही बिना न्यूनता और विषमता के दूसरे अहोरात्र में उसी प्रकार आविर्भूत होती है और तिरोभूत होती है। जैसा हमारे 'वेद' में सुना जाता है- "**जिस प्रकार पहले सभी वस्तुओं की सृष्टियों को प्रकट किया है उसी प्रकार उन्हें प्रकट रूप से सृष्ट करेंगे।**" जो सृष्टियाँ नष्ट हो चुकी थीं बाद में ब्रह्माण्ड के और मनु के समाप्त होने पर यथापूर्व स्थित हैं, उसी प्रकार उसी स्वरूप से फिर आविर्भूत होती हैं, सर्वदा ही इसी प्रकार उत्पन्न होती है। जैसा हमारे 'वेद' में सुना जाता है- "**जैसे आप लोग पहले रचे गये थे उसी प्रकार फिर रचूंगा।**" तब तो हमारे परम-सिद्ध की सिद्धत्व-समाप्ति इस प्रकार से सिद्ध न होगी? यहाँ हम कहते हैं- दूसरे दिन भी परमेश्वर द्वारा सत्कृत हमारे परम-सिद्ध के उसी रूप से प्रादुर्भूत होने पर उस दिन परम-सिद्धत्व वहीं समाप्त हो जायेगा। हमारे परम-सिद्ध का यह वाक्य, रात्रि में ईश्वर के दर्शन के लिए ऊपर जाने को लेकर, उस अर्थ में प्रमाण है। उस रात हमारे महासिद्ध ने ऊँटों का प्रवाह (कारवां?) देखा। और वे ऊँट निरन्तर चलते जा रहे हैं। एक-एक के ऊपर

दो-दो मंजूषायें हैं। एक-एक मंजूषा में इस जगत् के समान एक जगत् पड़ा है। एक-एक जगत् में अपने जैसा महासिद्ध है। ब्रह्मा से पूछा- यह क्या है? कहा- हे महासिद्ध, उस समय मैं उत्पन्न हुआ, देखता हूँ कि यह ऊँटों का प्रवाह मंजूषा के साथ चला जा रहा है, किन्तु मैं नहीं जानता हूँ, यह क्या है?" इस 'मजूषा' पद का ब्रह्माण्डों से अभिप्राय है, 'प्रवाह' पद का काल से अभिप्राय है। उसके ऊपर नित्य ब्रह्माण्ड चल रहे हैं। और जो ब्रह्मा ने कहा- "यह नहीं जानता हूँ" उसका यह आशय है- प्रवाह का आदि और अन्त नहीं जानता हूँ।

विष्णु रूप आत्मा की इच्छा से अपने मन को मन्दर बनाकर, संकल्पों और विकल्पों को देव और दैत्य बनाकर, वेद-समुद्र को मथ कर ज्ञान का एक ऐसा रत्न निकाला, जो देवताओं, दैत्यों द्वारा समुद्र का मंथन कर निकाले गये चौदह रत्नों में भी प्राप्त नहीं है। आराधना और परमेश्वर की विज्ञापना जो कि उससे 'समुद्र-सङ्गम' की समाप्ति में सामर्थ्य प्राप्त हुआ। हमारे परम सिद्ध के शक से १०६५ वर्ष बीतने पर ४२ वर्ष में, इस वीतराग की आयु के होने पर, परमेश्वर द्वारा सत्करणीय स्वजनों में श्रेष्ठतम हमारे परम सिद्ध हैं। वे परिवार के प्रतिनिधि-समूह है।

यह 'समुद्रसङ्गम' नाम का ग्रन्थ परिपूर्णता को प्राप्त हुआ।

लेखक और पाठक का शुभ हो। श्रीः। संवत् १७६५ वर्ष में मार्ग शीर्ष वदि सप्तमी, चन्द्र दिन में। श्रीः

(बीकानेर प्रति के अनुसार-)

ग्रन्थ संख्या श्लोक ५०१ सं० १३१४ वर्ष में, मिति कार्तिक सुदि १५ तिथि में, श्री साहिजहानाबाद नगर में यह पुस्तक लिखी गई पंपदनिधान द्वारा। श्रीरस्तु।

मज्म 'उल् बह्रैन/समुद्र-सङ्गमः
(व्याख्या-भाग)

मज्म 'उल् बह्रैन/समुद्र-सङ्गमः
व्याख्या-भाग

क़ुरआन के सूरः कह्फ़ (१८/६०) में दो दरियाओं के मिलने की जगह का, मज्-म-अल्-बह्रैनि / मज्मअल्-बह्रैनि नाम से उल्लेख मिलता है। ऐसा समझा जाता है कि दारा शिकोह ने अपनी पुस्तक का नाम इस उल्लेख से प्रेरित होकर रखा है। क़ुरआन के इस प्रसङ्ग में हज़रत मूसा से जुड़ी एक घटना की चर्चा है। यहाँ हज़रत मूसा और अल-ख़िज़्र का मिलन वर्णित है। कहते हैं कि 'जो प्रज्ञा के दो समुद्रों का मिलन है।'

मूल ग्रन्थ का स्वरूप

म.ब./स०सं. को दारा ने प्रस्तावना-भाग के अतिरिक्त इन बाईस बयानों/निरूपणों में विभक्त किया है :-

१. बयाने अनासिर / भूत-निरूपण
२. बयाने हवास / इन्द्रिय-निरूपण
३. बयाने शुग्ल / ध्यान का निरूपण
४. बयाने सिफ़ाते अल्लाह त'ताला / परमेश्वर-गुणाख्यान
५. बयाने रूह / आत्मा का निरूपण
६. बयाने बादहा / प्राणादि का निरूपण
७. बयाने अवालिमे अरबा' / चार लोकों का निरूपण
८. बयान आवाज़ / शब्द और नाद की व्याख्या
९. बयाने नूर / प्रकाश की व्याख्या
१०. बयाने रूयत / ईश्वर-दर्शन का निरूपण

११. बयान इस्माय अल्लाह त'आला / परमेश्वर के नामों का निरूपण
१२. बयाने नबूव्वत व विलायत / सिद्धत्व-ऋषीश्वरत्व का निरूपण
१३. बयाने बरहमांद / (स.सं. में ब्रह्माण्ड-निरूपण नहीं है)
१४. बयाने जिहात / दिशाओं का निरूपण
१५. बयान आसमानहा / आकाशों का निरूपण
१६. बयान ज़मीन / पृथिवी का निरूपण
१७. बयाने क़िस्मते ज़मीन / पृथिवी के विभागों का निरूपण
१८. बयान आलमे बर्ज़ख़ / प्रेत-लोक का निरूपण
१९. बयाने क़यामत / महाप्रलय का निरूपण
२०. बयाने मुक्त / मुक्ति का निरूपण
२१. बयान रोज़ व शब / दिन और रात्रि का निरूपण
२२. बयाने निहायतीए अदवार / ब्रह्माण्ड के प्रवाहानत्य का निरूपण

इस लघु ग्रन्थ में दारा ने धर्म और दर्शन के सभी क्षेत्रों की चर्चा की है। यहाँ विश्व की उत्पत्ति या सृष्टिशास्त्र, तत्त्वमीमांसा, मानव-जातीय और युगान्त-विज्ञान सम्बन्धी विषयों पर विचार किया गया है। साथ ही इनमें हिन्दू और इस्लाम सम्बन्धी सिद्धान्तों के बीच समानता सूचित की गई है। इसे किसी ने प्रधानतः विभिन्न परिभाषिक शब्दों की व्याख्या में हिन्दू ब्रह्म-विद्या का मुहम्मदीय तसव्वुफ़ के साथ तुलना में लिखित माना है; किसी ने हिन्दू सर्वेश्वरवाद के पारिभाषिक शब्दों और उनके समानार्थी सूफ़ी पदावली पर आधारित ग्रन्थ कहा है; किसी ने हिन्दू सर्वेश्वरवाद और पारसीक तसव्वुफ़ के मध्य निकट सम्बन्ध को दर्शाते हुए ब्राह्मणवाद और मुहम्मदवाद में मेल या सामञ्जस्य स्थापित करने या कराने का प्रयास बताया है।

डॉ० हर्ष नारायण के अनुसार इसमें दारा की, वेदान्त और तसव्वुफ़ दोनों को समन्वित कर एक नयी संश्लिष्ट भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठापना की स्पृहा व्यक्त हुई है। डॉ० रिज़्वी का मानना है कि म.ब. में पञ्च भूत, इन्द्रिय, सृष्टिकर्ता और सृष्टि के सम्बन्ध, परमात्मा और जीवात्मा, मुक्ति आदि विषयों पर बाबा लाल जी के साथ हुए दारा के प्रश्नोत्तर का प्रभाव लक्षित होता है, क्योंकि उस प्रश्नोत्तर के बाद ही दारा ने म.ब. की रचना की थी।

दारा ने हिन्दू मुवह्हिदों (वैदिक एकात्मवादियों) के विचारों तथा पवित्र क़ुरआन, और हदीस के उद्धरणों के साथ और कुछ माननीय सूफ़ियों के विचारों के साथ तुलना की है।

प्रस्तावना

बनामे आंकि०

इस शे'र को हक़ साहब ने हकीम सनाई ग़ज़नवी (मृत्यु ११३१ ई०) की रचना "हदीक़ुल हक़ीकत" से उद्धृत बताया है। उनके अनुसार दारा शिकोह ने भी ऐसी ही एक चतुष्पदी लिखी है, जो अर्थ की दृष्टि से बहुत साम्य रखती है :

यक ज़र्रः नदीदेम ज़ ख़ुर्शीद जुदा
हर क़तरः-ए-आब हस्त अैने दरिया
हक़ रा बचि नाम कस तवानद ख़्वांदन
हर नाम कि हस्त हस्त अज़ इस्माए ख़ुदा

हमने एक ज़र्रे (कण) को भी सूर्य से अलग नहीं देखा है, (और) प्रत्येक जल-कण अपने आप में समुद्र है। सत्य को चाहे जिस नाम से पुकारो, (क्योंकि) प्रत्येक नाम ईश्वर के नामों में से एक है।

और, जामी (१४१४-१४९२ ई०) की भी इसी प्रकार की एक चतुष्पदी है :

गह बादः व जाम रव़्वानेम तुरा
गह दानः व दाम रव़्वानेम तुरा
जुज़ नाम तो बर लोहे जहाँ चीज़े नेस्त
आ बा बकदाम नाम रव़्वानेम तुरा

कभी हम तुम्हें शराब कहते हैं, बाद में प्याला, (और) कभी तुम्हें दाना कहते हैं और तब दाम। पृथ्वी के तल पर तुम्हारे नाम के सिवा कुछ भी नहीं है, अब हम किस नाम से तुम्हें पुकारें?

कुफ्रो इस्लाम०

इसके सम्बन्ध में हक़ साहब ने सूचना दी है कि यह शे'र अबुल फ़ज़्ल का है। अपने ग्रन्थ 'दरबारे अकबरी' में मुहम्मद हुसेन आज़ाद ने लिखा है कि

यह पद्य उस भवन पर उत्कीर्ण है जिसे अकबर (महान्) ने हिन्दुओं और मुसलमानों के सामान्य उपयोग के लिए बनवाया था। यह प्रकरण रामचन्द्र वर्मा द्वारा अनूदित और नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा वि० सं० २०२४ में 'अकबरी दरबार' नाम से प्रकाशित ग्रन्थ के तीसरे खण्ड के पृ० ५३-५५ पर सविस्तर इस भूमिका के साथ अनूदित है-

अकबर ने काश्मीर में एक विशाल भवन बनवाया था और आज्ञा दे दी कि हिन्दू और मुसलमान, जिसका जी चाहे वहाँ जा कर बैठे और ईश्वर का चिन्तन करे। इस पर निम्नलिखित लेख अंकित था जो अबुल फ़ज़्ल का लिखा हुआ था। ज़रा इन शब्दों को देखिए कि किस शुद्ध हृदय से निकले हैं-

इलाही ब हर ख़ानः कि मीनिगरम जोयाए तो अंद व ब हर ज़ुबान कि मीशुनवम गोयाए तो-

कुफ़्रो इस्लाम दर रहश पोयां
वहदहू ला शरीक लह गोयां

अगर मस्जिद स्त ब याद तो ना'रः ए क़ुदूस मीज़नन्द व अगर कलीसा स्त बशौक़ तो नाक़ूस मीनबाजन्द

बैत

अय तीर ग़मत रा दिल उश्शाक़ निशानः
ख़ाक़े ब तो मशग़ूल ब तो ग़ायब अज़ मबानः
गह मो'तकिफ़ दीदम व गह साकिने मस्जिद
या'नी कि तुरा मीतलबम ख़ानः ब ख़ानः

अगर ख़ामाने तुरा ब कुफ़्र व इस्लाम कारे नेस्त ईं हर दो रा दर पर्दः-ए-इस्लाम तो बारे नः

कुफ़्र काफ़िर रा व दीं दीदार रा
ज़र्रः ए बर दी दिले अत्तार रा

ईं ख़ानः ब नियत एतलाफ़ क़ुलूबे मुवह्हिदाने हिन्दोस्तान व ख़ुसूसन् मा'बूद बरस्तान अरसः ए कश्मीर तामीर याफ़्तः

ब फ़र्माने ख़ुदी व तख़्त व अफ़सर चिराग़ आफ़रीनश शाह अकबर निज़ामे एतदाल हफ़्त मा'दन कमाल इम्तिज़ाज चार उन्सुर हर के नज़्रे सिदक़

नेमंद आख्तः ईं ख़ानः रा ख़राब साज़द वायद कि मख़ुस्त मा'बदे ख़ुद रा बयंदाज़द चि अगर नज़र बर दिल अस्त बा हमः साख्तनी अस्त व अगर चश्मे वर आब व गिल अस्त हम बरदाख्तनी

बैत

ख़ुदा बंदा चु दाद कार दारी, मदार कार बर नीस्त नेहादी
तुई बर बर गाह नीस्त आगाह, न पेशे शाह दारी नीयत शाह

लेख का आशय

हे ईश्वर, जिस घर में देखता हूँ, सब तुझको ही ढूंढ़ते हैं और जिसके मुँह से सुनता हूँ, तेरी ही प्रशंसा सुनता हूँ। **मुसलमान और अन्य धर्म वाले यही कहते हैं कि तू एक है और तेरे समान कोई दूसरा नहीं है।** मस्जिद में तुझे ही लोग स्मरण करते हैं और मन्दिर में तेरे लिए ही शंख बजाते हैं, और तेरा उनमें पता ही नहीं है। मैं कभी मन्दिर में जाता हूँ और कभी मस्जिद में। तुझको ही मैं घर-घर ढूँढ़ता हूँ। जो तेरे सच्चे सेवक हैं उनके लिए इस्लाम और ग़ैरइस्लाम से कोई झगड़ा नहीं है। प्रत्येक धर्म उनके अनुयायियों के सन्तोष और समाधान के लिए है। यह भवन उन भारतवासियों में एकता उत्पन्न करने के लिए है जो एक ईश्वर को मानने वाले हैं, और विशेषतः काश्मीर के ईश्वरोपासकों के लिए बनाया गया है। सिंहासन के स्वामी अकबर बादशाह की आज्ञा से, जो चारों तत्त्वों और सातों ग्रहों के योग से एक पूर्ण अस्तित्व के रूप में प्रकट हुआ है, बनाया गया है। जिन दुष्टों की दृष्टि सत्य की ओर नहीं है, वे इस भवन को नष्ट करेंगे। उन्हें उचित है कि वे पहले अपने प्रार्थना-मन्दिर को गिरावें, क्योंकि यदि दृष्टि हृदय की ओर है तो सबके साथ अनुकूलता रखनी चाहिए। और यदि केवल शरीर पर दृष्टि है तो वह इस भवन को गिरा सकता है। हे परमात्मा, जब तूने कार्य करने की आज्ञा दी, तब कार्य का आधार विचार या नीयत पर रखा। तू भीतरी विचारों से परिचित है, और बादशाह को उनके विचारों का फल देता है।

ब्लाकमैन साहब लिखते हैं कि यह भवन आलमगीर के समय में गिर गया था।

दर हमा ऊस्त ०

इस पंक्ति द्वारा दारा न केवल यहाँ परमसत्ता को स्मरण करता है, अपितु उसके स्वरूप के सम्बन्ध में अपनी मान्यता को भी सूचित करता प्रतीत होता है। सूफ़ी दारा के विचार में अल्लाह की सत्ता विश्व में व्याप्त है, जबकि सनातनपंथी इस्लाम में उसकी सत्ता विश्व से सर्वथा भिन्न है। अल्लाह सब में प्रकट है, यह कह कर दारा 'वहदतुल् वुजूद' के सिद्धान्त के प्रति अपना समर्थन व्यक्त करता प्रतीत होता है।

अल्लाह को ध्यान में रख कर विचार करने वाले तीन प्रकार के विचारक वर्ग हुए। प्रथम वे, जिन्होंने अल्लाह के अस्तित्व को जगत् से अलग (विश्वातीत) माना। इन लोगों को 'इजादिया' कहते हैं। इन लोगों का कथन है कि अल्लाह ने सृष्टि को 'शून्य' (कुछ-नहीं) से उत्पन्न किया। दूसरे वर्ग, जिसे 'शुहूदिया' कहते हैं, के अनुसार ईश्वर इस जगत् से परे है, किन्तु उसकी सभी बातें, इसमें किसी दर्पण के भीतर प्रतिबिम्ब की भाँति दीख पड़ती हैं। और 'वुजूदिया' कहलाने वाला तीसरा वर्ग ईश्वर के अतिरिक्त वास्तव में किसी की सत्ता नहीं मानता। केवल एक ईश्वर को मानना, उसके अतिरिक्त किसी को नहीं मानना 'वहदतुल वुजूद' है। इस विचार को भारतीय ब्रह्मवाद के निकट माना जा सकता है।

फिर भी एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद में मौलिक अन्तर है। एक ईश्वर को मानना एकेश्वरवाद है। इस्लाम के अनुसार, अल्लाह से साझेदारी नहीं है। किन्तु अद्वैतवाद में ब्रह्म के अतिरिक्त किसी की सत्ता नहीं है। 'एक' के टुकड़े होंगे, एक और एक मिलकर दो होगा, किन्तु अद्वैत और अद्वैत मिल कर अद्वैत ही होगा।

भारतीय एकात्मवादियों को दारा ने 'मुवह्हिदाने हिन्द' कहा है। उपनिषदों में परमेश्वर को सब जगह ब्याप्त रहने वाला/सर्वव्यापी सब में अन्तर्निविष्ट/सर्वगत कहा गया है। दारा ने जिसे 'सर्वावभास' कहा है यहाँ उसके लिए कहा गया है कि जिसके प्रकाश से यह सब कुछ प्रकाशित

पूर्व पृष्ठ के लेख का अंग्रेज़ी अनुवाद "आईने अकबरी" के अंग्रेजी अनुवाद H. Blochmann कृत, में द्रष्टव्य है।

होता है। वह 'एक' भी है, उस केवल एक के विज्ञात हो जाने से सब कुछ विज्ञात हो जाता है। दारा जिसे कहता है, वह आदि है और वह अन्त है, उसे कालिदास कहते हैं-

जगद्योनिरयोनिस्त्वं अगदन्तो निरन्तकः।
जगदादिरनादिस्त्वं जगदीशो निरीश्वरः।। कुमार २०/९

अर्थात् आप जगत् के कारण हैं, आपका कोई कारण नहीं है, जगत् के संहर्ता हैं, आप अन्त-रहित हैं, जगत् के आदि हैं, स्वयं अनादि (आदिरहित) हैं, जगत् के नियन्ता है, स्वयं आपका कोई नियन्ता नहीं है। श्रुति-वाक्य का प्रमाण भी है- 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' आदि (तैत्ति० ३/१/१)

हमसायः व हमनशीं ०

हक़ साहब इसे फ़ारसी कवि जामी की चतुष्पदी बताते हैं। कहते हैं कि इसे दारा ने अपनी एक अन्य रचना 'हसनातुल आरफ़ीन' में भी उद्धृत किया है।

व दरूदे नामहदूद ०

अल्लाह की स्तुति के बाद दारा ने अपनी पुस्तिका आरम्भ करने के पूर्व, पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहब और उनके वंशजों तथा उनके साथियों के प्रति अनन्त प्रणाम निवेदन किया है। हज़रत मुहम्मद को वह 'पूर्ण अभिव्यक्ति' तथा 'सृष्टि के निर्माण का कारण' कहता है। 'सिर्रे अकबर' के आरम्भ में भी अल्लाह की स्तुति के बाद दारा कहता है- "परमेश्वर अपनी श्रेष्ठतम सृष्टि मुहम्मद, उनकी सन्तान, उनके सम्पूर्ण मित्र-मण्डल का मंगल करें।"

"जीली ने मुहम्मद को ही सर्वश्रेष्ठ पूर्ण-मानव कहा है। सूफ़ियों का कहना है कि मुहम्मद ही परमात्मा की अन्तिम और सम्पूर्ण अभिव्यक्ति हैं। उनके विश्वास के अनुसार इस सृष्टि के बनने से पहले ही मुहम्मद वर्तमान थे और उन्हीं के आलोक से सृष्टि का निर्माण हुआ है। यही 'हक़ीक़तुल मुहम्मदिया' है। यह 'नूरुल मुहम्मदिया' भी कहा जाता है। सूफ़ियों के विश्वास का आधार कई हदीसें हैं। मुहम्मद ने एक जगह कहा है कि 'पहली चीज़ जो परमात्मा ने बनाई वह पैग़म्बर का आलोक है।' एक दूसरी हदीस में कहा गया है कि 'मैं परमात्मा की ज्योति हूँ और मेरी ज्योति से अन्य सभी चीजें हुई हैं।'

एक और हदीस है, जिसमें कहा गया है कि 'जब आदम पानी और मिट्टी के ही बीच थे उस समय मैं पैग़म्बर था।''' (रा०पू० तिवारी, सूफ़ीमत - साधना और साहित्य, पृ० २७५-६)

समुद्रसङ्गम (संस्कृत) में, इसी प्रसंग में ह० मुहम्मद को 'परमेश्वर द्वारा सत्कृत और सम्मानित' कहा गया है। सम्भवतः इस कथन का संकेत 'शबे मेअ्राज' की ओर है। कहते हैं कि यरुशलम से ह० मुहम्मद ने इसी शरीर से सातवें आसमान की यात्रा की थी। वह यात्रा पंख वाले एक घोड़े की पीठ पर बैठकर की गई थी। दारा ने मेअ्राज की चर्चा-आगे भी इसी पुस्तिका में की है।

जहाँ दारा ने म० ब० में अपने को 'फ़क़ीर बेहुज़्न व अन्दोह' कहा है, वहीं स० सं० में, 'वीतराग, विगतशोकसन्दोह' कहा है। इन विशेषणों से उसकी नम्रता, आन्तरिकता व्यक्त होती हैं।

बा'द अज़ दर्याफ़्ते ०

अब दारा निर्माणाधीन पुस्तिका के विषय, प्रयोजन और अधिकारी की चर्चा आरम्भ करता है-

१. पहले तो उसने धर्माचरणपूर्वक हक़ीकतुल हक़ायक (सत्यों के सत्य, तत्त्वों के तत्त्व, परमात्मा का सम्पूर्ण ज्ञान) की जानकारी की।

२. सूफ़ियों से धर्मों के रहस्यों को पता लगाया।

३. इस महान् उपहार से सम्पन्न होकर (स० सं० के अनुसार, भगवान् के / ईश्वर के महाप्रसाद को प्राप्त कर) भारतीय एकेश्वरवादियों के सिद्धान्तों को जानने की लालसा की (सिद्धों, निश्चेताओं, अनादिकुल में उत्पन्न वैदिकों के अभिप्राय का अन्त प्राप्त करूं, उनका अभिप्राय जानूं)।

४. आचार्यों, इस धर्म के पूर्ण तत्त्वज्ञों (जो धार्मिक अभ्यासों, ईश्वर के अवबोध, प्रतिमान और धार्मिक अन्तर्ज्ञान में पूर्णता की उच्चतम पराकाष्ठा को पहुँच चुके थे) के साथ बार-बार सम्पर्क और निरन्तर विचार-विमर्श किया (कुछ परिपूर्ण वैदिकों के साथ, विशेष रूप से बाबा लाल के साथ पुनः पुनः सङ्गतियां और गोष्ठियां कीं)।

५. निष्कर्षतः, दारा ने परिभाषा-भेद (शाब्दिक भेद) के अतिरिक्त कोई भेद (स्वरूप की प्राप्ति में) नहीं पाया।

६. दोनों पक्षों के विचारों को संगृहीत किया और विचार-बिन्दुओं को एक साथ मिलाया (स० सं० के अनुसार, दोनों की एकवाक्यता की)।

७. और तब, जिनका ज्ञान सत्य के जिज्ञासुओं के लिए आवश्यक और उपयोगी है, उन सत्य और प्रज्ञा के संग्रह के रूप में एक पुस्तिका तैयार की।

८. महान् (रहस्यवादियों) ने कहा है- तसव्वुफ़ निष्पक्षता/सम दृष्टि है, तसव्वुफ़ (धार्मिक) दायित्व की स्वच्छता है (महानुभावों का उपदेश है- 'निर्मत्सरतया तत्त्वविवेचनं सकलवेदान्तानां प्रयोजनम्।" स० सं०)।

९. दो प्रकार के लोग हैं, एक न्यायी, ज्ञानी, पता लगाने वाले प्रज्ञावान् लोग, दूसरे मन्द-बुद्धि लोग (दोनों पक्षों के)।

१०. निजी अन्तर्ज्ञान और आस्वाद के अपने इन अनुशीलनों को अपने परिवार के सदस्यों के लाभ के लिए प्रस्तुत किया (अपने अनुभव के अनुसार, तत्त्वार्थ का निर्णय किया और अपने कुटुम्ब जनों के लिए यह आरम्भ किया, स० सं०)।

इस 'भूमिका' में जहां म०ब० में ख्वाजा अहरार की चतुष्पदी को उद्धृत किया गया है वहाँ स०सं० में बाबा लाल जी का श्रद्धापूर्वक उल्लेख है।

इस प्रकार इस पुस्तिका का प्रतिपाद्य विषय है, धर्म के सम्बन्ध में केवल पारिभाषिक शब्दों का भेद, वास्तविक भेद नहीं। प्रयोजन है, ऐसे विषयों के विवेचन द्वारा नाना सम्प्रदायों में फैले भ्रम-जाल का निराकरण। इसके अधिकारी वे अपने कुटुम्ब के लोग हैं, जो न्यायी, विवेकी और जिज्ञासु हैं, वे नहीं, जो मन्द-बुद्धि हैं।

'सिर्रे अकबर' की भूमिका का सार-संक्षेप कुछ इस प्रकार है-

दारा शिकोह ने अपनी काश्मीर की यात्रा के अवसर पर सिद्ध, ज्ञानी गुरु, महात्मा मुल्लाशाह से भेंट की। वह उनका शिष्य हुआ। उसके मन में प्रत्येक सम्प्रदाय को देखने तथा एकेश्वरवाद के उत्तम प्रवचनों को सुनने का चाव भी था। उसने तसव्वुफ़ (सूफ़ीमत) की बहुत सी पुस्तकों का अनुशीलन और निर्माण कर रखा था। एक अथाह समुद्र के जैसे एकत्व/अद्वैत की प्राप्ति के लिए उसके मन की तृष्णा निरन्तर बढ़ती जा रही थी। उसके मन में उठते

जटिल प्रश्नों का समाधान, बिना ईश्वरीय वाणी तथा अनन्त सत्ता सम्बन्धी आप्त वचनों के, सम्भव न था। रहस्य से भरे महान् क़ुरआन के रहस्यों के ज्ञाता प्रायः दुर्लभ हैं, इस कारण उसने चाहा कि सभी आस्था की पुस्तकों का अनुशीलन करे। उसे लगा कि ईश्वरीय वाणी अपनी व्याख्या आप है, यदि एक पुस्तक में संक्षिप्त है तो दूसरी पुस्तक में विशद। वह विस्तृत रूप में उपलब्ध हो सके और उस विस्तर से वह संक्षेप ज्ञात हो जाय।

दारा ने हज़रत मूसा पर उतरी तौरात, हज़रत ईसा पर उतरी इंजील और हज़रत दाऊद पर उतरी ज़बूर- इन आसमानी (अपौरुषेय) किताबों का अध्ययन अनुवादों के माध्यम से किया, किन्तु उनमें अद्वैत का प्रवचन संक्षिप्त और गूढ़ होने से उसे अभीष्ट की प्राप्ति नहीं हुई। तब वह हिन्दुस्तान के अद्वैतवाद की ओर मुड़ा तब उसे क़ुरआन से भी यह विदित था कि कोई जाति ऐसी नहीं है जो निर्ग्रन्थ और निर्दूत हो। दारा को खोज से मालूम हुआ कि हिन्दुस्तान की आसमानी किताबों- चार वेदों का सार उपनिषद् हैं। तब दारा को 'अज्ञात के ज्ञात होने', 'न समझा हुआ' को 'समझा हुआ' होने का एहसास हुआ।

इस प्रकार उसने 'सिर्रे अकबर' के रूप में उपनिषद् ग्रन्थों का फ़ारसी में अनुवाद वाराणसी के पण्डितों की मदद से किया।

इन भूमिकाओं से स्पष्ट हो जाता है कि दारा के मन में धर्म के सत्य को नाना कोणों से जानने की कितनी ललक थी!

म० ब० की प्रस्तावना में जिन ख्वाजा अहरार और स० सं० में जिन बाबा लाल का उल्लेख है उनके बारे में हम आगे यथास्थान विशेष चर्चा करेंगे।

१. भूतों (तत्त्वों) की व्याख्या

'उन्सुर' का बहुवचन 'अनासिर', अर्थात् भूतों या तत्त्वों का समूह। भूतों या तत्त्वों की संख्या पांच है। इस भौतिक शरीर के घटक पांच भूत (तत्त्व) हैं- 'क्षिति-जल-पावक-गगन-समीर'। इसलिए भौतिक शरीर को 'पाञ्चभौतिक' भी कहा जाता है। ज़िन्दगी और मौत की परिभाषा उर्दू के इस प्रसिद्ध शे'र में आकलनीय है-

ज़िन्दगी क्या है ? अनासिर का ज़ुहूरे तर्तीब
मौत क्या है ? इन्हीं अज्ज़ा का परेशां होना

अर्थात् (पञ्च) भूतों या तत्त्वों का यथास्थान जुड़ जाना (प्रकट होना) ज़िन्दगी या जीवन है और इन्हीं तत्त्वों का बिखर जाना मौत या मृत्यु है। ये पांचों 'समवायिकारण' हैं। जिसमें समवाय-सम्बन्ध से कार्य उत्पन्न होता है वह समवायिकारण कहलाता है। जैसे, तन्तुओं में समवाय- सम्बन्ध से पट उत्पन्न होता है। तीन कारण माने गये हैं- समवायिकरण, असमवायिकारण और निमित्त कारण।

आकाश को 'उन्सुरे आज़म' या महातत्त्व कहते हैं और धर्मशास्त्री (अह्ले-शरअ) लोग 'अर्शे अकबर' कहते हैं। द्वितीय बाद (वायु), तृतीय आतिश (अग्नि), चतुर्थ आब (जल) (= अप्) और पञ्चम ख़ाक (पृथ्वी)।

दारा ने यहां सृष्टि-प्रक्रिया की चर्चा आरम्भ की है। सांख्य और वेदान्त में भी सृष्टि की प्रक्रिया बताई गई है। यह युगों से चला आ रहा प्रश्न है कि इस सृष्टि का मूल क्या है ? ऐसा क्या था जिससे इस सृष्टि का आरम्भ हुआ ? ऋग्वेद का नासदीय सूक्त (१०.१२९) इस प्रश्न का यह उत्तर देता है कि जिस समय सृष्टि नहीं थी उस समय न असत् था, न सत् था तब, न अन्तरिक्ष था, न उसके परे जो आकाश। किसने ढँका, कहाँ, किसी शरण। पानी था क्या अथाह, गहरा ? ।।१।। न मृत्यु थी, न अमृत तब, न रात से दिन का प्रकाशक कोई। सांस लेता बिना वायु अपनी शक्ति से वह अकेला उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था।।२।। अंधेरा अंधेरे से छिपा था प्रारम्भ में प्रकाशहीन सलिल ही था यह सब कुछ। शून्य से ढंका जो कुछ भव्य था तप की महिमा से उस एक ने जन्म लिया।।३।। पहले काम ही उसमें वृत्तिमान हुआ वह मन का प्रथम बीज था। सत् का बन्धु असत् में पा गये हृदय के अन्दर खोज कर मनीषा से कविगण।।४।। "किन्तु इतना कहते-कहते ऋषि का हृदय अनिश्चितता से आक्रान्त हो जाता है। उसका जिज्ञासु मन फिर प्रश्न करने लगता है कि सृष्टि का कार्य-जाल जो किरणों की तरह शीघ्र फैला, क्या वह मध्य से शुरू हुआ? अथवा क्या वह नीचे से शुरू हुआ ? सृष्टि का विकास विद्युत्-प्रकाश के समान इतना शीघ्र हुआ कि यह बताना कठिन था कि पहले द्युलोक बना, या अन्तरिक्ष लोक बना या पृथिवी बनी। जब सृष्टि बन गई तब इसमें कुछ इसे धारण करने वाले तत्त्व थे, कुछ इसका भोग करने वाले तत्त्व थे तथा कुछ

आकाशादि भोग्य भी थे। नीचे भोग्य था तथा ऊपर भोक्ता था (५)। सृष्टि का रहस्य ऐसा नहीं जिसको सरलता से तथा निश्चितता से बताया जा सके। इसकी दुर्विज्ञेयता ने वैदिक ऋषि को यह कहने के लिए विवश कर दिया कि इस सृष्टि को कौन सही रूप में जानता है ? देवता भी इस सृष्टि की अपेक्षा अर्वाचीन हैं। तब यह कौन जानता है कि यह कहाँ से उत्पन्न हुई (६)। अन्तिम मन्त्र में ऋषि समाधान रूप में परमेश्वर में ही सृष्टिकर्तृत्व देखता है। यह विविध रूपों वाली सृष्टि जहाँ से आई है, उसको उस परमेश्वर ने ही धारण किया था। अगर उस परमेश्वर ने नहीं धारण किया था तब किसने धारण किया था ? परमेश्वर से भिन्न उसको धारण करने वाला दूसरा कोई सिद्ध नहीं हो सकता। इस सृष्टि का जो परमेश्वर है वह सर्वोच्च लोक में है। वही इस सृष्टि को निश्चित रूप से जानता है और वह नहीं जानता तो कौन जान सकता है ?" (७) (संस्कृत वाङ्मय का बृहत् इतिहास : प्र० खंड, वेद, पृ० २०९-१०)

किन्तु सृष्टि की प्रक्रिया के विषय में दारा का चिन्तन परवर्ती औपनिषिदिक चिन्तन से प्रभावित प्रतीत होता है। वह 'उन्सुरे आज़म' (= महातत्त्व) आकाश, जिसे धार्मिक या धर्मशास्त्री लोग 'अर्शे अकबर' या महासिंहासन कहते हैं, को तीन भागों में विभक्त करता है- भूताकाश, मन आकाश और चिदाकाश। यहाँ केवल 'चिदाकाश' ही दारा के अनुसार सृष्टि का 'मूल कारण' मान्य है, ऐसा कहा जा सकता है।

इस विषय की चर्चा छान्दोग्य उपनिषद की एक आख्यायिका, जो प्रथम अध्याय के आठवें खण्ड में, प्रश्नोत्तर के रूप में है, किन्तु नवम खण्ड में, समाधान के रूप में इस प्रकार प्राप्त होती है :

"अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम्।। (छा० उ० १.९.१)

अर्थात् इस लोक की क्या गति है ? इस पर कहा, 'आकाश', क्योंकि समस्त भूत आकाश से ही उत्पन्न होते हैं, आकाश में ही लय को प्राप्त होते हैं और आकाश ही इनसे बड़ा है, अतः आकाश ही इनका आश्रय है।

शङ्कराचार्य ने यहाँ 'आकाश' से 'पर आत्मा' को माना है। यही 'ब्रह्म' या 'चिदाकाश' है। वैज्ञानिक स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थ 'वेद व

विज्ञान' (पृ० ९४, ९५) में कहा है- 'यह आकाश क्या है ईथर का सूक्ष्म संस्करण है ? आचार्य शङ्कर आदि भाष्यकारों ने आकाश को 'ब्रह्म पर' कह कर छोड़ दिया है।. . . हम फिर कभी देखेंगे कि हमारी श्रुतियों के सिद्धान्त में एक कटा-छँटा ईथर नहीं है- एक ईथरशृङ्खला या माला है, उसी का ऊर्ध्वतम स्तर (ऊपर लिमिट) है चिदाकाश, मध्य का एक स्तर है विज्ञान का ईथर या कठोपनिषद् का वायु एवं निम्नतम स्तर (लोअर लिमिट) में है पृथ्वी आदि मूर्त पदार्थ।"

यहाँ विषय की स्पष्टता की दृष्टि से म० म० गोपीनाथ कविराज का यह कथन उद्धरणीय है- ". .. प्रथम बिन्दु का प्रसार-क्षेत्र ही चिदाकाश है। यही किसी-किसी स्थान पर 'परव्योम' पद से भी कहा जाता है। द्वितीय बिन्दु के प्रसार-क्षेत्र को चिदाकाश कहते हैं। इसके मध्य में खद्योत माला के समान कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड-श्रेणियाँ भासमान रहती हैं। इस द्वितीय मंडल के बाहर गाढ़ अंधकारमय तृतीय मंडल की सत्ता है। यह अखंड तमोमय एवं विभक्त हुए तृतीय बिन्दु के प्रसारण से उत्पन्न होता है। इसको भूताकाश भी कह सकते हैं। इसे ही 'माया' या 'आवरण' भी कहा गया है।" (भारतीय संस्कृति और साधना, प्र० खं० कुण्डलिनी तत्त्व)

रामानन्द त्रिपाठी (दारा के सहयोगी तथा मित्र) ने अपनी पुस्तिका 'विराड्विवरणम्' में चिदाकाश को आत्मा कहा है (७६)। दारा के अनुसार जहाँ भूताकाश सभी भूतों में व्यापक है और चित्ताकाश ब्रह्माण्ड में व्याप्त होता है, वहाँ चिदाकाश सर्वत्र स्थित है। वह नित्य है, अनित्य नहीं, वह अजन्य है, क्योंकि उसके जन्म होने तथा उसके विनाश का न तो वेद में और न ही (उसका जन्यत्व) 'हमारे वेद' (क़ुरआन) में, किसी भी कण्डिका में प्रतिपादित है और साथ ही वह (जन्यत्व) युक्ति या तर्क के संगत (अनुकूल) नहीं है। दारा द्वारा प्रस्तुत सृष्टि-क्रम इस प्रकार है-

चिदाकाश

वायु (दूसरा तत्त्व)

अग्नि (तीसरा तत्त्व)

जल (चतुर्थ)

पृथ्वी (पञ्चम)

यहाँ यह ज्ञातव्य है, कि कहीं श्रुति पहले आकाश के उत्पन्न होने (तैत्तिरीय उप०) और कहीं तेजस् के पहले उत्पन्न होने (छान्दोग्य) का निर्देश करती है तो कहीं प्राण को मुख्य कहती है। इस पर स्वामी प्रत्यगात्मानन्द जी का समाधान है कि 'यह सब शिष्य व साधक की सामर्थ्य के अनुसार उस मूँज में से इषीका (तीली) को बाहर निकालकर दिखाना है। जो जहाँ तक देख पाये। अन्त में ब्रह्म या चिदाकाश ही है।' ('वेद व विज्ञान' पृ० ९५)

शतपथ ब्राह्मण (११.१.६.१) भी कहता है-

"आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास। ता अकामयन्त, कथं नु प्रजायेमहि। तास्तपोऽतप्यन्त। तासु तप्यमानासु हिरण्मयमाण्डं सम्बभूव।"

अर्थात् आपः सलिल के रूप में पहले थीं। उन्होंने कामना की कि प्राणी कैसे उत्पन्न करें। उन्होंने तपस्या की। जब वे तपस्या कर रही थीं तब हिरण्मय अण्ड उत्पन्न हुआ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण (५.५.१.२) के अनुसार, उस हिरण्मय अण्ड में प्रजापति का निवास था। वही प्रजापति 'हिरण्यगर्भ' कहलाये।

मनुस्मृति (१.८-९, १२-१३) के अनुसार, उस परमात्मा ने प्रजाओं की सृष्टि की इच्छा से चिन्तन करके आपः (जलों) की पहले सृष्टि की। तब उन जलों में बीज को आरोपित किया। वह बीज सुवर्णमय अण्ड के रूप में परिणत हुआ। उसमें सभी लोकों के पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

दारा के अनुसार चिदाकाश से जो प्रथम पदार्थ निर्गत हुआ वह था 'इश्क़', जिसे भारतीय एकेश्वरवादियों ने 'माया' कहा है। भारतीय वेदान्त के अनुसार, चिदानन्दमय ब्रह्म के प्रतिबिम्ब (= प्रतिच्छाया) से समन्वित तमोरजःसत्त्वगुणा, जो सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों की साम्यावस्था है वह 'प्रकृति' कहलाती है। वह दो प्रकार की है- विशुद्ध-सत्त्वप्रधाना माया और मलिनसत्त्वप्रधाना अविद्या। माया में प्रतिफलित चिदात्मा जब उसे (माया को) अपने अधीन करके वर्तमान होता है तब सर्वज्ञ, सर्वज्ञत्वादि गुणों से सम्पन्न 'ईश्वर' होता है। और, जब अविद्या में प्रतिबिम्ब रूप से स्थित वही उसके (अविद्या के) परतन्त्र होता है तब जीव होता है (पञ्चदशी १.१५-१७)।

दारा के अनुसार सृष्टि का क्रम इस प्रकार बनता है-

चिदाकाश (नित्य)

इश्क़ (= माया)

रूहेआज़म (= जीवात्मा) (= हक़ीक़तेमुहम्मदी) (= हिरण्यगर्भ)

निकल्सन के प्रमाण पर, सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जीली के विचार इस प्रकार थे- सृष्टि-निर्माण के पूर्व अव्यक्त ईश्वर अपने आप में ही था। सभी तत्त्व उसी में वर्तमान थे। ईश्वर को सृष्टि-निर्माण की जब इच्छा हुई तब उसने "हक़ीक़तुल्-मोहम्मदिया" पर अपनी पूर्ण दृष्टि डाली, जिससे वह गल कर जल हो गया फिर जब ईश्वर ने उस पर ऐश्वर्य-पूर्ण दृष्टि डाली इससे उसमें तरंगें तथा फेन पैदा हुए। फेन से ईश्वर ने सात पृथ्वियाँ तथा उसके निवासी बनाये। उस जल के बाष्प से सात आकाश और प्रत्येक में रहने वाले देवदूतों की सृष्टि की। ईश्वर ने उस जल को सात समुद्रों में परिणत कर दिया जो संसार के चतुर्दिक़ फैले हुए हैं।

निःसंदेह दारा सूफ़ी-मत का अनुगत है। कहते हैं कि सूफ़ी 'अन-अल-हक़ (= 'मैं ही हक़ हूँ') उपनिषद् के 'अहं ब्रह्मास्मि' से मिलता-जुलता है, अतः अनेक विद्वान् मानते हैं कि इस पर भारतीय वेदान्त का प्रभाव है। आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी अपनी पुस्तिका 'तन्त्र और तसव्वुफ़' में लिखते हैं- "आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल (जायसी के पद्मावत की भूमिका में) ने सूफ़ी सन्तों की बानियों के साक्ष्य पर कहीं शाङ्कर अद्वैत वेदान्त का, कहीं विशिष्टाद्वैतवादी वेदान्त का प्रभाव ढूँढ़ निकाला है और सिद्धान्ततः यह निष्कर्ष निकाला है कि इसमें सर्वत्र शाङ्कर अद्वैतवाद से मेल बिठाना सम्भव नहीं है (पृ० २)। त्रिपाठी जी ने म० म० गोपीनाथ कविराज के निष्कर्षों के आधार पर सूफ़ी-मत पर आगम-प्रभाव स्वीकार किया है और इसे लेकर उन्होंने विस्तृत चर्चा की है।

डॉ० त्रिपाठी इस प्रसङ्ग में, सूफ़ियों की इस 'माया' को लेकर प्रश्न करते हैं, माया को आख़िर क्या माना जाय ? क्या वह परमसत्ता की स्वाभाविक शक्ति है या औपाधिक ? शङ्कराचार्य के मत में परमसत्ता पूर्ण है और पूर्ण होने के कारण उसमें किसी प्रकार का अभाव-बोध नहीं, कि वह किसी प्रकार की सृष्टि-रचना में प्रवृत्त हो। जो 'पूर्णकाम' है उसमें अतृप्त इच्छा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः सूफ़ियों का अद्वैत शङ्कराचार्य के

मत में प्रतिपादित अद्वैत से मेल नहीं रखता। अतः आगम-सम्मत अद्वैत के निकट सूफ़ियों के अद्वैत को रखा जा सकता है। आगमसम्मत अद्वैत में 'माया' परमसत्ता की स्वरूप-शक्ति है, न कि आरोपित उपाधि।

दारा ने एक 'हदीस' को उद्धृत किया है- (दाऊद ने जब परमात्मा से पूछा कि उसने सृष्टि क्यों की ? तब उसने कहा - "मैं छिपा हुआ ख़जाना (गुप्त आकर) था. . . (I was a Hidden Treasure therefore was I fain to be known, and so I created creation in order that I should be known) त्रिपाठी जी लिखते हैं कि 'इब्ने अरबी' ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि वह स्वयं सृष्टि के द्वारा स्वयं को जान सके, अपने भीतर प्रसुप्त, अपरिमेय सम्भावनाओं का अपरोक्षीकरण कर सके, आत्मनिहित वैभव का अनुभव कर सके।

"लोग मुझे जाने का आशय है कि लोगों के रूप में मैं स्वयं अपने को जानूँ।"

यहाँ 'अखरावट' (जायसी) की ये पंक्तियाँ उद्धरणीय हैं-

आपुहिं आपु जो देखन चहा। आपनि प्रभुता आपु सो कहा।
सबै जगत दरपन के लेखा। आपुहिं दरपन आपुहिं देखा।
आपुहिं पुहुप फूलि बन फूलै। आपुहिं भँवर बास रस झूलै।
आपुहिं घट घट महँ मुख चाहै। आपुहिं आपन रूप सराहै।

उपनिषदों में कहा गया- "स एकाकी नारमत, स द्वितीयमैच्छत्, एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय।" डॉ० त्रिपाठी जायसी की पंक्तियों की दार्शनिक व्याख्या करते हुए कहते हैं- "गोपन स्थिति में अकेले न रहने के कारण भगवान् ने आत्मप्रकाश के लिए सृष्टि की।"

आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि "यहूदियों के पुराने पैग़म्बर मूसा की उस सृष्टि कथा को ईसाइयों ने भी माना और मुसलमानों ने भी लिया जिसके अनुसार ईश्वर ने छह दिन में आकाश, पृथ्वी, जल और वनस्पतियों और जीवों को अलग-अलग उत्पन्न किया और अन्त में मनुष्य का पुतला बनाकर उसमें अपनी रूह फूँकी। इस्लाम में आकर सृष्टि की इस पौराणिक कथा में दो एक बातों का अन्तर पड़ा। मूसा के ख़ुदा को सृष्टि बनाने में छह दिन लगे थे, पर अल्लाह ने सिर्फ़ 'कुन' कहकर एक क्षण में सारी सृष्टि खड़ी कर दी। ज्योति

की प्रथम उत्पत्ति का उल्लेख मूसा के वर्णन में भी है पर इस्लाम में उस ज्योति का अर्थ 'मुहम्मद का नूर' किया जाता है।" (जायसी कृत 'पद्मावत की भूमिका, पृ० ११४)

तैत्तिरीयोपनिषद् की द्वितीय वल्ली के प्रथम अनुवाक में सृष्टि-क्रम इस प्रकार निर्दिष्ट है- उस आत्मा (परमात्मा) से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी-तत्त्व।

अद्वैत वेदान्त के अनुसर ईश्वर अपनी माया शक्ति से आकाशदि पञ्च महाभूतों की सृष्टि करता है। मायायुक्त होकर ब्रह्म ही ईश्वर कहा जाता है। ईश्वर मायोपाधिक ब्रह्म है और ब्रह्म मायारहित निरुपाधिक ईश्वर है। ब्रह्म का अस्तित्व माया के बिना है, किन्तु ईश्वर का अस्तित्व माया के बिना नहीं हो सकता। ईश्वर में माया की एकमात्र विक्षेप शक्ति रहती है, आवरण शक्ति नहीं। वह सर्वज्ञ, सर्वगुणसम्पन्न है, सर्वशक्तिमान है, सृष्टि का कर्ता, धर्ता और हर्ता है। अतः वह क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश (शिव) कहा जाता है। एक ही मूर्ति तीन भागों में विभक्त हुई (एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा- कालिदास, कुमार०)

'इश्क़' या 'माया' से जिस 'रूहे आज़म' या 'जीवात्मा' की उत्पत्ति हुई वह 'हक़ीक़ते मुहम्मदी' अथवा स० सं० के अनुसार- 'सिद्धानां सिद्धस्य तत्त्वम्' है और उसे ही वैदिक मुनियों ने 'हिरण्यगर्भ' कहा है। 'ऋग्वेद' का प्रसिद्ध 'हिरण्यगर्भ सूक्त' है-

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(ऋ० १०/१२१!१)

अर्थात् "वही हिरण्यगर्भ सबसे आगे उत्पन्न हुए। उत्पन्न होने पर ये समस्त प्राणियों के एक अधिपति हुए। इस पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश को वे धारण करने वाले हैं। यज्ञ-भागों में उन्हीं के प्रसादनार्थ हम लोग हविष्य का होम किया करते हैं।"

व्याप्त्यर्थक 'विष्लृ' धातु से निष्पन्न 'विष्णु' शब्द व्यापक परब्रह्म परमात्मा का वाचक है और समष्टि सूक्ष्म प्रपञ्चाभिमानी 'हिरण्यगर्भ' है। जैसा कि श्रुति कहती है-

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।"

अर्थात् सम्पूर्ण जगत् की जिससे उत्पत्ति होती है, जिसमें स्थिति होती है और जिसमें प्रलय होता है (वही ब्रह्म है)।

दारा ने ह० मुहम्मद को 'पूर्ण आत्मा' कहा है तथा उन्हें म०ब० की भूमिका में, 'पूर्ण अभिव्यक्ति' और 'विश्व की सृष्टि का निमित्त' (कारण) कहा है जबकि स०सं० में 'परम-प्रकाश के प्रकाशक', 'जगत्सृष्टि के निमित्त और परमेश्वर के द्वारा सत्कृत और सम्मानित' कहा है। सूफ़ी मंसूर हल्लाज ने भी कहा है- (६)"दुनिया के अन्दर जितने भी पैग़म्बर (ईश्वरीय दूत) हैं और जितने भी पैग़म्बरी (नूर) प्रकाश हैं सभी उसी पैग़म्बर के (नूर) प्रकाश से प्रकट हुए हैं। उसका प्रकाश ईश्वरीय प्रकाश से प्रकट हुआ । प्रकाश में उससे बढ़कर दूसरा प्रकाश नहीं और प्रथम लोगों में वह सर्व प्रथम था उससे बढ़कर कोई नहीं था। (७) उसकी हिम्मत सब हिम्मतों से आगे है। उसका अस्तित्व नास्ति से आगे हैं और उसका नाम 'कलम' से आगे है इसलिए कि वह समस्त सृष्टि के पहले हैं।" (७) (किताबुत्तवाजीन) यहाँ 'नूर' पर टिप्पणी है: 'यहाँ सम्भवतः प्रकाश (नूर) से तात्पर्य- "आलमे अर्वाह" से है। समस्त आत्माएं (रूहें) वहाँ एकत्र हो गयी थीं और सब अँधेरे में थीं। ख़ुदा ने सब पर रोशनी डाली और सबसे अधिक रोशनी मुहम्मद को मिली। 'कलम'- ख़ुदा ने (आसमानों को पैदा करने के बाद) सबसे पहले कलम पैदा की थी ।

(सूफ़ी हल्लाज की बानी: डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय)

'अल-अमा' परमसत्ता की निःस्पन्दावस्था है। "प्रथम अवस्था में वह परमसत्ता (अल-वुजूदुल मुत्लक़) केवल सत्ता (अज़-ज़ात) मात्र है। उस अवस्था में वह निर्गुण, निरपेक्ष रहती है। वह सम्पूर्ण रूप से अनभिव्यक्त, निर्विशेष और सम्बन्ध-विहीन रहती है। इस अवस्था के दो रूप हैं- (१) अल-अमा, (२) अहदियत। इसमें अल-अमा आभ्यन्तर रूप है और 'अहदियत' बाह्य रूप। 'अल-अमा' से मतलब 'घनान्धकार' से है। होने वाली सृष्टि के बीज मात्र रूप में परमात्मा इस अवस्था में रहता है।" (रा० पू० ति० - सूफ़ी मत सा० और सा०, पृ० २६०)

दारा ने प्राचीनों के आधार पर कहा है कि वायु को दयालु (परमात्मा) का निःश्वसित (नफ़सुर्रहमान) कहते हैं। स० सं० के अनुसार, परमात्मा के

'सुप्तकाल में' (शयन के अवसर पर) वह वायु उत्पन्न हुई, सृष्टि के लिए 'शुद्ध चैतन्य' ने उसका निरोध किया तब वह वायु उष्णता का गुण लिए हुए निकली, अतः उससे तेजस् की उत्पत्ति हुई। म०ब० के अनुसार उसके महान् अस्तित्व में क़ैद होने के कारण वायु से अग्नि (तेजस्) उत्पन्न हुआ। और वही श्वास (वायु) दया और एकता के गुणों से सम्पन्न हुई तब ठंडी हो गई। इस पकार अग्नि से जल की सृष्टि हुई (म०ब०)।

अग्नि द्वारा दूध के जलाने से उसके ऊपर मलाई जम जाती है। उसी प्रकार सूर्य के ताप से जल पर जो मलाई (= शर) जमी वही पृथिवी हुई। बृ० उप० भी कहती है-

"आपो वा अर्कस्तद्यदपां शर आसीत् समहन्यत सा पृथिव्यभवत् ..." (१.२.३)

दारा ने 'क़ियामत' और 'महाप्रलय' इन 'कौराणिक' तथा 'पौराणिक' कल्पनाओं की स्थितियों की तुलना करते हुए विलोम रूप से, पृथ्वी का जल में विलय, जल का अग्नि में विलय, अग्नि का वायु में विलय और वायु का महाकाश या रूहे आज़म में विलय हो जायेगा' यह निर्देश किया है।

पाँच भूतों की चर्चा के प्रसंग में ऊपर जिस 'चिदाकाश' की चर्चा है वह चित्स्वरूप है, किन्तु "अरब और फारस आदि मुसलमानी देशों में भी यूनानियों की भाँति 'आकाश' के सम्बन्ध में धारणा इतनी स्थूल थीं कि इन्होंने उसे भूतों के अन्तर्गत नहीं लिया। जायसी ने भी पांच भूतों के स्थान पर चार ही कहे हैं।

२. इन्द्रिय-निरूपण

पञ्च इन्द्रिय = ज्ञानेन्द्रिय

	इन्द्रिय	विषय	भूत (तत्त्व) - से जुड़ी हुई
१.	शाम्मा = घ्राण	गन्ध	पृथ्वी
२.	जायक़ा = रसना	रस	जल
३.	बासिरा = चक्षुष्	रूप	तेजस् (अग्नि)
४.	सामि'अ = श्रोत्र	शब्द	महाकाश
५.	लामिसः = त्वक्	स्पर्श	वायु

दारा श्रोत्रेन्द्रिय को इस कारण विशेष महत्त्व देता है कि वह उन्सुरे आज़म अर्थात् महाकाश से जुड़ी हुई है और वह भी इसलिए कि 'महाकाश' का सत्य (= हक़ीक़त) 'अह्ले दिल' लोगों (= सिद्धों) को प्रकट होता है। इस प्रसङ्ग में वह ध्यान की चर्चा करता है। यह सूफ़ियों के यहां 'शुग़्ले पासे अनफ़ास' है जो प्राणायाम की विधि का पर्यायवाची है। दारा इसे 'धुन' (या ध्वनि) की संज्ञा देता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि "मुहम्मद बिन क़ासिम के साथ आए हुए कुछ अरब सिंध में रह गए थे। इतिहासों में लिखा है कि वे और उनकी संतति ब्राह्मणों के साथ बहुत मेलजोल से रही। इन अरबों में कुछ सूफ़ी भी थे जिन्होंने हिन्दुओं के अद्वैतवाद का ज्ञान प्राप्त किया और साधना की बातें भी सीखीं। सिंध के अबू अली प्राणायाम की विधि (पासे अनफ़ास) जानते थे।" (जायसी ग्रन्थावली, भूमिका पृ० १०२)।

"इसमें (पासे अनफ़ास में) साधक अपने हृदय का चित्र मन में ले आता है। छाती की बायीं ओर उसके स्थित होने की वह कल्पना करता है और यह भी कल्पना करता है कि चमकते हुए अरबी अक्षरों में उस पर 'अल्लाह' शब्द लिखा हुआ है। वह यह भी विश्वास बनाए हुए रहता है कि जब वह भीतर साँस खींचता है तब उससे 'अल्लाह' शब्द उच्चरित होता है और साँस छोड़ता है तो 'हू' शब्द उच्चरित होता है। यह 'हू' शब्द 'अल्लाहहू' का अन्तिम अंश है। वास्तव में साधक शौक़ (आह्लाद) की स्थिति में पहुँच जाते हैं और पूर्ण 'अल्लाहहू' के स्थान पर एक केवल 'हू' शब्द का जप मुख से करते हैं।"

पाँच आभ्यन्तर इन्द्रिय

१. मुस्तरक (सामान्य)

२. मुतख़य्यला (काल्पनिक) Imaginary

३. मुतफ़क्किर (चिन्तनशील) Contemplative

४. हाफ़िजा (धारणशील)

५. वाहिमा (कल्पनात्मक) Fancying

भारतीयों के अनुसार चार आभ्यन्तर इन्द्रिय हैं- १. बुद्धि, २. मनस्, ३. अहङ्कार और ४. चित्त। इनका समुदाय अन्तःकरण है।

'वेदान्त परिभाषा' (धर्मराजाध्वरीन्द्र) में अन्तःकरण के चार भेद माने हैं- मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त। इनके विषय हैं- संशय, निश्चय, अभिमान और स्मरण। वेदान्त के अनुसार, पांच सूक्ष्म भूतों से ज्ञान शक्ति के भेद से ज्ञानेन्द्रिय उत्पन्न होती हैं, जैसे आकाश से ज्ञानेन्द्रिय श्रोत्र, वायु से (ज्ञानेन्द्रिय) त्वचा, तेज से चक्षु, जल से रसना और पृथिवी से घ्राण। मन पांच सूक्ष्म भूतों का परिणाम माना जाता है। जिस भूत से जिस ज्ञानेन्द्रिय की उत्पत्ति हुई है वह इन्द्रिय उसी भूत के गुण को ग्रहण करती है, जैसे श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण ये पांचों ज्ञानेन्द्रिय क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध को ग्रहण करती हैं। चक्षु और त्वक् इन्द्रिय उस गुण के आश्रय को भी ग्रहण कर लेती हैं।

दारा शिकोह के अनुसार अन्तःकरण (= पञ्चम इन्द्रिय) चार हैं-

१. बुद्धि = अक़्ल। यह शुभ की ओर प्रवृत्त रहती है और अशुभ से निवृत्त रहती है।

२. मन = दिल। सङ्कल्प (= निश्चय) और विकल्प (= संशय) की इन दो प्रकार की शक्तियों वाला है।

३. चित् = चित्त। यह मन का, दिल का दूत है। यह दौड़ लगाता है। सत् और असत् के बीच के विवेक की क्षमता नहीं रखता।

४. अहङ्कार- (क) 'स्वयं करने वाला मैं हूं' इस प्रतीति का साक्षी है और (ख) परमात्मा के गुणों में से एक है, क्योंकि जो 'माया' को रखता है, जिसे 'इश्क़' कहा है।

इसके तीन भाग हैं-

१. सात्त्विक। यह ज्ञान स्वरूप है अतः उत्तम है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।' सब में व्याप्त। वही आदि और अन्त है। वही भीतर और वही बाहर है।

२. राजस। मध्यम अर्थात् बीच की भूमि है। जब कोई साधक कहता है- "मेरा मन शरीर और भूतों की सीमा से स्वतन्त्र हो चुका है, शारीरिकता मुझसे सम्बन्ध नहीं रखती।"

३. तामस। अधम। निम्न भूमि अविद्या। वह हज़रते वजूद (= शुद्ध ब्रह्म) का उपासक है।

वेदान्त के अनुसार तामस अहङ्कार या निम्न भूमि अविद्या से परिच्छिन्न (दूसरे शब्द में अविद्योपाधिक) शुद्ध चैतन्य जब व्यक्तिपरक हो जाता है तब वह अपने विषय में मूढ़ता, अज्ञान और प्रमाद का आरोप कर लेता है। फलतः वह 'मैं' और 'तू' की एकता से सर्वथा दूर हो जाता है। आत्मा और परमात्मा (जीव और ईश्वर) दोनों के बीच दूरी (अनैक्य, भेद) बढ़ जाती है। दारा ने पवित्र क़ुरआन के एक उद्धरण से वेदान्त के इस पक्ष को समन्वित करने का प्रयास किया है। अल्लाह ता'ला ने मुहम्मद (सल्ल०) से फ़र्माया कि लोगों से तुम कहो कि तुम्हारी ही तरह मैं भी एक मनुष्य हूँ, अर्थात् जो अल्लाह ता'ला से तुम्हारा भेद है वही मेरा भी है।

यहां दारा ने वसिष्ठ (एक मुनि) के पक्ष से वेदान्त के विचार को इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

जब शुद्ध चैतन्य ने अपने को ज्यों ही परिच्छिन्न करने की इच्छा की त्यों ही वह परमात्मा बन गया। और तब उससे अधिक परिच्छिन्न हुआ तब अहङ्कार रूप हुआ। इसी प्रकार उसकी परिच्छन्नता क्रमशः बढ़ती गई और वह महत्तत्त्व या 'अक़्ले कुल' (पूर्ण बुद्धि) हुआ। फिर सङ्कल्पमय मन बना और मन से ज्ञानेन्द्रिय उत्पन्न हुईं। और तब अङ्ग और शरीर बने। इन्हीं अंग और शरीर के समुदाय को 'बदन' कहते हैं।

परम आत्मा (सत्ता), जिसे "अबुल अर्वाह" कहा जाता है, अपनी इच्छा से परिच्छिन्नताओं को आरोपित कर लेता है और जिस प्रकार रेशम का कीड़ा अपनी ही लार से बने तन्तुओं से अपने को बाँध लेता है उसी प्रकार परमात्मा ने अपने द्वारा उत्पादित अपनी ही काल्पनिक सीमा में अपने को परिसीमित कर दिया। उपनिषद् में 'रेशम के कीड़े' के स्थान पर ऊर्णनाभि (= मकड़ी) की उपमा दी गई है (यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च, मुण्डक ११.७)। वृक्ष के उदाहरण में 'तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्' की उपनिषद्-सम्बन्धी (वैदान्तिक) कल्पना निर्दिष्ट है।

३. ध्यान-निरूपण

'ध्यै' (चिन्तायां) धातु से 'ध्यान' शब्द निष्पन्न है। ध्यान अर्थात् चिन्तन। फ़ारसी में इसे 'शुग़्ल' या 'शग़्ल' कहते हैं। कोष के अनुसार इसका अर्थ है काम में लगना, मस्रूफ़ियत, बहुवचन 'अशग़ाल'। भारतीय ध्यान-साधना में

'अजपा' को सबसे उत्कृष्ट ध्यान या जप माना जाता है। 'अजपा' वह मन्त्र है जिसे उच्चारण न किया जाय। "वह जप जिसके मूल-मन्त्र 'हंसः' का उच्चारण श्वास-प्रश्वास के गमनागमन मात्र से होता जाय।" पवित्र क़ुरआन से यह तथ्य व्यक्त हुआ है। "और कोई चीज़ नहीं, जो उसकी प्रशंसा के साथ 'तस्बीह' न करती हो, परन्तु तुम उसकी 'तस्बीह' को समझते नहीं हो।" 'तस्बीह' अर्थात् अल्लाह की महानता का वर्णन। "तस्बीह का धात्वर्थ है चेहरे के बल बिछ जाना। यहीं से वह शब्द तैरने के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा और यहीं से दौड़-धूप के अर्थ में भी इसका प्रयोग हुआ है। 'नमाज़' को भी 'तस्बीह' का नाम दिया गया है, इसलिए कि 'नमाज़' में बन्दा अल्लाह के आगे सज्दे में चेहरे के बल बिछ जाता है और उसकी महानता का वर्णन करता है। पवित्र क़ुरआन से मालूम होता है कि संसार की समस्त वस्तुयें 'तस्बीह' करती हैं। अर्थात् संसार में जो भी चीज़ें हैं सब अल्लाह की महानता की साक्षी हैं, और उसके हुक्म और उसकी बड़ाई के आगे बिछी हुई हैं।

शेख़ मुस्लिहुद्दीन सा'दी शीराज़ी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'गुलिस्तान' की भूमिका के आरम्भ में कहा है : ". . . . हर सांस जो कि नीचे जाती है वह जीवन की सहायक है और जब ऊपर जाती है वह जीवन की पोषक है। अतः हर साँस में उसकी दो कृपाएं विद्यमान हैं। और, हर कृपा के लिए धन्यवाद उचित है।"

यहां, म० ब० के मूल (फ़ारसी) में 'ऊ' 'मन' का अर्थ 'ओम नम' किया गया है जबकि स०सं० 'सः अहम्' (= सोऽहम्) का निर्देश है।

'अजपा' को और स्पष्ट समझने के लिए म०म० गोपीनाथ कविराज की पुस्तक 'तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि' (पृ० ३४१) का यह उद्धरण आकलनीय है' "प्राण का स्वाभाविक अर्थ ही उच्चार है।. . . इस प्राणात्मक उच्चार से एक अव्यक्त ध्वनि निरन्तर स्फुरित होती रहती है। इसको अनाहत नाद कहते हैं। यह प्राणिमात्र के हृदय में स्वाभाविक रूप से सर्वदा ही चलता रहता है- इसका कोई कर्ता नहीं है एवं कोई इसे रोकने वाला नहीं है। अविभक्त रूप से सब वर्ण इसमें विद्यमान रहते हैं- यह वर्णोत्पत्ति का निमित्त है, इसीलिए यह भी वर्णपदवाच्य है।

"अनाहत नाद के मुख्य अभिव्यक्ति-स्थान दो बीज हैं : एक सृष्टि-बीज 'स' कार और दूसरा संहारबीज 'ह' कार। इन बीजों का आश्रय करके ही नाद

अभिव्यक्त होता है। योगी लोग जानते हैं कि प्राण के आदि मूल का संधान करने पर चिदाकाश का प्रथम स्पन्दन ही दृष्टिपथ पर पड़ता है। चिदाकाश का स्पन्दन भी वस्तुतः स्वतः सिद्ध नहीं है- वह परम पुरुष और परमा प्रकृति की योगावस्था से उद्भूत है। बिन्दु युक्त 'ह' कार (हं) परम पुरुष का और विसर्ग युक्त 'स' कार (सः) परमा प्रकृति का वाचक है। दोनों की युक्तावस्था ही हंसः का रूप है, जिसे निःस्पन्द और स्पन्द तत्त्व का सन्धि-स्थान माना जा सकता है। इस आदि प्राण को ही संवित् का प्रथम परिणाम कहते हैं- यही सृष्टि के सब तत्त्वों को धारण करने वाली शक्ति है। हम लोगों के शरीर के श्वास-प्रश्वास का खेल इस हंस रूपी प्राण का ही व्यापार है। हंकार से बहिर्मुख गति अथवा अनन्त की ओर गति होती है एवं सः कार से अन्तःप्रवेश अथवा देह में प्रत्यावर्तन सूचित होता है। इस गमनागन का नियामक आपाततः त्रिगुणस्थ ईश्वर और मूल में कुलाकुल में अवस्थित परमहंस है। यही अजपा मन्त्र है, जिसका जप प्रत्येक मनुष्य अहोरात्र में २१६०० बार करता रहता है।" (कविराज जी के ग्रन्थ भारतीय संस्कृति और साधना, प्र० खं० में संकलित 'अजपा रहस्य' शीर्षक लेख भी द्रष्टव्य है)

दारा की ध्यान-विधि के सम्बन्ध में, डॉ० का० रं० कानूनगो महाशय लिखते हैं- "उसका (दारा का) पक्ष यह है कि बहुत ही मन्द गति से मन ही मन में 'अल्ला' नाम का जप किया जाये- जिह्वा की कोई गति न हो। इस विधि का विधान मियाँ मीर ने अपने कुछ कृपा-पात्र शिष्यों के लिए किया था। वह 'सुल्तान-उल्-अज़कार' की बहुत प्रशंसा करता है और उसको विहित बताता है। श्वास पर अधिकार द्वारा चित्त-शक्ति का निरोध करने की यह विधि सर्वशः वही विधि है जो हिन्दुओं के प्राणायाम की है। अन्तर केवल यह है कि हिन्दु योगी सीधा बैठता है और सूफ़ी प्राणायाम के समय अपनी दोनों कुहनियों को घुटनों पर टेक कर आगे की ओर झुक जाता है।" (पृ० ५५)

३. परमेश्वर का गुणाख्यान

परमसत्ता के गुणों की चर्चा का प्रसङ्ग अपने आप में गम्भीर है, क्योंकि यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि परमसत्ता के गुण उससे अभिन्न कैसे हो सकते हैं ? यदि माना जाए कि वह (परम सत्ता) पहले तो निर्विशेष है,

बाद में सविशेष है तो वह परिवर्तनशील हो जाएगी, उसकी एकरूपता नहीं रह जायेगी।

यदि वह मूलतः सविशेष है तो उसके और उसके गुणों के सम्बन्ध का प्रश्न उठ खड़ा होगा। तादात्म्य है या दोनों में भेद है ? एक ओर जहाँ परमात्मा के 'ज़ात' और 'सिफ़त' अलग मानने वाले हैं तो दूसरी ओर मुतज़िला सिद्धान्त वाले परमात्मा में किसी 'सिफ़त' या गुण का आरोप मानने को तैयार नहीं । एक दूसरे पक्ष के अनुसार, 'ज़ात' और 'सिफ़त' में एकता और अनेकता के बावजूद अभेद है। समुद्र एक है उसकी तरगें अनेक।

यहां दारा इन दार्शनिक गुत्थियों में न उलझ कर परमेश्वर के दो गुणों- जलाल और जमाल की, भारतीय सिद्धान्त के अनुसार परमेश्वर के तीन गुणों, सत्त्व, रज और तप की तुलना करता है।

इस प्रकरण की दो बातें उल्लेखनीय हैं- एक तो परमेश्वर के दो गुणों, सूफ़ी मतानुसार जमाल और जलाल को भारतीय मतानुसार, त्रिगुण-वाद के साथ समन्वय। दूसरे, जिब्री'ल आदि का ब्रह्मा आदि के साथ तुलना। सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण हैं, जिनसे परमेश्वर जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। सूफ़ी लोग 'जमाल' के गुण से ही सृष्टि और पालन मानते हैं।

भारतीय मतानुसार व्यापक परब्रह्म परमात्मा से जगत् की उत्पत्ति होती है उसमें स्थिति और उसमें प्रलय होता है। कार्योत्पत्ति के लिए प्रकाशात्मक सत्त्व, चलनात्मक रजस् और अवष्टम्भात्मक तमस् की अपेक्षा होती है। उन-उन गुणों की प्रधानता से ब्रह्म ही रजस् के सम्बन्ध से ब्रह्मा, तमस् के सम्बन्ध से रुद्र (महेश) और सत्त्व के सम्बन्ध से विष्णु बन जाता है। उत्पादिनी शक्ति विशिष्ट ब्रह्म ब्रह्मा, संहारिणी शक्ति विशिष्ट ब्रह्म रुद्र और पालिनी शक्ति विशिष्ट ब्रह्म विष्णु कहलाता है।

कालिदास भी कहते हैं- "एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा०" (कुमार-सं० ७.४४)। अर्थात् एक ही मूर्ति तीन भागों में विभक्त है। यह भेद औपाधिक है न कि वास्तविक। भारतीय कला में, 'त्रिमूर्ति' के पीछे दार्शनिक चिन्तन के रहस्यमय संकेत की चर्चा डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने 'भारतीय कला का अनुशीलन' नामक एक निबन्ध में की है- "प्रणव से लेकर त्रैगुण्य तक के विराट् भावों की अभिव्यक्ति के लिए कला ने 'त्रिमूर्ति' यह छोटा-सा इंगित बनाया और वह सबके लिए सन्तोषप्रद हुआ। तत्त्वज्ञान के आंगन में खड़े

होकर जब हम 'एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा' का उच्चारण करते हैं तब कला में विरचित त्रिमूर्ति की प्रतिमा उस अनुभव को प्रत्यक्ष दिखा कर हमें अपूर्व सन्तोष प्रदान करती है।''

ब्रह्मा = जिब्रील

विष्णु = मीकाईल

महेश = इस्राफ़ील

जिब्रील- कहते हैं कि यह इबरानी (Hebrew) भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है ''अल्लाह का बन्दा''। जिब्रील अल्लाह के एक प्रमुख फ़िरिश्ते का नाम है जिन्हें क़ुरआन में 'रूह' भी कहा गया है। हज़रत जिब्रील का विशेष कार्य यह रहा है कि वे अल्लाह का आदेश और उसका कलाम नबियों तक पहुँचाते थे।

मीकाईल- यह अल्लाह के एक प्रसिद्ध 'फ़िरिश्ते' का नाम है। आप जगत् के विभिन्न कामों पर नियुक्त 'फ़िरिश्तों' में से एक हैं। आप अल्लाह की ओर से वर्षा का प्रबन्ध करने और सृष्टि, जीव आदि को रोज़ी पहुँचाने के काम पर नियुक्त हैं।

इस्राफ़ील- कहते हैं कि ये सभी देवदूतों (फ़िरश्तों) में शक्तिशाली हैं और सबसे अधिक अल्लाह के निकट हैं। ये ही क़यामत में सूर (तुरही) फूकेंगे।

दारा ने जिब्रील को सृष्टि का (अधीक्षक) देवता मीकाईल को स्थिति का और इस्राफ़ील को संहार का देवता कहा है। इनमें जल, वायु और अग्नि को क्रमशः जिब्री'ल, इस्राफ़ील और मीकाईल से सम्बन्धित देवता माना है। साथ ही सरस्वती रजोगुण ब्रह्मा से, पार्वती तमोगुण महेश से और लक्ष्मी सत्त्व गुण विष्णु से जुड़ती हैं, ऐसा माना है।

दारा ने परमेश्वर के स्वरूप को स्पष्ट नहीं किया और उसके गुणों, 'जलाल' और 'जमाल' उससे भिन्न हैं अथवा अभिन्न, यह बात भी यहां स्पष्ट नहीं हुई। परम सत्ता के स्वरूप को लेकर सूफ़ियों में ऐकमत्य नहीं है। डॉ० त्रिपाठी लिखते हैं कि ''तसव्वुफ़ के अनुसार चरम सत्ता को लेकर तीन प्रस्थान प्रचलित हैं- इजादिया, वुजूदिया और शुहूदिया। इजादिया मानते हैं कि चरम सत्ता का अस्तित्व जगत् से सर्वथा परे है और जगत् की उत्पत्ति शून्य से

हुई है- दोनों में कोई साम्य नहीं है। यह शुद्ध एकेश्वरवादी पक्ष है और सनातनपंथी इस्लाम का पक्षधर है। वुजूदिया दूसरी अति पर हैं जो मानते हैं कि चरम सत्ता और जीव जगत् परस्पर एकात्म हैं, और तत्त्वतः एक ही सत्ता है। इन्हें 'हमा वूस्त' का पक्षधर कहा जाता है, अर्थात् वही सब कुछ है। शुहूदिया समन्वयशील है। वह मानता है कि जीव, जगत् चरम सत्य से भिन्न नहीं हैं, पर उसकी सृष्टि है जो परिमेय और परिच्छिन्न होने के कारण 'वह' से भिन्न है।. . . वास्तव में परवर्ती प्रस्थान परमसत्तागत सम्भावित विशेषताओं के 'ज़ात' समकक्षीय समुत्थापन से हुए। उन्हें इतना उठाया गया कि उनकी प्रतिष्ठा 'ज़ात' समकक्ष हो गई। इन गुणों का उद्भव या प्रकाश 'अहदियत' के स्तर पर आकर हुआ है। ज़िली के अनुयायियों ने 'जलाल' और 'जमाल' को मूलसत्ता के समकक्ष उठा दिया। (तन्त्र और तसव्वुफ़, पृ० ७, ९)

५. रूह या आत्मा का निरूपण

दारा ने इस प्रकरण में रूह और अबुल अर्वाह को तथा आत्मा और परमात्मा को लगभग एक ही अर्थ में प्रस्तुत किया है, जबकि सूफ़ियों तथा भारतीय चिन्तकों की दृष्टि में इनमें भिन्नता लक्षित होती है। आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को लेकर भारतीय परम्परा में जो विचार हुआ है उससे सूफ़ी विचारधारा में अन्तर क्या है, यह जानने की आवश्यकता है। सूफ़ी लोग दो भेद करते हैं नफ़्स और रूह। नफ़्स से कुप्रवृत्तियाँ उपजती हैं, जबकि रूह से सत्प्रवृत्तियाँ। इन दोनों का संघर्ष निरन्तर चलता रहता है। सूफ़ी लोग मानते हैं कि परमात्मा ही आत्मा या रूह को शरीर में भेजता है। 'कश्फ़ुल महजूब' (पृ० ३०९) के एक उद्धरण के अनुसार, एक सूफ़ी साधक उमर बिन-उस्मान अल-मक्की (मृत्यु सन् ९०९ ई० के लगभग) लिखते हैं- "शरीर के निर्माण के सात हज़ार साल पहले परमात्मा ने क़ल्ब अथवा दिल की सृष्टि की और उसे अपने निकट रख छोड़ा। क़ल्ब अथवा दिल के निर्माण के सात हज़ार वर्ष पहले परमात्मा ने रूह अथवा जान की सृष्टि की और उसे परमात्मा का साहचर्य (उन्स) प्राप्त हुआ और रूह के भी सात हज़ार वर्ष पहले उसने सिर्र (अन्तःकरण) का निर्माण किया और उसे वस्ल (एकमेक) की स्थिति प्राप्त हुई और अन्तःकरण पर प्रत्येक दिन तीन सौ साठ बार अपने सौन्दर्य का रहस्य प्रकट होने दिया और उस पर तीन सौ साठ बार दया-दृष्टि फेरी और रूह अथवा जान को प्रेम-तत्त्व से परिचित कराया तथा क़ल्ब पर तीन सौ

साठ बार साहचर्य के भेद प्रकट किये।. . . इसके बाद परमात्मा ने सिर्र को रूह में, रूह को क़ल्ब में और क़ल्ब को शरीर में बंद कर दिया। इसके बाद उनके साथ अक़्ल का भी मेल कर दिया और पैग़म्बरों को भेजा तथा आदेश दिये और तब उनमें से प्रत्येक अपनी प्रारम्भिक अवस्था को प्राप्त करने की चेष्टा में लगा। परमात्मा ने उन्हें प्रार्थना करने का आदेश दिया। इनमें शरीर तो प्रार्थना में निरत हुआ और दिल प्रेम का अधिकारी बना। रूह को उसका सान्निध्य प्राप्त हुआ और अन्तःकरण को उसके साथ एकत्व प्राप्त करने में ही शान्ति का अनुभव हुआ।" (राम पूजन तिवारी, सूफ़ीमत-साधना और साहित्य, पृ० २८१-२)

इस विचार से स्पष्ट होता है कि रूह परमात्मा द्वारा सृष्ट तत्त्व है। भले ही वह, किसी के मत में अपार्थिव हो, किसी (जैसे हुज्वीरी के मत में) एक सूक्ष्म द्रव्य-विशेष हो। हुज्वीरी मानता है कि रूह परमात्मा द्वारा निर्मित है। परमात्मा शरीर और रूह को मिलाने वाला है। ये दोनों अलग-अलग दो पदार्थ हैं जो परमात्मा द्वारा निर्मित हैं। शरीर का निर्माण जब हो जाता है तब परमात्मा उसमें रूह फूंक देता है। (वही, रा० पू० ति०, सूफ़ीमत - सा० और सा०, पृ० २८५)

भारतीय मतानुसार, जैसा कि मुण्डकोपनिषद् का कहना है, आत्मा "नित्य, विभु, सर्वगत, सूक्ष्म, भूत मात्र के उद्गम का मूल और केवल ज्ञानियों द्वारा दृश्य" है। यहाँ आत्मा-परमात्मा जैसा कोई मौलिक भेद नहीं है। 'पदमावत' की भूमिका (पृ० १००) में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने पैग़म्बरी एकेश्वरवाद (मोनोथेइज्म) और अद्वैतवाद (मोनिज्म) के सिद्धान्त-भेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है : "एकेश्वरवाद स्थूल देववाद है और अद्वैतवाद सूक्ष्म आत्मवाद या ब्रह्मवाद। बहुत से देवी-देवताओं को मानना और सबके दादा एक बड़े देवता (ईश्वर) को मानना एक ही बात है। एकेश्वरवाद भी देववाद ही है। भावना में कोई अन्तर नहीं है। पर अद्वैतवाद गूढ़ दार्शनिक चिन्तन का फल है, सूक्ष्म अनतर्दृष्टि द्वारा प्राप्त तत्त्व है।. . . एकेश्वरवाद का मतलब है कि एक सर्वशक्तिमान् सबसे बड़ा देवता है जो सृष्टि की रचना, पालन और नाश करता है। अद्वैतवाद का मतलब है कि दृश्य जगत् की तह में, उसका आधार स्वरूप एक ही अखंड नित्य तत्त्व है और वही सत्य है। उससे स्वतंत्र और कोई अलग जन्मा नहीं है और न आत्मा परमात्मा का कोई भेद है।"

श्री विष्णुकान्त शास्त्री ईशावास्योपनिषद् के ऊपर 'कर्म और ज्ञान' नाम से प्रकाशित अपने व्याख्यान में इन दोनों का मौलिक अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- "एक ईश्वर को मानना एकेश्वरवाद है।. . . एक ईश्वर को मानने वाले ये लोग जीवों को, प्रकृति को भी मानते हैं। ईश्वर एक है और सबसे अलग, सबका शासक स्वामी है।. . . किन्तु अद्वैतवाद में ब्रह्म के अतिरिक्त कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। अर्थात् अन्य किसी की सत्ता नहीं है।" (पृ० २६)

६. प्राणादि का निरूपण

इस प्रकरण में कोई विशेष बात नहीं कही गई है। शरीर में सञ्चरणशील वायु तत्त्व पांच स्थानों में रहता है। उसके स्थानों के आधार पर उसके पांच नाम हैं- प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान-

"हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।
उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः।।"

७. जगच्चतुष्टय का निरूपण

दारा शिकोह ने अपनी पुस्तिका 'रिसालए हक़नुमा' में भी चार जगत् की चर्चा की है। यहां भारतीय सिद्धों के अनुसार निर्दिष्ट चार अवस्थाओं से उनकी तुलना की गई है-

जगत् (लोक)	अवस्था (या आत्मा की चार दशाएं)
१. आलमे नासूत (भौतिक जगत्)	जाग्रत्
२. आलमे मलकूत या आलमे अर्वाह (चित् जगत् / आत्मजगत् / देवलोक)	स्वप्न
३. आलमे जबरूत (उच्चतम लोक / आनन्दमय जगत्)	सुषुप्ति
४. आलमे लाहूत (ब्रह्मलोक/सत्यजगत्)	तुरीया

कुछ लोग आलमे मिसाल को पञ्चम जगत् कहते हैं, जब कि कुछ लोग इसे मलकूत में अन्तर्भूत करते हैं।

पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, इसका (निर्दिष्ट जगत् का) कुछ स्पष्टीकरण दाराशिकोह के इस विवरण से होता है-

"दृश्य जगत् में जो नाना रूप दिखाई पड़ते हैं वे तो अनित्य हैं पर उन रूपों की जो भावनाएं होती हैं वे अनित्य नहीं हैं। वे भावचित्र नित्य हैं। उसी भावचित्र जगत् (आलमे मिसाल) से हम आत्मजगत् को जान सकते हैं जिसे 'आलमे ग़ैब' और 'आलमे ख्वाब' भी कहते हैं। आँख मूँदने पर जो रूप दिखाई पड़ता है वही उस रूप की आत्मा या सारसत्ता है। अतः यह स्पष्ट है कि मनुष्य की आत्मा उन्हीं रूपों की है जो रूप बाहर दिखाई पड़ते हैं, भेद इतना ही है कि अपनी सारसत्ता में स्थित पिंड या शरीर से मुक्त होते हैं। सारांश यह कि आत्मा और बाह्य रूपों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब सम्बन्ध है। स्वप्न अवस्था में आत्मा का यही सूक्ष्म रूप दिखाई पड़ता है जिसमें आँख, कान, नाक आदि सबकी वृत्तियाँ रहती हैं पर स्थूल रूप में नहीं रहते।" (जायसी ग्रंथा०, भूमिका पृ० १०२-३ पर उद्धृत)

दारा के इस विवरण पर शुक्ल जी अपनी टिप्पणी में लिखते हैं- "इस विवरण से यह आभास मिलता है कि सूफ़ियों के अनुसार 'ज्ञान' या 'प्रत्यय' तो है आत्मा और जिस पर विविध ज्ञान या भावचित्र अंकित होते हैं वह है 'क़ल्ब' या हृदय। ऊपर जो चार जगत् कहे गये हैं उन पर ध्यान देने से प्रथम को छोड़ शेष तीन जगत् हमारे यहां के 'सच्चिदानन्द' के विश्लेषण प्रतीत होंगे। सूफ़ियों के अनुसार, 'सत्' ही चरम पारमार्थिक सत्ता है। वह सत्य या ब्रह्म चित् या आत्मजगत् से भी परे हैं। हमारे यहाँ बहुत से वेदान्ती भी आत्मस्वरूप को परमात्मा कहते हुए भी चिद् रूप कहना ठीक नहीं समझते। उनका कहना है कि आत्मा के सान्निध्य से जड़ बुद्धि में उत्पन्न धर्म ही चित् अर्थात् ज्ञान कहलाता है। अतः बुद्धि के इस धर्म का आरोप आत्मा या ब्रह्म पर उचित नहीं। ब्रह्म को निर्गुण और अज्ञेय ही कहना चाहिए।" (वही, पृ० १०३)

माण्डूक्य उपनिषद् में जीव की (आत्मा की) चार अवस्थाओं का निरूपण मिलता है, जैसे-

जीव/आत्मा		ईश्वर
परमात्मा का माया में प्रथम आविर्भाव	प्राज्ञ	सर्वज्ञ (अग्नि)
(स्थूलता आने पर-)	तैजस	हिरण्यगर्भ (वायु)
(और अधिक स्थूलता आने पर-)	विश्व	वैश्वानर (सोम)

शरीर नित्य चार अवस्थाओं में अनुभव में आने की शक्ति रखता है। वे हैं- जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया। परोक्ष सत्ता में भी ये चार अवस्थाएं हैं।

१. **जाग्रत्** (अवस्था) में मन बाहरी वस्तुओं को ग्रहण करता है और बुद्धि तद्रूप हो जाती है। अतः जाग्रत् अवस्था बहिःप्रज्ञ है।

२. **स्वप्न** (अवस्था) अन्तःप्रज्ञ है। जाग्रत् अवस्था के समान ही यहाँ भी तत्त्वों की स्थिति होती है। वहाँ ज्ञानेन्द्रिय मन, बुद्धि, अहङ्कार हैं तो वे सब यहाँ भी हैं। किन्तु स्वप्नावस्था में बाहर कोई पदार्थ नहीं होता, न ही बाहर के पदार्थों के साथ इन्द्रियों का सम्बन्ध ही रहता है, न आवागमन के विभिन्न मार्ग ही वहाँ होते हैं। उस अवस्था में मन पुरीतत् नाड़ी में प्रविष्ट होकर समस्त पदार्थों की, उनके इन्द्रिय सम्बन्धों की तथा आवागमन के विभिन्न मार्गों की सृष्टि करता है। स्वप्न केवल संस्कार रूप नहीं, अपितु अविद्या, काम और कर्म की सामग्री से समुद्भूत हमारा एक अलग जगत् है। उस अवस्था में जीवात्मा तैजस रूप में और परमात्मा हिरण्यगर्भ रूप में अवस्थित रहता है।

३. **सुषुप्ति** अवस्था में प्राज्ञ आत्मा का ही विकास है। जीवात्मा इस अवस्था में परब्रह्म में लीन हो जाता है। यहां केवल आनन्द का उपभोग होता है। व्यावहारिक जगत् की सारी उपाधियाँ यहां निरस्त हो जाती हैं। यह गहन निद्रा की स्थिति है। इस स्थिति में मन, बुद्धि, अहङ्कार के निलीन अवस्था में रहने पर चित्त ही अपने स्वरूप में अवस्थित रहता हुआ आनन्द के अनुभव का साक्षी बनता है। इस अवस्था में जीव भी सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता आदि कहा या माना जाता है, क्योंकि वह परब्रह्म से वहाँ एकाकार हो गया है।

४. **तुरीय** अवस्था प्रपञ्च से अतीत अद्वैत स्थिति है, वहाँ 'आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानम्', अर्थात् वह आत्मा ही आत्मा के द्वारा परमात्मा में पूर्णतया प्रविष्ट हो जाता है। दारा ने इसे 'लाहूत' से अभिन्न कहा है और इसे शुद्ध चैतन्य का स्वरूप माना है।

सय्यदुत्ता'यफ़ उस्ताद अबुल कासिम जुनैद बग़दादी :

ये बग़दाद के एक प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त थे। इनकी मृत्यु ९१० ई० में हुई थी। ये सूफ़ी धर्म में एक समन्वयवादी विचारधारा के पोषक थे। इनके विचारों से सम्बद्ध पुस्तकें तथा बहुत से पत्र प्राप्त हैं। इनके अनुयायियों की संख्या

बहुत थी। इनके जीवन और सिद्धान्तों पर अंग्रेज़ी में "लाइफ़ एण्ड टाइम ऑफ़ अज जुनैद" पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। ले० अब्दुल क़ादिर, लन्दन १९६१ ई० (यह सूचना डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय द्वारा प्रकाशित "मंसूर हल्लाज की बानी" की भूमिका, पृ० १४ से प्राप्त हुई है)।

म०ब० के सम्पादक तथा अनुवादक हक़ महाशय ने जामी के 'नफ़हात' को भी (पृ० ८१) देखने के लिए प्रेरित किया है और साथ ही सूचित किया है कि दारा ने जुनैद के उद्धृत वक्तव्य को 'बहुत महत्त्वपूर्ण' माना है तथा उसने अपनी तीन पुस्तकों- रिसालः-ए-हक़नुमा, हसनातुल आरफ़ीन और सकीनतुल औलिया में भी पूरा उद्धृत किया है।

शेख़ उल इस्लाम :

हक़ महाशय की सूचना के अनुसार, इनका जन्म १००६ ई० में हुआ। इन्होंने कई सूफ़ी पुस्तकें लिखीं, किन्तु इनकी स्थिति अत्यन्त प्रसिद्ध 'मुनाजात' पर निर्भर है। सूफ़ियों के जीवन और सिद्धान्त पर इनके व्याख्यान, जो एक पुस्तक 'तबक़ाते अब्दुल्लाह अन्सारी' में संगृहीत हैं, जामी की 'नफ़हात' के मूल स्रोत हैं। इनकी मृत्यु १०८८ ई० में हुई।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने मंसूर हल्लाज का मन्तव्य उद्धृत करते हुए जो टिप्पणी की है (वही, पृ० १०७) वह इस प्रसङ्ग में भी उद्धरणीय है- "हल्लाज ने ईश्वरत्व और मनुष्यत्व में कुछ भेद रखा है। वह 'ब्रह्मैव भवति' तक नहीं पहुँचता है। साधना द्वारा ईश्वर की प्राप्ति हो जाने पर भी, ईश्वर की सत्ता में लीन हो जाने पर भी, कुछ विशिष्टता बनी रहती है। ईश्वरत्व (लाहूत) मनुष्यत्व (नासूत) में वैसे ही ओतप्रोत हो जाता है, बिल्कुल एक नहीं हो जाता- जैसे शराब में पानी। इसी से ईश्वरदशाप्राप्त मनुष्य कहने लगता है 'अन्- अल्-हक़'- मैं ही ईश्वर हूँ। ईश्वरत्व का इस प्रकार मनुष्यत्व में ओतप्रोत हो जाना- हल हो जाना- 'हुलूल' कहलाता है। इस हुलूल में अवतारवाद की झलक है, इससे मुल्लाओं ने इसका घोर विरोध किया। जो कुछ हो, हल्लाज ने यह प्रतिपादित किया कि अद्वैत परम सत्ता में भी भेद-विधान है, उसमें भी विशिष्टता है, जैसा कि रामानुजाचार्य जी ने किया था।

"इब्न अरबी ने 'लाहूत' और 'नासूत' की यह व्याख्या की है कि दोनों एक ही परमसत्ता के दो पक्ष हैं। लाहूत नासूत हो सकता है और नासूत लाहूत।

इस प्रकार उसने ईश्वर और जीव, दोनों के परे ब्रह्म को रखा और वेदान्तियों के उस भेद पर आ पहुँचा जो वे ब्रह्म और ईश्वर अर्थात् निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म में करते हैं। वेदान्त में भी एक ही ब्रह्म शुद्ध सत्त्व में प्रतिबिम्बित होने पर ईश्वर और अशुद्ध सत्त्व में प्रतिबिम्बित होने पर जीव कहलाता है।"

मौलाना (जलालुद्दीन) रूम :

सूफ़ी कवियों में इनकी समता कोई प्राप्त नहीं कर सका। इनकी 'मसनवी' पहलवी भाषा में 'क़ुरआन' है। इनका जन्म १२०७ ई० में हुआ और निधन १२७३ ई० में हो गया। मसनवी में अध्यात्म पक्ष और काव्य पक्ष, दोनों प्रबल हैं। "सुकरात ने ठीक ही कहा था कि जब परमेश्वर को धरती के जीवों से बातचीत करनी होती है तो वह कवियों की वाणी द्वारा बोलता है। वह अपना अलौकिक सन्देश कवि के दिव्य शब्दों में देता है। सुकरात की यह उक्ति विश्व के कुछ ही कवियों पर चरितार्थ होती है- उन कुछ कवियों में मौलाना रूम का स्थान भी है।"

अवतरण- कुछ सूफ़ी साधना के स्तर पर, नासूत से लाहूत के स्तर पर क्रमशः आरोहण की बात करते हैं तो साथ ही अवरोहण के स्तर पर आने की स्थिति स्वीकार करते हैं। आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी 'तन्त्र और तसव्वुफ़' में (पृ० ३३) लिखते हैं- 'वुजूदिया' मानते हैं कि 'सत्ता' के अवरोहण का अर्थ है सीमाओं में आत्म प्रकाश। 'सत्ता' सम्भावनाओं से आपूरित है, वैसे ही जैसे बीज वृक्षात्मक सम्भावना से। जैसे बीज में वृक्ष सम्भावना के रूप में निहित है, वैसे ही 'सत्ता' में विश्व भी। 'ज़ात' में 'शुयुनात' सम्भावना के रूप में निहित है। अवरोहण क्रम में कुल छह स्तर हैं। प्रथम स्तर आत्मलीन स्तर है, वहां कुछ भी व्यक्त नहीं है।. . . इस स्तर को 'अहदियत' का स्तर कहते हैं। दूसरा स्तर है 'वाहिदियत' का।... इसे 'हक़ीक़ते मुहम्मदिया' भी कहते हैं। यही वह दर्पण है जिसमें परमसत्ता अपना वैभव देखती है।. . . तीसरा स्तर है 'आलमे जबरूत' अर्थात् आत्माओं का संसार। चौथा आलमे मिसाल या 'आलमे मलकूत'। पाँचवा है 'आलमे शहादत' अर्थात् भौतिक संसार और छठा है 'इन्सानुल कामिल' (पूर्ण मानव)। इसमें सभी नाम-गुण समाहित हैं। हक़ीक़ते मुहम्मदिया आदम में पूर्ण रूप में प्रकाशित है। इस प्रकार अवरोहण में ये कुल छह स्तर हैं, जिनमें पांच व्यक्त हैं।"

(अवरोहण के सन्दर्भ में दारा द्वारा निर्दिष्ट 'अवतरण' की बात उपर्युक्त चर्चा से किस सीमा तक सम्बद्ध है इसका पूर्व निर्धारण अपेक्षित है।)

८. शब्द की व्याख्या

'कुन' = एक शब्दन क्रिया

सृष्टि के आरम्भ को लेकर विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों में ऐकमत्य नहीं है। "यहूदियों के पुराने पैग़म्बर ह० मूसा की उस सृष्टि-कथा को ईसाइयों ने भी माना और मुसलमानों ने भी लिया जिसके अनुसार ईश्वर ने छह दिन में आकाश, पृथ्वी, जल तथा वनस्पतियों और जीवों को अलग-अलग उत्पन्न किया और अन्त में मनुष्य का पुतला बनाकर उसमें अपनी रूह फूँकी। इस्लाम में आकर सृष्टि की इस पौराणिक कथा में दो-एक बातों का अन्तर पड़ा। ह० मूसा के ख़ुदा को सृष्टि बनाने में छह दिन लगे थे, पर अल्लाह ने सिर्फ़ 'कुन' कहकर एक क्षण में सारी सृष्टि खड़ी कर दी।

सनातन पंथी इस्लाम मानता है कि सर्वथा समर्थ अल्लाह ने 'कुन' कहा- 'ता' कहा और न-कुछ (Not being) से सृष्टि एक क्षण में तैयार।

"सूफ़ियों का अध्यात्म उतने से ही सन्तुष्ट नहीं है। जिली की दृष्टि में अल्लाह के अतिरिक्त जो कुछ है वह सृष्टि है और सृष्टि नित्य नहीं, उत्पन्न है। कारण जिस 'कुन' से सृष्टि हुई वह शब्दन क्रिया है और क्रिया तो उत्पाद-विनाशशील है, अतः उसका परिणाम भी वैसा ही होगा।" (तन्त्र और तसव्वुफ़, पृ० ११)

'समुद्रसङ्म' में 'कुन' को 'प्रणव' का पर्याय कहा गया है। योग-दर्शन में 'प्रणव' को (= ॐकार को) ईश्वर का वाचक माना गया है- 'तस्य वाचकः प्रणवः।' छान्दोग्य उपनिषद् में ॐकार को 'उद्गीथ' कहा गया है, साथ ही वह 'रसों का रस' है- 'स एष रसानां रसतमो य उद्गीथः।' परब्रह्म का वाचक होने से ॐकार उससे अभिन्न है। परब्रह्म विश्व में व्याप्त है। अतः उसका वाचक ॐकार ही सब कुछ है, क्योंकि शब्द और अर्थ का अभेद सम्बन्ध माना गया है। अभेद-सम्बन्ध से यहाँ तात्पर्य तादात्म्य-सम्बन्ध है।

'अ', 'उ' 'म्' और नाद ॐ शब्द में चार मात्राएं हैं। ॐकार या प्रणव के वाच्य आत्मा की भी चार अवस्थाएं हैं- जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। नाद आत्मा की तुरीय अवस्था का परिचायक है।

सरस्वती (= वाक्)

वैदिक सृष्टि-प्रक्रिया में तीन पुरुषों- क्षर, अक्षर और अव्यय का प्रतिपादन हुआ है। उनमें अव्यय पुरुष की कलाओं में 'वाक्' नामक कला को ही शब्द-दर्शन में मुख्य स्फोट माना गया है। वह संसार के समस्त शब्दार्थों को उत्पन्न करती है। इसके अनन्तर क्षर पुरुष की कला के रूप में जिस अन्य 'वाक्' शक्ति का निरूपण हुआ है, वह व्याकरण-सिद्धान्त में व्यावहारिक स्फोट मानी जाती है। अव्यय की वाक् रूप कला का श्रुतियों में भी पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है-

वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे वाचं गन्धर्वाः पशवो मनुष्याः।
वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता सा नो हवं जुषतामिन्द्र पात्री।।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण)

अर्थात् सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, पशु और मनुष्य वाणी का उपजीवन करते हैं, उसके आधार पर रहते हैं। ये समस्त भुवन वाणी पर ही स्थित हैं।

९. नूर (प्रकाश) का निरूपण

'नूर' के तीन प्रकार हैं- पहला, जलाल (= प्रताप), दूसरा, जमाल (सौन्दर्य) और तीसरा वह नूर, जो सभी प्रकार के गुणों से अ-संस्पृष्ट होता है। वह (तीसरा) सत्त्व गुण का प्रकाश है। वह पवित्र मनुष्यों में ही प्रकट होता है। यह 'नूरे ज़ात' है। 'अल्लाह जिसे देता है वही उसे प्राप्त करता है।' उपनिषद् भी यही कहती है :-

''यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।'' (कठ० १.२.२३)

ज्योति

''उपनिषदों में ब्रह्म को 'ज्योतिःस्वरूप', 'तमस् से परे' तथा 'उसी के प्रकाश से अन्य सब प्रकाशित होता है' ऐसा कहा गया है ('ज्योतिरव्ययः'। श्वे० ३/२, 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।' श्वे० ३/८, 'तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः।' मु० उ० २/२/१)। वह ब्रह्म रूप 'सत्' तत्त्व का प्रथम लक्षण प्रकाश मानता है, अर्थात् स्वयम्प्रकाश होना भी परम तत्त्व का अपरिहार्य पक्ष बनता है। उसी के प्रकाश से विश्व प्रकाशमान है और वह

स्वयम्प्रकाश ही है। प्रकाश होने का अर्थ है ज्ञान- स्वरूप होना, अर्थात् स्वयम्प्रकाश होना, अर्थात् अन्य किसी प्रकाश द्वारा प्रकाशित न होना। यहाँ प्रकाश का अर्थ जड़ आलोक नहीं, अर्थात् अग्नि या तेजस् का गुण रूप प्रकाश नहीं, केवल ज्ञानरूपता की अभिव्यक्ति के लिए आलोक या प्रकाश की समता को लेकर ही प्रकाश, ज्योति आदि शब्दों का प्रयोग ब्रह्म के स्वरूप प्रतिपादन में किया गया है, स्थूल ज्योति वहाँ अभिप्रेत नहीं।

यद् वै प्रजापते परमस्ति वागेव तत्

(शतपथ ५/११/२८)

अर्थात् वाक् तत्त्व उतना ही व्यापक है जितना कि ब्रह्म।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि आर्ष वाङ्मय में वाक् को सर्वव्यापक तत्त्व माना गया है। (दर्शन अनुचिन्तन, म०म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पृ० ५८-९)

भर्तृहरि ने समग्र प्रत्यय तथा समस्त ज्ञान के शब्द से अनुविद्ध होने के महत्त्व तथा अर्थवत्ता पर बल दिया है-

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।

(भर्तृहरि ने) "कहा है कि जिसे चेतना (संज्ञा) कहा जाता है वह वाग्रूपता का तत्त्व है। सभी प्राणियों में चैतन्य इससे परे नहीं जाता है अर्थात् वाग्रूपता के तत्त्व से यह कभी भी भिन्न नहीं होता है। अतएव जब भर्तृहरि ब्रह्म को शब्द तत्त्व कहता है तो वह सूचित करता है कि यह चैतन्य है"। (भर्तृहरि, के०ए० सुब्रह्मण्य अय्यर, पृ० ११२-३)

"आगे जब श्रुति में सृष्टि का विवरण हुआ, वहाँ भी आत्म-स्वरूप परा वाक् से शब्द घन रूप आकाश की ही सर्वप्रथम उत्पत्ति बतलाई गई- तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः।. . . आगम शास्त्र में बिन्दु से व्यापक नाद की प्रथम उत्पत्ति कही गई है।. . . वह शब्द ब्रह्म या नाद ब्रह्म ही व्यावहारिक स्फोट है। परा वाक् को तो केवल योगावस्था में ही जाना जा सकता है।. . . इसके बाद अव्यय पुरुष के अक्षर और क्षर में वाक् का अवतरण हुआ है। (दर्शन अनुचिन्तन, पृ० ५९-६०)

आहत और अनाहत नाद

"कुण्डलिनी जब उद्बुद्ध होकर ऊपर को उठती है तो उससे स्फोट होता है जिसे नाद कहते हैं। नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश का व्यक्त रूप है महाबिन्दु।. . . यह जो नाद और बिन्दु हैं वह असल में अखिल ब्रह्माण्ड व्याप्त अनाहत नाद या अनहद नाद का व्यक्ति में व्यक्त रूप हैं अर्थात् जो नाद अनाहत भाव से सारे विश्व में व्याप्त है उसी का प्रकाश जब व्यक्ति में होता है तो उसे नाद और बिन्दु कहते हैं।. . . और कुण्डलिनी जाग उठती है तो प्राण स्थिर होकर शून्य पथ से निरन्तर उस अनाहत ध्वनि या अनाहत नाद को सुनने लगता है। ऐसा करने से मन विशुद्ध और स्थिर होता है और उसकी स्थिरता के साथ ही साथ यह ध्वनि अधिक नहीं सुनाई देती, क्योंकि चिदात्मक आत्मा उस समय अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है और बाह्य प्रकृति से उसका कोई सरोकार नहीं होता। यह नाद मूलतः एक होकर भी औपाधिक सम्बन्ध के कारण अर्थात् भिन्न उपाधियों से युक्त होने के कारण सात स्तरों में विभक्त है। शास्त्र में जिसे प्रणव या ॐकार कहते हैं वही उपाधि-रहित शब्द-तत्त्व है।" (ह०प्र० द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ७२, ७३)

सूफ़ियों में परम तत्त्व को लेकर नाना मत-भेद हैं। उसे कोई प्रत्यय एक (Thought), अतएव कूटस्थ सत्ता मानते हैं तो कोई उसे इच्छा शक्ति (Will) रूप मानते हैं, किसी के अनुसार वह सौन्दर्यमय है (यह विश्व दर्पण है जिसमें वह अपना सौन्दर्य देखता है), कोई यह मानता है कि "परमसत्ता ज्योतिःस्वरूप है। वह शीशे में प्रकाशित प्रकाश की भाँति है जो गवाक्ष में प्रतिष्ठापित है।"

दारा ने इस प्रकरण के आरम्भ में 'नूर' के तीन प्रकारों की चर्चा की, और कहा कि "वह जलाल-गुण या तमोगुण से संस्पृष्ट होकर प्रकट होता है तो सूर्य रूप, सुवर्ण रूप या अग्नि रूप होता है और 'जमाल' अर्थात् सत्त्व गुण से संस्पृष्ट होकर प्रकट होता है तो चन्द्र रूप, रजत रूप या जल रूप होता है, किन्तु जब वह गुणों से असंस्पृष्ट स्वप्रकाश रूप होता है तब उस प्रकाश को वही जानता है जिसे वह जनाता है।"

कठोपनिषद् (१.२.२३) भी कहती है :

''नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।।''

गोस्वामी तुलसीदास जी भी इसी बात को इन सरल शब्दों में प्रस्तुत करते हैं :

सोइ जानै जेहि देहु जनाई
जानत तुम्हहिं तुम्हहि होइ जाई।

दारा ने यहाँ पवित्र क़ुरआन को उद्धृत करके इसी बात की पुष्टि की है।

''अल्लाह तआला आकाशों और धरती का प्रकाश है।''

"अर्थात् अल्लाह ही वह महान् ज्योति है जिसकी अन्धकारहीन आभा से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित है। जगत् में जो कुछ है उसी से आच्छादित है। सम्पूर्ण जगत् में उसी की छवि व्याप्त हो रही है। जगत् में सब कुछ उसी से व्याप्त है। वह सर्वव्यापी है। वही है जो सब प्राणियों में कल्याण होकर बसता है। वही विश्व-चेतना का स्रोत है।" (क़ुरआन : २४.३५ पर टिप्पणी)

('फ़क़ीर' दारा ने पवित्र क़ुरआन से इस आयत को उद्धृत करके जो इसमें निहित तात्पर्य को बड़ी नम्रता के साथ स्पष्ट करने का प्रयास किया है, यह उस राजकुमार की सहज प्रतिभा का द्योतक प्रतीत होता है।)

१०. ईश्वर का दर्शन (रूयत)

सबसे पहले, दारा ने ईश्वर-दर्शन को भारतीय एकेश्वरवादियों के शब्द में, 'साक्षात्कार' कहा है और उसका अर्थ किया है, सिर में लगी आंखों (चर्म-चक्षुओं) से देखना। दारा को यह पूर्णतया विश्वास है कि ईश्वर के दर्शन को लेकर, चाहे पैग़म्बरों अथवा सिद्ध पुरुषों द्वारा, इहलोक या परलोक, बाह्य अथवा आभ्यन्तर दृष्टि से सन्देह का अथवा विवाद का विषय नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि इस विषय में, सभी धर्मों/मजहबों के 'अह्ले किताब', सिद्ध पुरुष और महात्मा लोग एक सामान्य विश्वास रखते हैं। दारा ने यहाँ, क़ुरआन, वेद, पुराने तथा नये टेस्टामेण्ट में विश्वास रखने वालों का भी उल्लेख किया है। दारा ने यहाँ तक कह डाला है कि "अब (ऐसी स्थिति में) जो ईश्वर के दर्शन को लेकर विश्वास नहीं करता वह अपनी जाति का विचारहीन और दृष्टिहीन सदस्य है।" अपने इस निर्णय के पीछे दारा जिस युक्ति का निर्देश

करता है वह यह है कि यदि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है तो वह स्वयं को प्रकट करने की शक्ति (सामर्थ्य) क्यों नहीं रखेगा ?

परम्परावादी सुन्नी लोगों का विचार क़ुरआन की इन आयतों (७५:२२-३) पर आधारित है : "कितने चेहरे उस दिन खिले हुये होंगे, अपने 'रब' की ओर देख रहे होंगे।" इस प्रकार उनकी धारणा है कि केवल इस जीवन के बाद, परलोक में, केवल विश्वास रखने वालों को ही ईश्वर दिखाई देगा, इस जीवन, इह-लोक में नहीं। किन्तु दारा समझता है कि जो ईश्वर को यहाँ, इस संसार में नहीं देख सकता, परलोक में उसे देखना उसके लिए मुश्किल होगा, जैसा कि उसने (अल्लाह ने) पवित्र क़ुरआन में कहा है-

"और जो यहाँ अंधा (बना) रहा 'आख़िरत' में भी वह अंधा ही रहेगा।" (१७:७२)

किन्तु मोतज़िला लोग यह नहीं मानते कि क़यामत के दिन भौतिक चक्षुओं से परमात्मा के दर्शन होंगे। ये लोग यह भी कहते हैं कि "मनुष्य के कर्म उसके स्वच्छन्द निर्णय पर आधारित हैं। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक वासिल बिन अता (मृत्यु ७४८-९ ई०) थे। वे हसन बसरी के शिष्य थे, किन्तु बाद में उन्होंने अपने गुरु का परित्याग कर अपने मत का प्रचार बड़ी तत्परता से किया। 'क़दर' के सिद्धान्तों ने शीघ्र ही 'मोतज़िला' आन्दोलन का रूप धारण कर लिया।. . . मोतज़िला बड़े कट्टर एकेश्वरवादी थे। अल्लाह के विषय में क़ुरआन जो रूपक प्रस्तुत करता है उससे वह सगुण एवं साकार सत्ता भी बन जाता है। मोतज़िला ने इन सब भावों का निराकरण किया। उसके गुण न तो 'वह' हैं और न 'वह' के अतिरिक्त। अल्लाह किसी स्थल विशेष का निवासी नहीं, वह सर्वविद्यमान सञ्चालक है। अल्लाह अनादि सत्ता है, उसने मख़्लूक़ को पैदा किया है। क़ुरआन नित्य नहीं, उसकी सत्ता को शाश्वत मान लेने से अल्लाह की अनन्यता में बाधा पड़ती है। अल्लाह जीव को सन्मार्ग पर देखना चाहता है, वह पाप का आदेश नहीं देता, मनुष्य का कर्म उसके इच्छानुकूल निर्णय पर आधारित है।" (रिज़्वी, अलखबानी/रुश्दनामा की प्रस्तावना, पृ० ८)

शिया लोग भी अल्लाह के रुयत (दर्शन) को नहीं मानते। ये लोग हज़रत अली और उनके वंशधरों के अनुयायी हैं। इस सम्प्रदाय का आरम्भ इस्लाम के आरम्भिक युग में हुआ। ये लोग चुनाव द्वारा ख़लीफ़ा के निर्वाचन

को उचित नहीं मानते। ख़लीफ़ा के बदले ये इमाम को मानते हैं। शिया लोग इमाम को मनुष्य और परमात्मा के बीच कड़ी समझते हैं।

भारतीय सन्दर्भ में साक्षात्कार – "ईश्वर इन्द्रियों द्वारा कभी ग्रहण नहीं किया जा सकता। अभी तक किसी ने ईश्वर को न तो आँखों से देखा है और न कभी देख सकेगा। न किसी को ईश्वर की प्रतीति अपनी चेतना में होती है।. . . तुम्हें इन इन्द्रियों से परे, इस चेतना से परे जाना होगा, अपनी अन्तःस्थ आत्मा के अधिकाधिक निकट जाना पड़ेगा और जितना ही तुम आगे बढ़ोगे, उतना ही तुम ईश्वर के अधिकाधिक समीप पहुँचोगे। परमेश्वर के अस्तित्व का प्रमाण क्या है ?– साक्षात्कार प्रत्यक्ष।" (विवेकानन्द साहित्य, तृ० खं० पृ० १०९)

अद्वैत वेदान्त में, ब्रह्म के साक्षात्कार को लेकर दो प्रस्थान चले, जिन्हें विवरण-प्रस्थान और भामती-प्रस्थान कहा जाता है। प्रथम के अनुसार, "तत्त्वमसि" अथवा "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" आदि वाक्यों द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार हो जाता है। "यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म" इत्यादि वाक्यों में स्वप्रकाश ब्रह्मविषयक ज्ञान को अपरोक्ष ज्ञान कहा गया है। विशुद्ध ब्रह्म के विषय का अज्ञान ही समस्त दुःखादि अनर्थों का मूल है। वेदान्तवाक्यजन्य अपरोक्ष ज्ञान से ही अज्ञाननाशपूर्वक अनर्थों से मुक्ति सम्भव है।

किन्तु, भामती-प्रस्थान के अनुसार, "तत्त्वमसि" आदि वेदान्तवाक्य-जन्य शब्दज्ञान है और शब्द-ज्ञान परोक्ष ज्ञान होता है। वेदान्त-वाक्य के श्रवण के पश्चात् कर्म और उपासना की सहकारिता से अविद्या की निवृत्ति होती है।

'पूर्ण दर्शन'

इस अध्याय के अन्त में दारा ने जिस 'पूर्ण दर्शन' की बात कही है उसे, भिन्न शब्दावली में, म०म० गोपीनाथ कविराज ने अपने 'पूर्ण स्वरूप प्राप्ति' शीर्षक एक लेख में इस प्रकार कहा है :

". . . निराकार स्वरूप विश्वातीत है। साकार विश्वात्मक कहा गया है। इन दोनों स्वरूप की प्राप्ति के पश्चात् परम स्वरूप का साक्षात्कार होता है। परम स्वरूप भूमि में साकार, निराकार, सकल, निष्कल, सगुण, निर्गुण, सविशेष, निर्विशेष प्रभृति समस्त स्वरूप समूह का समाधान प्राप्त हो जाता है।. . . प्रथमतः आत्मा के निराकारत्व का साक्षात्कार होता है, उस अवस्था में विश्व की सत्ता निराकारत्व में प्रविलीन हो जाती है। अब आत्मा के नित्य

साकार स्वरूप की उपलब्धि होती है। दोनों अवस्थाएं एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं। एक है अनुलोम गति का फल। आत्मा का पृष्ठ रूप। द्वितीय का फल, आत्मा का सम्मुखीन रूप है। दोनों स्वरूप आत्मा की अखण्ड सत्ता के अन्तर्गत आते हैं। इनका साक्षात्कार सरल गति के अनुसरण से होता है।. . . सरल गति की अवस्था में केन्द्रस्थ बिन्दु का अखण्ड रूप से दर्शन मिलने लगता है। सुषुम्ना के अन्तर्गत आत्मा के पूर्ण स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा होती है। अब सगुण-निर्गुण, निराकार-साकार प्रभृति का द्वन्द्व नहीं रहता। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि सरल गति में पूर्ण सत्ता का दर्शन होते रहने पर भी उसकी प्राप्ति नहीं होती। कारण, इस अवस्था में द्रष्टा-दृश्य, उपासक-उपास्य के मध्य का व्यवधान उच्छिन्न नहीं होता। इस व्यवधान की समाप्ति के अनन्तर ही दोनों का योग हो सकेगा। **पूर्ण स्वरूप का अनिमेष भाव से दर्शन करते-करते यह व्यवधान भी कट जाता है।।**" ("आत्मनिर्झर") पृ० १५९-११

एक अन्य स्थल में कविराज जी कहते हैं- ". . . सुषुप्ति अवस्था का उदय होता है। उस समय अहंकार नहीं रहता। उस समय की अवस्था का नाम तुरीय है। यही साक्षात्कार की अवस्था है'। ('भारतीय संस्कृति और साधना' ९० खं० पृ० ३५१)

११. ईश्वर के नामों का निरूपण

'वह्य'

= आकाशवाणी। दैवी प्रकाशन, ईश्वरीय संकेत। वह्य शब्द का अर्थ होता है तीव्र संकेत, गुप्त संकेत अर्थात् इशारा जो तेज़ी के साथ इस तरह किया जाय कि बस इशारा करने वाला जाने या वह व्यक्ति, जिसे इशारा किया गया हो, किसी अन्य व्यक्ति को इसका पता न चले।

". . . एक विशेष 'वह्य' वह है जिसके द्वारा अल्लाह नबियों को ज्ञान प्रदान कराता है और उन पर अपनी 'किताब' उतारता है। यह 'वह्य' दूसरी समस्त वह्यों से भिन्न होती है। यह 'वह्य' नबियों पर उतरती है। 'नबी' को पूरा ज्ञान होता है कि यह अल्लाह की ओर से 'वह्य' उतर रही है। इस 'वह्य' का उद्देश्य भी महान् और उच्च होता है। 'नबी' इस 'वह्य' के द्वारा लोगों को जीवन के सच्चे और सीधे मार्ग की ओर बुलाते हैं। 'क़ुरआन' और दूसरे ईश्वरीय ग्रन्थों का अवतरण 'वह्य' द्वारा ही हुआ है।"

१२. सिद्धत्व और ऋषीश्वरत्व का निरूपण

सिद्धत्व = नुबूवत, ऋषीश्वरत्व = विलायत।

दारा शिकोह ने पैग़म्बरों (सिद्धों, नबियों) को तीन भागों में विभक्त किया है, एक तो वे, जिन्होंने अल्लाह को अपनी बाह्य या आभ्यन्तर आँखों से देखा होगा, दूसरे वे, जिन्होंने अल्लाह की वाणी, या तो केवल ध्वनि के रूप में या शब्द-समूह के रूप में सुनी होगी, तीसरे वे, जिन्होंने फ़िरिश्तों को देखा होगा या उनकी आवाज़ें सुनी होंगी।

१. प्रथम प्रकार के शुद्ध पैग़म्बर, जैसे नोआ (नूह) थे, जिन्होंने अल्लाह को पूर्ण अनुभवातीत रूप में पहचाना। इस पहचान को तंज़ीह या Absolute Transcerdence कहा जा सकता है। कहते हैं कि ह० नूह के समय में उनकी जाति वालों में 'शिर्क' (बहुदेववाद) की गन्दगी फैल गई थी। ह० नूह ने प्रार्थना की कि 'काफ़िरों' को दुनिया में रहने दे। अन्त में एक बड़े तूफ़ान के रूप में अल्लाह की यातना आई। ह० नूह और उन लोगों को, जो उन पर 'ईमान' लाये थे, अल्लाह ने बचा लिया, बाक़ी सभी लोग डूब गये। जलप्लावन (तूफ़ान) की घटना की चर्चा क़ुरआन में है (अल-आराफ़, ७:६४)। वहाँ, यह संकेत मिलता है कि बाद की नस्लें उन्हीं लोगों की सन्तानें हैं, जिन्हें अल्लाह ने तूफ़ान से बचा लिया था।

"जल प्लावन भारतीय इतिहास में एक ऐसी प्राचीन घटना है, जिसने मनु को देवों से विलक्षण, मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का एक अवसर दिया। वह इतिहास है" (कामायनी : जयशङ्कर प्रसाद, का 'आमुख')

शतपथ ब्राह्मण (१.८.१.१) में मनु और प्रलय की प्रसिद्ध घटना आई है। मनु को मानवता एवं ऋषियों (मुनियों) का पिता कहा गया है और कहा गया है कि वे मानवों के उचित मार्ग का प्रदर्शन करते हैं। शतपथ ब्राह्मण में जलप्लावन के वर्णन में उनकी नाव को उत्तर गिरि हिमवान् के प्रदेश में पहुंचने का प्रसंग है। वहाँ ओघ के जल का अवतरण होने पर मनु भी जिस स्थान पर उतरे, उसे 'मनोरवसर्पण' कहते हैं।

२. दूसरे प्रकार के पैग़म्बर (नबी) ह० मूसा हुए। इनके सम्बन्ध में कई घटनाओं का उल्लेख क़ुरआन में मिलता है, साथ ही यह प्रसिद्ध घटना भी उल्लिखित है :

"और जब मूसा हमारे निश्चित किये हुए समय पर पहुँचा और उसके 'रब' ने उससे बातचीत की तो वह कहने लगा : हे 'रब' मुझे दिखा, मैं तुझे देखूँ। उसने कहा : तू मुझे नहीं देख सकता, हाँ पर्वत की ओर देख! यदि वह अपने स्थान पर स्थिर रहा, तो तू मुझे देख लेगा। फिर जब उसका 'रब' पहाड़ पर आलोकित हुआ तो उसे चकनाचूर कर दिया और मूसा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।. . ." (७.१४३)

ह० मूसा का सिद्धत्व (नुबूवत) तस्बीही है। उन्होंने अल्लाह को वृक्ष की अग्नि में देखा और मेघों से 'दिव्य वाणी' सुनी। उन्होंने तस्बीह (सादृश्य) के रूप को बल दिया।

३. तृतीय सिद्धत्व तंज़ीह और तस्बीह का मिला-जुला उभय रूप ह० मुहम्मद का था। दारा शिकोह ने इसकी भली-भांति व्याख्या की है।

दारा शिकोह ने इस प्रसंग में ख़लीफ़ाओं, सूफ़ी मनीषियों का नामोल्लेख किया है, जैसे, -

अबू बकर, उमर, उस्मान, अली, हसन, हुसैन आदि। (यहां इनके सम्बन्ध में एक सामान्य चर्चा के पश्चात् अन्य सूफ़ी सन्तों के विषय में विस्तृत चर्चा हम इस ग्रन्थ के एक अलग परिशिष्ट में करेंगे)

१. अबू बक्र ह० मुहम्मद के बाद ६३२ ई० में प्रथम ख़लीफ़ा हुए और २३ अगस्त ६३४ ई० में मृत्यु के बाद पैग़म्बर के बगल में दफ़नाये गये।

२. उमर ६३४ ई० में दूसरे ख़लीफ़ा हुए। उन्होंने दस वर्षों तक इस्लाम के देशों पर शासन किया और ६४४ ई० में मारे गये।

३. उस्मान ७ नवम्बर ६४४ ई० में उमर के स्थानापन्न हुए और १७ जून ६५६ ई० को कुछ षड्यन्त्रकारियों द्वारा मारे गये। पैग़म्बर की दो पुत्रियों के साथ उनका विवाह हुआ था।

४. अली चौथे ख़लीफ़ा थे। वे पैग़म्बर के चचेरे भाई और दामाद थे। वे उन कुछ पहले लोगों में थे जिन्होंने इस्लाम ग्रहण किया था। वे २३ जून

६५६ ई० में ख़लीफ़ा हुए और २७ जनवरी ६६१ ई० को उनका निधन हुआ। शाम के गवर्नर माविया ने नमाज़ के समय उन्हें मरवा डाला।

५. हसन, अली के बड़े पुत्र थे और पैग़म्बर के नाती थे। वे अपने पिता अली के स्थानापन्न हुए। माविया ने उन्हें भी विष देकर मरवा डाला।

६. हुसैन, अली के दूसरे पुत्र थे। कूफ़ा नाम के नगर के निवासियों के आग्रह से ख़लीफ़ा नियुक्त होने के लिए क़ूफ़ा को चले। पर कर्बला के मैदान में ७२ साथियों के साथ माविया के पुत्र यज़ीद की सेना द्वारा मार डाले गये। मुख्यतः शिया लोग उनकी शहादत में शोक मनाते हैं, ताज़िया निकालते हैं।

१३. ब्रह्माण्ड-निरूपण

('समुद्रसङ्गम' में यह प्रकरण निरूपित नहीं हुआ है)

ब्रह्माण्ड चौदहों भुवनों का समूह है। पौराणिक मान्यता के अनुसार लोक चौदह हैं- सात सर्ग और सात पाताल। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, और सत्य ये सात सर्ग लोक हैं और अतल, सुतल, बितल, गभस्तिमत्, महातल, रसातल और पाताल ये सात पातल हैं। विश्व- गोलक, सम्पूर्ण विश्व, जिसके भीतर अनन्त लोक हैं 'ब्रह्माण्ड' कहलाता है। "मनु ने लिखा है कि स्वयं भगवान ने प्रजा-सृष्टि की इच्छा से पहले जल की सृष्टि की और उसमें बीज फेंका। बीज पड़ते ही सूर्य के समान प्रकाश वाला स्वर्णाभ अंड या गोला उत्पन्न हुआ। पितामह ब्रह्मा का उसी अंड या ज्योतिर्गोलक में जन्म हुआ। उसमें अपने एक संवत्सर तक निवास करके उन्होंने उसके आधे आध दो खंड किये। ऊर्ध्व खंड में स्वर्ग आदि लोकों की और अधः-खण्ड में पृथ्वी आदि की रचना की। विश्व गोलक इसी से ब्रह्माण्ड कहा जाता है। हिरण्यगर्भ से सृष्टि की उत्पत्ति श्रुतियों (वेदों) में भी कही गई है। ज्योतिर्गोलक की यह कल्पना जगदुत्पत्ति के आधुनिक सिद्धान्त से कुछ-कुछ मिलती-जुलती है जिसमें आदिम ज्योतिष्क नीहारिका मण्डल या गोलक से सूर्य और ग्रहों, उपग्रहों आदि की उत्पत्ति निरूपित की गई है।" (हिं० श० सा०)

यहां यह एक प्राचीन श्लोक उद्धरणीय है-

''भू-भूधर-त्रिदश-दानव-मानवाद्या
ये याश्च धिष्ण्यगगनेचरचक्रकक्षाः।
लोकव्यवस्थितिरुपर्युपरि प्रदिष्टा
ब्रह्माण्डभाण्डजठरे तदिदं समस्तम्।।''

अर्थात् जो पृथ्वी, पर्वत, देवता, दानव और मानव आदि हैं, और जो यज्ञ-वेदियां, खेचर-समूह की कक्षाएं हैं, ऊपर-ऊपर के लोकों की व्यवस्थिति बताई गई है, वह सब कुछ ब्रह्माण्ड के भाण्ड के भीतर विद्यमान है।

१४. दिङ्निरूपण

१५. आकाशों का निरूपण

१६. पृथिवी-निरूपण

१७. पृथिवी के विभागों का निरूपण

सात समुद्रों की संख्या को लेकर क़ुरआन शरीफ़ की जिस आयत को उद्धृत किया गया है, वह पुष्पदन्त के महिम्नःस्तोत्र के इस पद्य से तुलनीय है:

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश! पारं न याति।।

कहते हैं कि महिम्नःस्तोत्र के इस प्रसिद्ध पद्य की जननी है सुबन्धु की 'वासवदत्ता' की यह पंक्ति, जिसमें विरह-दुःखों की अवर्णनीयता की अभिव्यञ्जना है-

"त्वत्कृते याऽनया यातनाऽनुभूता सा यदि नभः पत्रायते, सागरो मेलानन्दायते, ब्रह्मा लिपिकारायते, भुजगपतिर्वा कथकायते तदा किमपि कथमप्यनेकैर्युगसहस्त्रैरभिलिख्यते कथ्यते वा।" (तुम्हारे लिए इसने जो यातना झेली है, वह यदि आकाश काग़ज़ बने, समुद्र दावात बने, ब्रह्मा लिखने वाला हो अथवा सर्पों का राजा कथक का काम करे तब उसे किसी तरह से हज़ारों युगों में लिखा या कहा जा सकता है।)

१८. बर्ज़ख़, अर्थात् प्रेतलोक का निरूपण

बर्ज़ख़- यह अरबी शब्द पुंल्लिंग में प्रयुक्त होता है। 'मद्दाह' ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है- "परस्पर विरुद्ध (विरोध?) रखने वाली दो चीज़ों के बीच की तीसरी चीज़, जो दोनों से सम्पर्क रखे- जैसे बंदर, जो मनुष्यों और हैवानों के बीच बर्ज़ख़ है। संस्कृत-रूपान्तर स०सं० में **बर्ज़ख़** को **प्रेतलोक** कहा गया है, किन्तु सरस्वती सरन कैफ़ महाशय ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- "मुझे आलमे बर्ज़ख़ के प्रेत-संसार होने में सन्देह है। इस्लाम में आलमे बर्ज़ख़ (जिसका शब्दार्थ है, मध्यावस्था) से तात्पर्य मौत और क़यामत के बीच के समय से है।

दारा ने फ़िर्दौसे आ'ला (उच्च स्वर्ग) को भारतीय दृष्टि से वैकुण्ठ बताया है। हिन्दी शब्द सागर (पं० रामचन्द्र शुक्ल) के अनुसार, "विष्णु का धाम या स्थान। पुराणानुसार यह धाम सत्य लोक से भी ऊपर है। यह धाम सबसे श्रेष्ठ माना गया है और कहा गया है कि जिन्हें विष्णु मोक्ष देते हैं, वे इसी धाम में निवास करते हैं। यहाँ रहने वाले न तो बुड्ढे होते हैं और न मरते हैं।"

'वैकुण्ठ' धाम के लिए दूसरा शब्द है परम-पद, जो मनुष्य के जीवन का परम लक्ष्य है। इसके स्वरूप के सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता। वेद में कहा है- 'तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।' (ऋ० १.२२.२०) अर्थात् दिव्य सूरिगण विष्णु के परम-पद को निरन्तर निर्निमेष दृष्टि से देखते हैं। इसका स्वरूप द्युलोक में व्याप्त एक चक्षु के आकार के जैसा है।

श्रीमद्भगवद्गीता में परम-धाम का वर्णन है- "यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम।" इसमें प्रवेश होने पर प्रत्यावर्तन नहीं होता। (परम-पद के सम्बन्ध में अधिक जानकारी के लिए देखा जा सकता है, म०म० गोपीनाथ कविराज की पुस्तक "भारतीय संस्कृति और साधना" (प्र० भा० 'परम-पद' शीर्षक लेख, पृ० ४७६-४८२)

१९. महाप्रलय-निरूपण

इसे भारतीय परम्परा में 'महाप्रलय' कहा जाता है और इस्लाम में क़यामत या हश्र कहा जाता है। "एक दिन ऐसा आने वाला है जब अल्लाह

वर्तमान लोक को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा, सारे मनुष्य और जीवधारी मर जायेंगे। फिर इसके पश्चात् वह एक दूसरी सृष्टि की रचना करेगा। सभी लोगों को पुनः जीवित करके उठायेगा और उन्हें अपने कर्मों का बदला दिया जायेगा। यही क़यामत का दिन होगा।"

क़ुरआन के अनुसार-

"क़यामत के दिन अल्लाह मुर्दों को उठायेगा, फिर उसी की ओर लौट कर जायेंगे।" (६:३६) "जिस दिन 'सूर' फूँका जायेगा उस दिन बादशाही उसी की होगी।" (६:७३)

'महाप्रलय' के सम्बन्ध में म०म० गोपीनाथ कविराज "आदि गुरु दत्तात्रेय और अवधूत-दर्शन" शीर्षक अपने एक लेख में लिखते हैं- "ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु समाप्त होने पर जब परमात्मा सो जाते हैं तब ब्रह्मा की मृत्यु हो जाती है। उस समय सतत सौ वर्षों तक अनावृष्टि, भूतलय और द्वादश आदित्यों का उदय होता है। पृथ्वी अत्यन्त सन्तप्त हो जाती है- अग्निमय और दग्ध हो जाती है। उसके पश्चात् संवर्त्तक मेघ जल-वृष्टि करते हैं। सप्त-समुद्र मिलकर एक महार्णव के रूप में परिणत हो जाते हैं। पृथ्वी उस जल में विलीन हो जाती है। जल तेज से सूख जाता है। तेज अपने से दशगुनी वायु द्वारा शान्त हो जाता है और वायु आकाश में लीन हो जाती है। आकाश तामस अहंकार में, तामस अहंकार राजस अहंकार में और राजस अहंकार सात्त्विक अहंकार में लीन हो जाता है। कार्य करण में, करण कर्त्ता में और कर्ता महत्तत्त्व में लीन हो जाते हैं। अन्त में सब का महामाया में उपसंहार हो जाता है और महामाया परमात्मा में लीन हो जाती है। परमात्मा आत्मज्ञान के स्फुरण से अलग होकर अपने स्वरूप में उस स्फुरण को लीन कर और आनन्दमय, अनन्त, अव्यय एवं स्वसंविज्ञानमय सत्ता को प्राप्त कर निर्विकल्प रूप में विराजमान होते हैं।" (भारतीय संस्कृति और साधना, प्र० भा० पृ० २०४-५)

२०. मुक्ति का निरूपण

इसमें सन्देह नहीं कि "प्राच्य और पाश्चात्य, भारतीय और सामी विचारधाराएं मूलतः भिन्न हैं, वस्तुतः वे एक अथवा समान प्रतिज्ञा (प्रेमिस) से आरंभ ही नहीं होतीं। इनमें सामान्य सिद्धान्त बस एक है, मुक्तिवाद। किन्तु मुक्ति किससे? इस प्रश्न पर बिल्कुल मतैक्य नहीं है।"

दारा शिकोह ने मुक्ति को शुद्ध चैतन्य में परिच्छिन्नों का विलय या विगलन कहते हुए मुक्ति की परिभाषा दी है और क़ुरआन के उद्धरण से इसे समर्थित करने का प्रयास किया है। उद्धरण में, अल्लाह की ख़ुशी और रज़ामंदी को (जीव के लिए) बड़ी सफलता माना गया है। दारा इसे मुक्ति कहना चाहता है और उसकी दृष्टि में महामुक्ति है रिज्वाने अक्बर या उच्च स्वर्ग में प्रवेश। (भारतीय मान्यता में भी निम्न स्वर्ग और उच्च स्वर्ग की चर्चा है। निम्न स्तर का स्वर्ग सकाम पुण्य कर्म के फल से प्राप्त होता है, जबकि "योग शक्ति तथा ज्ञान के क्रम-विकास के अनुसार अत्युच्च ऊर्ध्वतम स्वर्ग की प्राप्ति होती है।") दारा ने मुक्ति के तीन प्रकार बताये हैं- जीवन्मुक्ति, सर्वमुक्ति और सर्वदा मुक्ति। उसने तीनों के स्वरूप समझाये हैं तथा भारतीय मत और क़ुरआन, दोनों के अनुसार समन्वय की बात कही है।

सामान्यतः, भारतीय अवधारणा में मनुष्य के मन को ही बन्ध और मोक्ष (मुक्ति) का कारण माना गया है- "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।" मन जब संसार की ओर आकृष्ट होता है तब अधिक से अधिक बंधता चला जाता है और जब श्रेय मार्ग में, परमात्मा की ओर चला गया, तब सारे बन्धनों से मुक्त कराकर मोक्ष पद पर प्रतिष्ठित कर देता है।

भारतीय दर्शनों में जीवन्मुक्ति तथा जीवन्मुक्त के लक्षण मिलते हैं। सामान्यतः, जिस जीव का अन्तःकरण वासनाओं से रहित हो जाता है, वह देह रहने पर भी जीवन्मुक्ति की दशा में पहुंच जाता है। वासनाएं ही अन्तःकरण को मलिन करती हैं। वासनाएं हैं तो बन्ध है, वासनाएं नहीं हैं तो मोक्ष या मुक्ति है। शास्त्राभ्यास, योगांगों का अनुष्ठान, अभ्यास और वैराग्य आदि से वासनाओं का क्षय होता है। इन उपायों से, वासनाओं के धुल जाने पर चित्त में तत्त्वज्ञान का उदय होता है। मोह, अज्ञान आदि भी नहीं रहते। तब जीव निरतिशय आनन्द का अनुभव करता है। उसे हर्ष, शोक आदि की अनुभूति नहीं होती। मात्र विशुद्ध चित्त-वृत्ति प्रवाहित होती है। देहाध्यास मिट जाता है। केवल शरीर को धारण करने वाली प्रारब्ध कर्म-वासनाएं ही प्रवृत्त होती हैं। ऐसा पुरुष ही जीवन्मुक्त कहलाता है। यह जीता हुआ भी मुक्त हो जाता है। (इस विषय का विशद वर्णन डॉ० किशोर दास स्वामी ने अपनी पुस्तक "भारतीय दर्शन और मुक्ति-मीमांसा" में किया है।) म०म० गोपीनाथ कविराज जी ने अपने एक लेख में कहा है कि "गुरु के द्वारा कृपा करके शिष्य

की प्रज्ञा-दृष्टि का उन्मीलन किए जाने पर ब्रह्म-स्वरूप इस महाज्ञान का उदय होता है, जिससे जीवन्मुक्ति स्वभावतः फूट उठती है। यही जीवन की चरम सफलता है।" कविराज जी एक अन्य स्थल में सद्योमुक्ति अथवा जीवन्मुक्ति की चर्चा करते हुए लिखते हैं- "जो पुरुष यथार्थ में इस अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं उनके लिए कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रहता। प्रारब्धवश शरीर चलता है और कर्म का क्षय होने पर शरीर का पात हो जाता है।" यहीं, कविराज जी क्रम-मुक्ति की चर्चा करते हैं- "मृत्यु के साथ ही भगवान् के परम धाम में प्रवेश किया जाता है। अथवा मृत्यु के बाद कई स्तरों में होते हुए, वहाँ पहुँचा जाता है।" (भारतीय संस्कृति और साधना, प्र०भा०पृ० ४६३)

इस प्रकरण का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश है विराट् पुरुष के प्रत्येक अवयव-संस्थान का निरूपण या विवरण। यह ज्ञातव्य है कि दारा शिकोह के एक गुरु वाराणसी के पं० रामानन्द पति त्रिपाठी ने दारा की प्रेरणा से 'विराड्-विवरणम्' नाम की पुस्तिका वि०सं० १७१३ (१६५६ ई०) में लिखी थी। यह रचना सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय, वाराणसी से १९८२ ई० में प्रकाशित हुई। इसमें विराट् पुरुष के अवयवों का मज्म' उल बहरैन (समुद्रसङ्गम) के अनुसार वर्णन है। यह पुस्तिका सूत्र और वृत्ति शैली में लिखी गई है। वृत्ति में आधारभूत ग्रन्थों से उद्धरण दिये गये हैं। यहां उसका सार रूप प्रस्तुत करते हैं :

१. धरती का सातवां पुट पाताल है जो महापुरुष के चरण का तलवा है-

तत्र पातालं पादतलम्

भगवान् के चरणारविन्द से ध्यान आरम्भ करना चाहिए और चरण से लेकर हसित पर्यन्त का ध्यान करना चाहिए, इस प्रकार बुद्धि शुद्ध होती है। श्रीमद्भागवत का वचन है-

एकैकशोऽङ्गानि धियाऽनुभावयेत् पादादि यावद्धसितं गदाभृतः।
जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत् परं परं शुध्यति धीर्यथा यथा।।
२.१.१३

और वहीं कहा है-

पातालमेतस्य हि पादमूलम् २.१.२६

श्रीमद्भागवत में धारणा की विधि बताते हुए शुकदेव जी ने परीक्षित् से कहा कि ऐसा विचार करना चाहिए कि सात आवरण से युक्त पृथिवी आदि ग्रह भगवान् के शरीर हैं। भगवान का पाद-मूल पाताल है, पंजा और एड़ी रसातल है, टखना महातल है, जंघा तलातल है तथा जानु सुतल-अतल हैं।

'विराड्विवरण्' में ७८ सूत्रों की रचना की गई है, जो इस प्रकार हैं-

१. तत्र पातालं पादतलम्।

२. रसातलं पादोपरिभागः।

३. पिशाचाः पादाङ्गुल्यः।

४. गजाश्वाश्वतरोष्ट्राः चरणनखाः।

५. महातलं गुल्फभागः।

६. तलातलं जङ्घे।

७. सुतलं जानुनी।

८. वितलमूरू।

९. क्षणादिवत्सरान्तःकालो गमनक्रिया।

१०. अतलं पायुः।

११. तत्रेन्द्रियं मृत्युः।

१२. मित्रावरुणौ वृषणौ।

१३. प्रजापतिर्मेढ्रः।

१४. वृष्टिर्वीर्यम्।

१५. महीतलं जघनम्।

१६. सुमेरोर्दक्षिणतो निषधहेमकूटहिमालयाः।
उत्तरतश्च नीलश्वेतशृङ्गिणो दक्षिणवामश्रोणी।

१७. सन्ध्ये वाससी।

१८. समुद्रो नाभिः।

१९. वडवानलो जाठराग्निः।

२०. नद्यो नाड्यः।

२१. भुवर्लोक उदरम्।

२२. वाडववृद्धिः खण्डप्रलयानलः क्षुत्।

२३. कल्पार्कस्तृट्।

२४. स्वर्लोको वक्षः।

२५. निवृत्तिप्रवृत्तिरूपौ धर्मौ दक्षिणवामस्तनौ।

२६. प्रकृतिर्हृदयकमलम्।

२७. राजसो ब्रह्मा मनः।

२८. शुद्धसत्त्वं विष्णुः।

२९. कोपो रुद्रः।

३०. चन्द्रः प्रसादः।

३१. वशिष्ठो ज्ञानम्।

३२. वायुः प्राणः।

३३. अधर्मः पृष्ठभागः।

३४. मेरुः पृष्ठदण्डः।

३५. अन्ये पर्वताः अस्थीनि।

३६. महापुरुषस्य प्राङ्मुखस्य पुरः स्थितः पुरुहूतो हस्तौ।

३७. अप्सरसः कररेखाः।

३८. गुह्यकाः कराङ्गुलयः।

३९. यक्षाः करनखाः।

४०. अग्निधर्मराजनिर्ऋत्या ईशानकुबेरवायवश्च यथाक्रमं मणिबन्धादांसं भागत्रयक्रमेण दक्षिणवामबाहू।

४१. सृष्ट्यादीनि कर्माणि।

४२. ध्रुवौ दक्षिणवामस्कन्धौ।

४३. वरुणः ककुत्।

४४. महर्लोको ग्रीवा।

४५. तत्रानाद एव नादः।

४६. जनलोको वदनम्।

४७. कामश्चिबुकम्।

४८. लोभोऽधरः।

४९. लज्जोत्तरोष्ठः।

५०. पुत्रादिस्नेहा दन्ताः।

५१. यमो दंष्ट्राः।

५२. आपस्तालुः।

५३. अग्निर्जिह्वा।

५४. रसतन्मात्रं रसनेन्द्रियम्।

५५. सरस्वती वागिन्द्रियम्।

५६. माया हास्यम्।

५७. जृम्भादयो भूता जृम्भाः।

५८. अगस्तियमौ दक्षिणवामगल्लौ।

५९. पश्चिमार्धभागसहिते दक्षिणोत्तरदिशौ कर्णौ।

६०. शब्दतन्मात्रं श्रवणेन्द्रियम्।

६१. नासत्यौ नासे।

६२. गन्धतन्मात्रं घ्राणेन्द्रियम्।

६३. वायुर्निःश्वसितम्।

६४. जनतपसोर्मध्ये यदन्तरिक्षं तदेव भागद्वयेन दक्षिणवामाक्षिणी।

६५. आदिसूर्यश्चक्षुः।

६६. ब्रह्मणो रात्र्यहनी निमेषोन्मेषौ।

६७. दुरन्तसृष्टिः कटाक्षः।

६८. मित्रत्वष्टारौ भ्रुवौ।

६९. तपो ललाटम्।

७०. सत्यलोकः शिरः।

७१. मेघाः केशाः।

७२. उपनिषदो ब्रह्मरन्ध्रम्।

७३. ओषधयो महीरुहास्तनूरुहाः।

७४. लक्ष्मीः शरीरशोभा।

७५. भूताकाशो देहरन्ध्राणि।

७६. चिदाकाश आत्मा।

७७. मनुजो निवासः।

७८. जीवभोगो भोगः।

(पुस्तिका के अन्त में, 'पुष्पिका' इस प्रकार है :

"इति श्री नित्यातिशयषडैश्वर्यसम्पन्न श्री साहविलंद-इकबाल महमद्दाराशकोह-सर्वप्राणिपुञ्जप्रकर्षप्रोद्भूतसत्सन्तानाखण्डमण्डल-धरणिधरनियुक्तश्रीमद्रामानन्दसूरिणा विरचितं 'विराड्विवरणं' सम्पूर्णम्।"

(संवत् १७१३ वैशाखे मासि शुक्ल पक्षे त्रयोदश्यां शनौ।)

२१. ब्रह्मा की गुप्तता और प्रकटता रूप रात्रि और दिन का निरूपण

इस प्रसंग में, दारा द्वारा प्रस्तुत वर्णन को म०म० गोपीनाथ कविराज के एक लेख 'मृत्यु-विज्ञान और कर्मरहस्य' शीर्षक (पृ० १०४-५) के इस आंशिक उद्धरण से यत्किञ्चित तुलना करके समझा जा सकता है-

". . . जिसे ब्रह्माण्ड कहा जाता है वह काल के अधीन है, क्योंकि उसकी भी सृष्टि, स्थिति और संहार है।. . . प्राचीन आचार्यों ने प्रलय को चार भागों में बाँटा है, अवश्य ही आपेक्षिक भाव से। उनमें पहला है नित्य प्रलय, दूसरा नैमित्तिक प्रलय, तीसरा प्राकृतिक प्रलय अथवा महाप्रलय और चौथा

आत्यन्तिक प्रलय या मोक्ष।. . . इस ब्रह्माण्ड के जो अधिपति हैं, उनका नाम हिरण्यगर्भ या ब्रह्मा है। श्रुति के अनुसार, उनकी आयु शत-वर्ष है। इसे अपने मान या दिव्य मान के अनुसार समझना चाहिए। हम जिसे ब्रह्माण्ड समझते हैं, वह हिरण्यगर्भ का ही देह स्वरूप है। ब्रह्मा की आयु का अवसान होने पर ब्रह्मा की देह की समाप्ति होती है- इसी को महाप्रलय कहते हैं।. . . ब्रह्मा के दिनान्त में, अर्थात् ब्रह्मा के निद्राकाल में जो प्रलय होता है वह नैमित्तिक प्रलय है।. . . ब्रह्मा के एक दिन को कल्प कहते हैं।. . . एक कल्प में, अर्थात् ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनुओं का आविर्भाव और तिरोभाव होता है। इकहत्तर हज़ार महायुग में एक-एक मनु का आविर्भाव और तिरोभाव होता है। एक मनु के अवसान के बाद एक प्रलय की अवस्था आती है। उसके बाद दूसरा मनु आता है। इसी क्रम से चौदह मनुओं का आयुष्काल पूरा होने पर ब्रह्मा का एक दिन पूरा होता है। ("अखण्ड महायोग का पथ और मृत्यु विज्ञान")।

म०म० डॉ० पाण्डुरंग वामन काणे "धर्मशास्त्र का इतिहास" के चतुर्थ भाग के १९वें अध्याय में (पृ० ३३१) लिखते हैं- ". . . चार युगों का विस्तार १२००० वर्षों (४००+३६००+२४००+१२००) का है, जिसे देवों का युग (यह दिव्य मानक है) कहा गया है, इन चारों के १००० वर्ष ब्रह्मा का एक दिन और उतनी ही ब्रह्मा की रात्रि है।. . . विष्णु पुराण (६.३.११-१२) में आया है कि १४ मन्वन्तरों का एक कल्प होता है जो ब्रह्मा का एक दिन है।"

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती अपने 'भागवत-दर्शन' (प्रथम खण्ड) की 'भूमिका' में, श्रीमद्भागवत के आधार पर 'मन्वन्तर' की चर्चा करते हुए कहते हैं : "कितने वर्षों का एक मन्वन्तर होता है? मनुष्य-वर्षों के हिसाब से ४३,२०,२००० वर्षों की एक चतुर्युगी होती है। इकहत्तर चतुर्युगी का एक मन्वन्तर होता है। चौदह मन्वन्तर का एक कल्प होता है। वह कल्प ब्रह्मा का एक दिन है। इतनी ही बड़ी उनकी एक रात्रि होती है। इस हिसाब से जब ब्रह्मा के सौ वर्ष हो जाते हैं, तब उनकी आयु पूरी हो जाती है। ब्रह्मा के एक दिन का जो हिसाब गीता में लिखा हुआ है वही हिसाब और वही श्लोक शाकल्यसंहिता, निरुक्त, महाभारत, समस्त पुराण और ज्योतिष के ग्रन्थों में भी पाया जाता है।. . . वैवस्वत मनु प्रलय के समय वनस्पतियों के समस्त बीज और सप्तर्षियों को लेकर एक नाव पर बैठ जाते हैं (देखिये अष्टम स्कन्ध के

अन्तिम दो अध्याय) और वह नाव हिमालय की चोटी से बाँध दी जाती है। शतपथ ब्राह्मण में इसका वर्णन मिलता है। बाइबिल में भी ठीक वैसी ही कथा का उल्लेख है। नोआ (नूह) नाम के व्यक्ति प्रलय के समय पृथ्वी के समस्त बीजों को लेकर नाव पर सवार हो जाते हैं और उनकी नाव पहाड़ की चोटी से बाँध दी जाती है। प्रलय का जल घट जाने पर फिर उन्हीं के द्वारा सृष्टि होती है और वे बहुत दिनों तक जीवित रहते हैं। न केवल बाइबिल में अपितु विभिन्न जातियों के अन्यान्य धर्म-ग्रन्थों में भी इस प्रकार की कथाएँ प्राप्त होती हैं।

ईशानुकथा-

एक मन्वन्तर के बाद दूसरा मन्वन्तर और एक कल्प के बाद दूसरा कल्प, इस प्रकार सृष्टि की परम्परा चलती रहती है। सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि, यह क्रम अनादि काल से चल रहा है और प्रवाहरूप से नित्य है।" (पृ० ४६-४८)

"प्रलय चार प्रकार के होते हैं- नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यन्तिक प्रलय। नित्य प्रलय के दो अर्थ हैं- एक तो जगत् में जो निरन्तर क्षय हो रहा है, उसका नाम नित्य प्रलय है और दूसरा निद्रा के समय जब सारी सृष्टि अज्ञान में विलीन हो जाती है, किसी को भी विशेष भाव का अनुभव नहीं होता, उसको नित्य प्रलय करते हैं। नैमित्तिक प्रलय भी दो प्रकार का होता है- एक आंशिक और दूसरा पूर्ण नैमित्तिक प्रलय। एक मन्वन्तर समाप्त होने पर अथवा कभी-कभी भगवान् की इच्छा से मन्वन्तर के बीच में ही जब समस्त पृथिवी जलमग्न हो जाती है और भुवर्लोक, स्वर्लोक आदि भी विच्छिन्न हो जाते हैं, परन्तु महर्लोक आदि ज्यों के त्यों रहते हैं, तब आंशिक प्रलय होता है और जब एक कल्प के अन्त में ब्रह्मा का दिन पूरा होने पर वे अपनी की हुई सृष्टि को लेकर घोर निद्रा में सो जाते हैं तब पूर्ण नैमित्तिक प्रलय होता है। प्राकृत विलीन हो जाता है। आत्यन्तिक प्रलय का कोई समय नहीं है।" (पृ० ५०, ५१)

इस प्रकरण (अध्याय) के अन्त में दारा ने बिल्कुल सही लिखा कि "जो कुछ मैंने इस अध्याय में लिखा है, वह बहुत परिश्रम और यथेष्ट अनुशीलन का परिणाम है. . ." निश्चय ही उसने इसके सम्बन्ध में अपने समय के दोनों पक्षों के अनेक महापुरुषों की संगति में बैठ कर उनसे जिज्ञासा

की है। उसकी बहुत सी बातें आज के मनीषियों द्वारा लिखित सामग्री के आकलन से भी स्पष्ट होती प्रतीत होती हैं। म०म० गोपीनाथ कविराज ने "आदिगुरु दत्तात्रेय और अवधूत-दर्शन" शीर्षक अपने लेख में 'महाप्रलय' की चर्चा करते हुए लिखा है : "ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु समाप्त होने पर जब परमात्मा सो जाते हैं, तब ब्रह्मा की मृत्यु हो जाती है। उस समय सतत सौ वर्षों तक अनावृष्टि, भूतलय और द्वादश आदित्यों का उदय होता है। पृथ्वी अत्यन्त सन्तप्त हो जाती है- अग्निमय और दग्ध हो जाती है। उसके पश्चात् संवर्तक मेघ जलवृष्टि करते हैं। सप्त समुद्र मिल कर एक महार्णव के रूप में परिणत हो जाते हैं। पृथ्वी उस जल में विलीन हो जाती है। जल तेज से सूख जाता है। तेज अपने से दस गुनी वायु द्वारा शान्त हो जाता है और वायु आकाश में लीन हो जाता है। आकाश तामस अहंकार में, तामस अहंकार राजस अहंकार में और राजस अहंकार सात्त्विक अहंकार में लीन हो जाता है। कार्य करण में, करण कर्त्ता में और कर्त्ता महत्तत्त्व में लीन हो जाते हैं। अन्त में सबका महामाया में उपसंहार हो जाता है और महामाया परमात्मा में लीन हो जाती हैं। परमात्मा आत्मज्ञान के स्फुरण से अलग होकर अपने स्वरूप में उस स्फुरण को लीन कर और आनन्दमय, अनन्त, अव्यय और स्वसंविज्ञानमय सत्ता को प्राप्त कर निर्विकल्प रूप में विराजमान होते हैं। निर्विकल्प ब्रह्म का ज्ञानमय और आनन्दमय जो प्रकाश है, वही गुणसाम्य है। उनमें तीनों गुण, गुणकृत भेद तथा सर्व कारण, कार्य और करण एकाकार होकर उपसंहार को प्राप्त हो जाते हैं। जीव उस समय अपने-अपने अज्ञान में आ जाते हैं और माया में निद्रित हो पुनः ब्रह्म में लौट जाते हैं। आत्मज्ञान के बिना ब्रह्मज्ञान सम्भव नहीं और बिना ब्रह्मज्ञान के अज्ञान का नाश भी नहीं होता। इसलिए, जीवों के इस तरह ब्रह्म में लौट आने पर भी उनकी जीवावस्था निवृत्त नहीं होती।" (भारतीय संस्कृति और साधना - भाग १, पृ० २०४-५)

२२. ब्रह्माण्ड के प्रवाहानन्त्य का निरूपण

इस प्रकरण में, दारा ने, लगता है, ऋग्वेद के सृष्टि-सूक्त / अध- मर्षण सूक्त को भी तुलनात्मक आधार बनाया है, जहां धाता / ईश्वर / स्रष्टा द्वारा 'यथापूर्व' सृष्टि-रचना की बात है : ". . . धाता यथापूर्वमकल्पयत्"। इस सूक्त में, तपस् से सृष्टि का प्रारम्भ माना गया है। अभीद्ध तपस् से ऋत और सत्य उत्पन्न हुए, इसके बाद रात्रि उत्पन्न हुई, फिर समुद्र उत्पन्न हुआ। समुद्र

उत्पन्न होने के बाद संवत्सर उपलक्षण काल उत्पन्न हुआ। विश्व के सम्पूर्ण प्राणियों का ईश्वर दिन और रात्रि का सृजन करता हुआ स्थित था। उस धाता ने सूर्य तथा चन्द्र को **यथापूर्व** बनाया, तत्पश्चात् द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक तथा प्रकाश को उत्पन्न किया (१०.१९०.१-३)

यहां, विश्व के सम्पूर्ण तत्त्वों की रचना 'यथापूर्व' (पहले जैसी) की जाने का अभिप्राय यह है कि "इनका एक बार (या कई बार) प्रलयावस्था में विनाश हो चुका था, प्रलयावस्था के बाद दूसरे मन्वन्तर में परमेश्वर ने फिर से पहले-जैसे सबकी सृष्टि की।

अनादि प्रवाह :

भारतीय शास्त्रीय चिन्तन में, ईश्वर (जगत्स्रष्टा या परमसत्ता) के यहाँ दिन के बाद रात और रात के बाद दिन का कोई क्रम नहीं है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो चलती रहेगी। यह अहोरात्र का क्रम क्षण-क्षण परिवर्तन का सूचक होने से काल के प्रभाव का सूचक है, क्योंकि जितने ही भाव (अस्तित्व) में आने वाले पदार्थ है, प्रति क्षण परिणामी हैं, केवल चित्ति शक्ति या चैतन्य, (दूसरे शब्द में, ईश्वर) अपरिवर्तित रहती है। "अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड असंख्य प्रकार के जीवों को वक्षःस्थल पर धारण करके काल-स्रोत में बहते चले जा रहे हैं।" ईश्वर काल का नियन्ता है, अतएव वह कालातीत है, देश और काल दोनों से अनवच्छिन्न। पृथिवी आदि में छः विकार देखे जाते हैं- 'जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते तथा नश्यति।' ये कालिक परिणाम के छः रूप हैं।

पवित्र क़ुरआन :

"जिस तरह (सृष्टि की) प्रथम रचना. . . उसकी पुनरावृत्ति करेंगे।" आदि

सृष्टि को लेकर ऋग्वेद (१०.१९०) का यह मन्त्र यहाँ उद्धरणीय है-

ऋतञ्च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।।१।।

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।।२।।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीं चान्तरिक्षामथो स्वः।।३।।

(ऋत और सत्य अभीद्ध तप से अधिजात हुए।

फिर रात्रि जन्मी फिर तरङ्गित समुद्र।।१।।
तरङ्गित समुद्र पर संवत्सर जन्मा।

अहोरात्र का विधान करते समस्त प्राणियों का स्वामी।।२।।
सूर्य और चन्द्र को धाता ने यथापूर्व कल्पित किया।

द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्लोक को।।३।।)

"इस सूक्त में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है कि ऋत, सत्य, समुद्र, संवत्सर, दिन-रात सूर्य, चन्द्रमा आदि **विश्व के सम्पूर्ण तत्त्वों की रचना परमेश्वर ने पहले जैसी ही की**, अर्थात् इनका एक बार प्रलयावस्था में विनाश हो चुका था, प्रलयावस्था के बाद दूसरे मन्वन्तर में परमेश्वर ने फिर से पहले जैसे सबकी सृष्टि की।"

ख़्वाजा हाफ़िज़

दारा ने दिन और रात के चलते रहने (= अनादि प्रवाह) को प्रमाणित करने के लिए यहाँ ख़्वाजा हाफ़िज़ का एक शे'र उद्धृत किया है। हाफ़िज़ को 'लिसानुल ग़ैब' अर्थात् 'अदृश्य की जिह्वा' या स्वर्गिक रहस्यों के व्याख्याता' कहा गया है। इनकी ग़ज़लें सूफ़ीमत (तसव्वुफ़) की गूढ़ व्याख्या मानी जाती हैं। इनके जीवन के विषय में अधिक जानकारी नहीं मिली है। बहुत लोगों का मत है कि इनका जन्म सन् ७२० हि० (सन् १३२० ई०) के आसपास, शीराज में हुआ। 'शीराज' के बारे में इन्होंने अपने 'दीवान' में अधिक लिखा है। इन्हें पवित्र 'क़ुरआन' अभ्यस्त था, उनका एक शे'र है :

न दीदम ख़ुशतर अज़ शे'रे तू 'हाफ़िज'
ब-क़ुरआने कि अन्दर सीना दारी

(हाफ़िज! उस क़ुरआन की शपथ, जो तुझे कंठस्थ है, मैंने तेरे शे'र से श्रेष्ठतर (कोई) शे'र नहीं देखा।) ये सन् ७९१ हि० (सन् १३८९) में दिवंगत हुए और अपनी जन्मभूमि में दफ़्न किए गए। इनकी ग़ज़लें बहुत लोकप्रिय हुईं।

एक बात और, क़ुरआन के अनुसार, "वे (ह० मुहम्मद) अल्लाह के रसूल और नबियों के समापक हैं", (३३.४०), अर्थात् उन पर पैग़म्बरी का सिलसिला समाप्त कर दिया गया, आपके बाद कोई नबी आने वाला नहीं। दूसरी ओर उसी क़ुरआन में कहा जा रहा है कि जिस तरह उसने तुम्हें पहली बार पैदा किया उसी तरह तुम फिर पैदा होगे (७:२९) (यहाँ इस पंक्ति का अनुवाद किया है जैसे आप (लोगों) को मैंने पहले बनाया, उसी प्रकार पुनः बनाऊँगा।) उपर्युक्त दोनों आयतों के विरोधाभास के निराकरणार्थ दारा ने यह कहा कि यदि कोई यह सन्देह करे कि इसे तो परमसिद्ध (ह० मुहम्मद) का सिद्धत्व (नुबूवत) की अन्तिमता सिद्ध नहीं होती, इस पर उसका (दारा का) समाधान है कि दूसरे ईश्वरीय दिन में भी हमारे पैग़म्बर उसी रूप में पुनः प्रकट होंगे और वे कहे जाएंगे "सन्देष्टाओं में अन्तिम" इस समाधान से दारा शिकोह की पवित्र क़ुरआन और पैग़म्बर ह० मुहम्मद पर अटूट आस्था व्यक्त है।

शबे मिअराज

एक सच्चे मुसलमान की भाँति दारा ह० मुहम्मद के सशरीर स्वर्गारोहण (मिअराजे जिस्मानी) को अपने विश्वास का अङ्ग मानता था। उसने रिसालः-ए-हक़नुमा में लिखा है कि "हारा की गुफ़ा में रसूल प्राणायाम या श्वास-निरोध का अभ्यास करते थे (आवर्द बुर्द) तथा इसके परिणामस्वरूप उनका शरीर वायु से भी सूक्ष्म हो गया था तथा हीरे से भी अधिक पारदर्शी। फिर इसमें क्या बात अशक्य है कि अपने सूक्ष्मीकृत काय (शरीर) सहित रसूल सातवें स्वर्ग पर चढ़ गए?" इस स्वर्गारोहण को, प्रस्तुत प्रकरण में, 'चक्र की अनन्तता का संकेत' बताने के लिए चर्चित किया गया है। जैसे, रसूल द्वारा ऊँटों की अन्तहीन पंक्ति को देखना, हर ऊँट पर दो सन्दूक, हर सन्दूक का हमारे संसार जैसा संसार का होना और हर संसार में उन्हीं जैसे एक मुहम्मद का होना। फिर जिब्रील से जिज्ञासा और उनकी ओर से उसके बारे में अपना अज्ञान प्रकट करना।

अपने इस लघुकाय ग्रन्थ के अन्त में, दारा ने 'समुद्र मथन' की पौराणिक कथा का सुन्दर ढंग से उपयोग करते हुए, यह बात कही है- विष्णु रूपी आत्मा की इच्छा से अपने मन को मैंने मन्दर बनाया और संकल्प-

विकल्पों को देव-दैत्य बनाया और वेद रूपी समुद्र का मथन करके एक ऐसे ज्ञान-रत्न को निकाला, जो चौदह रत्नों से अलग है। परमेश्वर की आराधना की और विज्ञापना की, उससे 'समुद्रसङ्गम' की समाप्ति में सामर्थ्य प्राप्त किया।

यह व्यतिरेक मिश्रित रूपक मूल फारसी म०ब० में नहीं है, जबकि 'समुद्रसङ्गमः' में उल्लिखित है।

•

परिशिष्ट

(दारा शिकोह द्वारा उल्लिखित महापुरुष)

परिशिष्ट

दारा शिकोह द्वारा उल्लिखित महापुरुष

(म०ब० के बारहवें, सिद्धत्व-ऋणीश्वरत्व-निरूपण में उल्लिखित)

ख़लीफ़ा- पैग़म्बर साहब के प्रतिनिधि, स्थानापन्न

१. अबू बक्र

ये प्रथम खलीफ़ा हुए, जिन्हें पैग़म्बर मुहम्मद के बाद, ६३२ ई० में, उत्तराधिकार मिला। इनकी मृत्यु ६३४ में हुई और ये हज़रत मुहम्मद के बगल में दफ़नाये गये। इनके शासन काल में इनके हाथ में एक बड़ी शक्ति आई, तब भी वे विनम्र बने रहे। दो आलपीनों को पिरो कर एक ही कपड़े से काम चलाते थे। इनकी लड़की आयशा मुहम्मद साहब को ब्याही गई थी, और उसे वे बहुत प्यार करते थे। हुज़्वीरी के हवाले से कहते हैं कि अबू बक्र का हृदय इस मायावी दुनिया से मुक्त था, क्योंकि उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी और ऊनी चोगा (गिलीम) धारण कर पैग़म्बर के पास गये। पैग़म्बर ने पूछा कि उन्होंने अपने परिवार के लिए क्या छोड़ा है? अबू बक्र ने उत्तर दिया, "केवल परमात्मा और उसके पैग़म्बर को।"

२. उमर

दूसरे ख़लीफ़ा उमर बिन अल-ख़त्तब, अबू बक्र के बाद ६३४ ई० में बने। इन्होंने इस्लाम के देशों पर दस वर्षों तक शासन किया और ६४४ ई० में मारे गये। एक बड़े इस्लामी साम्राज्य का शासक होने पर भी ये रोटी और जैतून का तेल खाकर जीवन-निर्वाह कर लेते थे। उनके कपड़े में एक दर्जन पैबंद लगे हुए थे। "एक किंवदन्ती है कि ख़लीफ़ा उमर ने सिकन्दरिया के पुस्तकालय के विषय में कहा था कि यदि पुस्तकें क़ुरआन के अनुकूल हैं तो अनावश्यक हैं और यदि प्रतिकूल हैं तो मिथ्या हैं।"

३. उस्मान

ये उमर के बाद ६४४ ई० में तीसरे ख़लीफ़ा हुए। इन्हें कुछ षड्यन्त्रकारियों ने ७५६ ई० में मार डाला। इनका पहनावा और रहन-सहन केवल सादगी और निराडम्बर ही नहीं था बल्कि अपने ही एक गुलाम जैसा वे रहते थे।

४. अली

ये चौथे ख़लीफ़ा हुए। ये हज़रत मुहम्मद के भतीजे और दामाद थे। ये उन कुछ लोगों में थे, जिन्होंने पहले इस्लाम ग्रहण किया था। ये २४ जून ६५६ ई० को चौथे ख़लीफ़ा चुने गये। अली धर्मात्मा, अनेक गुणों से सम्पन्न तथा वीर थे किन्तु कहते हैं कि इनमें शासक के गुण मौजूद नहीं थे। अपने शत्रुओं और विरोधियों के लिए भी इनके मन में किसी प्रकार की अवमानना का भाव नहीं रहता था। इन्होंने मदीना पहले ही छोड़ दिया था और इराक़ के कूफ़ा शहर में अपनी राजधानी बनाई थी। अली अपनी मृत्यु के बाद शिया सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता माने गये। वे इस सम्प्रदाय में अल्लाह के वली और प्रतिनिधि स्वरूप माने जाते हैं।

५. हसन

ये अली के बड़े पुत्र तथा ह० मुहम्मद के नाती थे। ये ख़लीफ़ा हुए, लेकिन इनका बहुत समय हरम के भीतर बीता था। बाद में उन्हें अपना पद छोड़ना पड़ा।

६. हुसैन

ये अली के द्वितीय पुत्र और ह० मुहम्मद के नाती थे। यजीद ने कर्बला के मैदान में चौथे ख़लीफ़ा अली के अल-हुसैन तथा उनके दल वालों का निर्दयतापूर्वक क़त्ले आम कर दिया।

छ बाकी (अमर लोग?)

दस अशुरे मुबश्शिर (पैग़म्बर के साथी) जिनका स्वर्ग में प्रवेश पैग़म्बर ने पहले कह रखा था।

मुहाज़िरों में महान् (जो मक्का से मदीना आये)

अन्सार (जिन्होंने मदीना में पैग़म्बर की सहायता की।)

सूफ़ी लोग

ताबिईन (मद्दाह के अनुसार, वे अरब, जिन्होंने रसूल के किसी सिहाबी अर्थात् निकट जन को देखा हो); वे लोग, जिन्होंने रसूल के निकट जनों (असहाब) में से किसी से भेंट की तथा बात की हो।

७. उवैस अल-क़रनी

एक प्रसिद्ध सूफ़ी, जो मुहम्मद साहब के समकालिक थे। 'तज़्किरातुल औलिया' के निर्देशानुसार, मुहम्मद साहब ने उवैस के पास उमर और अली को अपनी मुरक़्क़ा देने के लिए भेजा था। आज्ञानुसार, दोनों ने उवैस से मिल कर पैग़म्बर साहब का लबादा दिया था। "पैग़म्बर के प्रिय पात्र उवैस का जुब्बा, जो घुटने तक पहुंच जाता था, ऊन का बना हुआ था। वास्तव में यह पैग़म्बर का था, जिसे उन्होंने उवैस को दे दिया था।" 'कश्फ़ुल महजूब' में हुज़्विरी ने उवैस को 'आफ्ताबे उम्मत' और शम'अ मिल्लत' कहा हैं और लिखा है कि "....आपने रसूल अकरम सल्ल० ज़मानाए हयाते ज़ाहिरी और अहदे मुबारक पाया था, लेकिन दो चीज़ों ने दीदारे जमाले जहाँ आरा से आपको रोके रखा, एक आपका ग़ुल्बःए हाल, दूसरा आपकी वालिदा का हक़।"

८. ज़ुन्- नून मिस्त्री

जुन् नून अलमिस्त्री (मृ० ४६० ई०)- ये मिस्र देश में उत्पन्न हुए। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, उन्हें "सतानपंथी मुसलमानों ने काफ़िर, अर्थात् इस्लाम-विरोधी समझ कर कारा-दंड दे दिया और कुछ काल तक यातना भुगतने पर ही उन्हें मुक्ति मिली। कहते हैं कि अध्यात्मविद्या में वे प्रगाढ़ पंडित माने जाते थे, और प्रसिद्ध जा'मी जैसे सूफ़ी लोगों ने उन्हें आगे चल कर 'आदिगुरु' के रूप में स्वीकार किया था। वस्तुतः इन्हीं के द्वारा सूफ़ी मत में नव अफ़लातूनी विचारधारा का समावेश हुआ और उन्होंने ही उसमें भावावेश को भी सर्वप्रथम प्रश्रय दिया" (सूफ़ी काव्य संग्रह, भूमिका पृ० ११)

सूफ़ी विचारधारा में इन्हें प्रथम ज्ञात चिन्तक के रूप में स्मरण किया जाता है। कहते हैं कि राबिया ने प्रेम की स्थापना की और इन्होंने प्रेम को,

व्याख्या और तर्कों द्वारा एक सैद्धान्तिक रूप प्रदान किया। 'इल्म' और 'मारिफ़' (ज्ञान और प्रज्ञान) का भेद बताकर इन्होंने प्रेम को प्रज्ञात्मक सिद्ध किया। इनके अनुसार मारिफ़त का सम्बन्ध ख़ुदा के प्रेम से है। मारिफ़त के अतिरिक्त इन्होंने इस्लामी 'तौहीद' के सिद्धान्त की भी नवीन व्याख्या की तथा यह बताया कि अन्य देवी-देवताओं के निषेध मात्र से ख़ुदा का एकत्व सिद्ध नहीं होता, बल्कि जब साधक उसके प्रेम में इतना तल्लीन हो जाय कि ख़ुदा के अतिरिक्त कुछ शेष ही न रहे तब 'तौहीद' की सार्थकता है। कहते हैं कि आध्यात्मिक प्रेम के लिए साक़ी और प्याले का प्रतीक रूप में प्रयोग कदाचित् इन्होंने ही सबसे पहले किया। ये क़ुरआन की अपौरुषेयता का खण्डन करते थे, इसलिए मिस्र वाले इन्हें 'काफ़िर' कहते थे, हालांकि मरने के बाद वहाँ ये आश्चर्यजनक रूप से प्रतिष्ठित हुए। इन्हें 'मलामती' (लोगों के बुरा भला ख़याल न करके अपने काम में लगा रहने वाला), 'ज़िन्दीक' (पैग़म्बर को प्रमाण न मानने वाला, स्वतन्त्रचेता) और 'कुत्ब' (उच्च ज्ञानी) कहा गया। इनके इस्लाम-विरोधी विचारों के कारण ख़लीफ़ा मुतवक्किल ने इन्हें बग़दाद बुलवा कर कारावास दे दिया, पर बाद में इनसे वह प्रभावित हुआ और कारावास से मुक्त कर दिया।

९. फ़ुज़ैल बिन अयाज़

(मृत्यु ८०२-३ ई०) इनके विषय में कहा जाता है कि ये डाकुओं के सरदार थे।

ये कूफ़ा के निवासी थे, अथवा इन्हें किसी ने ख़ुरासान का निवासी माना है। ये आरम्भ के इस्लाम के रहस्यवादी थे।

आरम्भिक सूफ़ीवाद बल्ख़ में, मर्व में, प्रभावशाली घटित हुआ। उस क्षेत्र में, तेजस्वी व्यक्तियों में अबू अली फ़ुज़ैल बिन अयाज़ अल-तलक़नी से बढ़कर कोई नहीं था। ये समरक़ंद में उत्पन्न हुए। अपने यौवन में ये न तो विद्वान् थे और न ही सम्पन्न व्यापारी, अपितु लुटेरा डाकू थे। ये औरतों और ग़रीबों को नहीं लूटते थे। उन्होंने क़ुरआन के एक अध्येता से यह आयत सुनी-

"ये वे लोग हैं कि हम उनके अच्छे कामों को, जो उन्होंने किये क़बूल कर लेंगे और उनकी बुराइयों को टाल जायेंगे।" (४६:१६)

इससे उन्होंने पूर्व जीवन को छोड़ दिया और अपने पूर्व के पीड़ितों की प्रतिपूर्ति कर दी। पहले, कूफ़ा गये जहाँ उन्होंने हदीस का अध्ययन किया। अन्त में वे मक्का में रहने लगे और प्रार्थना तथा उपवास में अपना समय बिताने लगे। बड़ी अनिच्छा के साथ ख़लीफ़ा हारुं उल-रशीद को उनसे मिलने के लिए अनुमति प्रदान की। अन्त में, जब वह आया तब फ़ुज़ैल ने उसे न्याय से शासन करने के लिए निवेदन किया और याद दिलायी कि न्याय के दिन, अल्लाह उससे उसके संरक्षण में रहने वाले प्रत्येक मुस्लिम के प्रति किये गये उसके न्याय के बारे में पूछेगा। यदि एक भी बूढ़ी औरत अपने घर में बिना खाद्य-सामग्री के सोई तो वह न्याय के दिन ख़लीफ़ा की बर्दी को खींचेगी और उसके विरुद्ध प्रमाण देगी।

रिज़्वी लिखते हैं-

"फ़ुज़ैल बिन अयाज़ (मृत्यु ८०२-३ ई०) युवावस्था में मर्व तथा बग़दाद के मध्य में डाका डाला करते थे किन्तु न तो किसी स्त्री का और न किसी दरिद्र का धन छीनते थे। एक बार मर्व का एक व्यापारी अकेला ही यात्रा कर रहा था। उसने एक आदमी को इस आशय से नियुक्त कर लिया था कि वह उसके आगे-आगे क़ुरआन का पारायण करता चले। जब वे फ़ुज़ैल के पास से गुज़रे तो उस 'आयत' ने जो उस समय पढ़ी जा रही थी फ़ुज़ैल को इतना प्रभावित किया कि उन्होंने अपना जीवन बदल डाला, डाके डालना छोड़ दिया। जिन लोगों को लूटा था उन्हें जाकर सन्तुष्ट किया। कुछ समय तक मक्के के इमाम अबु हनीफ़ा के साथ कूफ़े में निवास करते रहे (कश्फ़ुल महजूब पृ० ७०-८०)" (रुश्दनामा की भूमिका से उद्धृत पृ० १२)

उनकी शिक्षा का सार यह है कि जो ईश्वर की पूजा भय अथवा किसी आशा से करता है वह ऐसा ही है मानो स्वयं अपनी पूजा करता हो। उसे ईश्वर के आदेशों की चिन्ता नहीं। फ़ुज़ैल का कथन है कि वे उसकी पूजा उसके आदेशों के पालन की दृष्टि से करते हैं।

(अब्दुल्लाह अनसारी, पृ० ५९) (वही)

कहते हैं कि फ़ुज़ैल बिन अयाज़ ने 'रिज़ा' (संतोष) को त्याग पर प्राथमिकता दी है। जिसे 'रिज़ा' श्रेणी प्राप्त हो गई उसके लिए कोई अन्य इच्छा बाक़ी नहीं रही। (रिज़्वी, अ०बा०, भू०पृ० १४)

१०. मा'रूफ़ बिन फ़िरोज़ अल-कर्ख़ी (मृ० ८१५ ई०)

ये बग़दाद के एक भाग, कर्ख़ में रहते थे। यहाँ इन्होंने नव सूफ़ी मत की शब्दावली के लिए जो-जो परिभाषाएँ बनाईं, उन्हें सभी मानने लगे और वे सूफ़ियों में बहुत आदर/श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाने लगे। "इन्होंने एक सच्चे फ़क़ीर का लक्षण भगवच्चिन्तन, भगवदाश्रय एवं भगवदुद्दिष्ट कार्य-कलाप के आधार पर निर्धारित किया था और तसव्वुफ़ की प्रमुख विशेषता परमतत्त्व की अनुभूति एवं सांसारिक विषयों के त्याग में निहित मानी थी।"

मा'रूफ़ के उपदेश में हक़ (सत्य) और सिद्क़ (निश्छलता), इन दोनों का प्राधान्य था। इनसे उनके अन्तिम उपदेश (टेस्टामेंट) के विषय में पूछा गया तो बोले, "उनका कुर्ता उनकी पीठ से उतार लिया जाए और दान में दे दिया जाए, जिससे कि वे संसार को नग्न होकर छोड़ें, जिस प्रकार वे अपनी माँ के गर्भ से निकले थे। उनकी मृत्यु के बाद, यहूदियों, क्रिश्चियनों और मुसलमानों ने उनके अपने होने का दावा किया, लेकिन उन्हें दफ़नाने के पहले मुसलमानों ने उनकी अर्थी उठाई।

निम्नलिखित उपाख्यान से इनकी धार्मिक सहिष्णुता सिद्ध होती है :-

यह कहा जाता है कि जब भोजन मा'रूफ़ को उपहार में दिया जाता था तब सदैव वे उसे स्वीकार कर लेते थे और खा लेते थे। किसी ने उनसे कहा- 'उनके भाई बिस्र बिन अल-हरिस सदैव उस प्रकार के भोजन को अस्वीकार कर देते हैं' तब मारू'फ़ ने उत्तर दिया- "परहेज़ करना मेरे भाई के हाथों को बाँध देता है, जबकि अध्यात्म-विद्या मेरे हाथों को खींच कर आगे बढ़ा/फैला देती है। मैं केवल एक अपने मालिक के घर का अतिथि हूँ। . . . जब वह खिलाता है (तब) खाता हूँ, जब वह नहीं (खिलाए), तब मुझे सहनशील रहना चाहिए। मुझे न एतराज़ है और न ही रुचि है।"

११. इब्राहीम बिन अदहम (मृ० ७७६ ई० - ७८३ ई० के बीच)

अबू इसहाक इब्राहीम बिन अदहम बिल्कुल आरम्भ के दौर में हुए। इनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि "ये बल्ख़ के एक राजपुरुष थे, जिन्हें आखेट करते समय एक आकाशवाणी सुन पड़ी और उन्हें अपने लिए ऐसा प्रतीत हो गया कि जिन कार्यों को पूरा करने में मैं लगा हुआ हूँ वे मेरे वास्तविक उद्देश्य से नितान्त भिन्न और विपरीत हैं।" कहते हैं कि इस

आत्मबोध के पश्चात् वह एक गड़रिए को अपना घोड़ा देकर उससे कम्बल ले लिया और मक्के की ओर चल पड़े। मार्ग में नीशापुर के निकट एक गुफा में तपश्चर्या करते हुए उन्होंने ९ वर्ष बिता दिए। संसार में स्वयं कष्ट सहने में उन्हें प्रसन्नता होती थी और दूसरों के कष्ट को देखकर उन्हें अपार पीड़ा होती थी।

वे बल्ख़ के हाकिम थे। उनका जीवन-वृत्त गौतम बुद्ध के प्रारम्भिक जीवन से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। कहा जाता है कि एक दिन शिकार में एक मृग का पीछा करते हुए वे अपने लश्कर से पृथक् हो गए। ईश्वर ने मृग को बात करने की शक्ति दे दी। उसने इब्राहीम को सचेत किया कि उनका जन्म किसी अन्य बात के लिए हुआ है। संसार त्याग वे नीशापुर (ईरान) की एक गुफा में नौ वर्ष तक घोर तपस्या करते रहे (तज़किरातुल औलिया, पृ० ५७)। उन्होंने बताया कि "जब तक मनुष्य अपने अस्तित्व की उपेक्षा न करने लगे उस समय तक सच्चा त्याग सम्भव नहीं। मनुष्य को ईश्वर के आदेशों का पालन करना चाहिए और भाग्य के लिखे को आज्ञोल्लंघन की दलील न बनाना चाहिए" (कश्फ़ुल महजूब पृ० ८२-८४) (रुश्दनामा की भूमिका पृ० ११ से उद्धृत)

१२. बिश्र हाफ़ी (मृ० ८४२ ई०)

ये इस्लाम के आरम्भिक रहस्यवादियों में से एक थ। "सूफ़ी सन्त चरित" के अनुसार इनका प्रारम्भिक जीवन अच्छा न था, पर अपनी मदहोशी में भी इन्होंने ईश्वर के नाम का जो सम्मान किया, इस कारण ये ईश्वर के कृपा-पात्र बने। कहते हैं कि एक दिन मदहोशी की हालत में कहीं जा रहे थे कि उनकी निगाह एक काग़ज़ पर पड़ी, जिस पर 'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' लिखा था। उन्होंने उसे उठाकर तथा उसमें इत्र लगा कर सम्मान के साथ ऊँचे स्थान पर रख दिया। उसी रात किसी सन्त को आदेश मिला कि तुम बिश्र हाफ़ी को यह शुभ-समाचार दो कि जिस प्रकार तूने हमारे नाम को इज़्ज़त देकर ऊँची जगह दी उसी प्रकार हम भी तुम्हें तमाम बुराइयों से पाक (पवित्र) करके आला मर्तबा अता करेंगे।

बिश्र हाफ़ी को इस स्वप्न पर विश्वास नहीं हुआ। दूसरी, तीसरी बार जब संत को यही आदेश मिला तब उन्होंने बिश्र को बुलाया। मालूम हुआ, मयख़ाने (मदिरालय) में हैं, तब किसी को भेजा तो वहाँ से सूचना मिली कि वह बेहोश पड़े हैं। फिर सूचना भेजी कि "एक व्यक्ति ईश्वर का सन्देश लाया

है!" तब अपने साथियों से यह कह कर कि 'न जाने ईश्वर ने क्या शाप दिया हो, अब शायद मिलना न हो, अलविदा!' बाहर आकर जब अल्लाह का पैग़ाम सुना तो सोचा 'आह! कहां मेरी यह ज़िन्दगी और कहाँ उनकी यह रहमत!' उन्होंने तौबा की और बुरे काम छोड़ दिए तथा अल्लाह की इबादत में लग गए। शीघ्र ही अपनी साधना के कारण संत के रूप में प्रतिष्ठित हुए। कहते हैं कि ख़ुदापरस्ती की उमंग में वह हमेशा नंगे पैर ही घूमते। इसीलिए वे 'हाफ़ी' कहे जाने लगे।

एक ऊँचे दर्जे के सन्त (इमाम अहमद हम्बल) बिश्र हाफ़ी के साथ अक्सर देखे जाते। उनके शिष्यों ने उनसे पूछा, "आप इतने बड़े बुज़ुर्ग होकर एक दीवाने के साथ क्यों फिरा करते हैं?" इमाम का उत्तर था, "जो इल्म मुझे आते हैं वह, निश्चय ही दीवाने से बेहतर जानता हूँ, मगर वह दीवाना अल्लाह को मुझसे ज़्यादा जानता है।"

१३. सरी उस्सक़ती (मृत्यु ८६८ ई०)

ये मा'रूफ़ कर्ख़ी के शिष्य थे। कहते हैं कि ये जुनैद के गुरु और मामा थे और उन्हें ऊँचा उठाने में इनका हाथ था। इन्होंने ख़लीफ़ा के एक मुसाहिब अहमद-बिन-यजीद को भ्रम से निकाल कर ऊँचे दर्ज़े का सन्त बना दिया। उसे वैराग्य के मार्ग पर लगा दिया। इनका एक बड़ा ही सुन्दर व्यावहारिक सिद्धान्त था- "सिवा इन पाँच चीज़ों के तमाम दुनिया फ़िजूल है- खाना, जान रोकने के माफ़िक; पानी, प्यास बुझाने के लायक़; कपड़ा, तन ढकने लायक़; स्थान, रहने भर के लिए; तथा इल्म, जिस पर अमल कर ले।"

इनके अनुसार, आरिफ़ (ज्ञानी) वह है जो कम खाये, कम सोये और कम ऐश करे। कहते- आरिफ़ सूर्य के समान सब पर चमकता है और पृथ्वी के समान सबका बोझ उठाता है, पानी के समान, लोगों का जीवन उस पर आश्रित है और अग्नि के समान सबको उसकी रोशनी पहुँचती है।. . . . ऐश आरिफ़ को उस समय प्राप्त होता है जब वह अपने को फ़ना कर देता है।

कहते हैं कि जब उन्हें मालूम होता कि उनके पास कोई इल्म सीखने आता है तो वे ख़ुदा से दुआ करते कि उसको ऐसा इल्म दे दो कि उसे मेरे पास आने की ज़रूरत ही न पड़े और मुझे तेरी याद से ग़ाफिल न करे।

उन्होंने पहाड़ पर रहने वाले किसी दरवेश का पैग़ाम लेकर आये व्यक्ति से कहला भेजा- "संसार से अलग रह कर ईश्वर की इबादत करना मुर्दों का काम है और ज़िन्दा वे हैं जो संसार में रहकर हर वक़्त ईश्वर को याद करें।"

उनके शिष्य जुनैद बग़दादी ने एक बार मुहब्बत की तारीफ़ पूछी।... सक़ती ने अपने हाथ की खाल को खींचा, पर वह ज़रा भी न उभरी तब बोले, "अगर मैं यह कहूँ कि मुहब्बत ने मेरी खाल को सुखा दिया है, तो ग़लत न होगा।" यह कह कर सक़ती बेहोश हो गए, शायद इस शर्म से कि उन्होंने अपनी मुहब्बत का राज़ ज़ाहिर कर दिया। मगर जुनैद कहते कि उनका चेहरा मिस्ल आफ़्ताब के रोशन था।

सक़ती के अन्त समय जुनैद उनसे मिलने आये।. . . जुनैद ने मिज़ाज पूछा तो उन्होंने एक 'आयत' पढ़ी, जिसका आशय यह है- बन्दा तो अपने मालिक की मिल्कियत है, उसकी अपनी कोई चीज़ नहीं। शिष्य ने अपने गुरु से आख़िरी नसीहत चाही तो उनका जवाब था- "ख़ल्क में रह कर ख़ालिक से ग़ाफिल मत हो।"

१४. बायज़ीद बिस्तामी (मृत्यु ८७४ ई०)

ये प्रख्यात सूफ़ी थे। कहते हैं कि इन्होंने ही कदाचित् सबसे पहले 'फ़ना' अर्थात् सूफ़ियों के 'निर्वाण' का प्रतिपादन किया था। ये सर्वात्मवाद से पूरे प्रभावित थे। और "ईश्वर एवं विश्व को इन्होंने समव्यापी तथा अभिन्न ठहराया था।" 'फना' अर्थात् सभी बुराइयों का दूर हो जाना और विशुद्ध आत्मा (रूह) का परमात्मा में लय हो जाना।

बायज़ीद फ़ारस के निवासी थे और उनका जन्म जरथुश्त्र धर्म को मानने वाले एक परिवार में हुआ था। इनके गुरु कुर्दिस्तान के एक कुर्द थे। "तज़किरातुल औलिया" (अत्तार) के अनुसार, ये भारत में आकर रहे थे और इन्हें भारतीय योग के प्राणायाम की क्रिया की जानकारी थी। कहते हैं कि इनके गुरु अबू अली रहस्यवादी साधना में दीक्षित थे तथा सिन्ध के निवासी थे। अबू अली के द्वारा ही इन्हें 'फ़ना' के सिद्धान्त की जानकारी मिली।

"सूफ़ीमत-साधना और साहित्य" में राम पूजन तिवारी ने कुछ विस्तार से इनके सम्बन्ध में चर्चा की है। वे लिखते हैं- "जुन्नेद का कहना है (कश्फ़ पृ० १०६) कि अबू यज़ीद का साधकों में वही स्थान है जो जिब्राईल का देव-

दूतों में है। कहा जाता है कि उसमें परमात्मा के साक्षात्कार करने की इच्छा अत्यन्त उग्र थी। उसके मत में परमात्मा की एकमात्र सत्ता है और वही एकमात्र सत्य है। अतः अन्य सभी वस्तुओं का त्याग कर उसी परम सत्य को पाने की चेष्टा करनी चाहिए। परमात्मा को पाने की इच्छा का उत्पन्न होना भी वह परमात्मा की प्रेरणा से मानता है। अपने पहले के सूफ़ियों से वह इस बात में भिन्न था कि मनुष्य के चाहने के पहले परमात्मा उसे चाहते हैं। उसने कहा है– 'बहुत दिनों तक आत्मालोचना की, लेकिन जब गूढ़ भाव से मैंने देखा तो मालूम हुआ कि प्रमुख और दासत्व ईश्वर से ही सम्भव हुए हैं। बहुत दिनों तक परमात्मा का आह्वान किया, जब निगूढ़ दृष्टि की, तब देखा कि वे ही आह्वानकारी हैं और मैं आहूत हूँ।'. . . सम्पूर्ण इच्छाओं के अवसान के बाद ही उसकी (परमात्मा की) प्राप्ति होती है। अत्तार ने लिखा है कि एक बार अबू यज़ीद ने कहा था कि वह परमात्मा का साहचर्य प्राप्त करने वाली अवस्था तक पहुंच चुका था। उस समय एक आवाज़ आई कि 'तुम जो कुछ चाहते हो उसे मांगो।' यज़ीद ने कहा– 'तुम्हें ही पाने की हमारी इच्छा है।' यज़ीद ने सुना– 'ऐ बायज़ीद, तुम्हारे भीतर इच्छा का एक कण भी रह जाएगा, तब तक यह असम्भव है। अपने को पूर्ण रूप से खोकर ही मुझे पाओगे।'. . . कहा जाता है कि यहिया बिन मुआध ने अबू यज़ीद के पास लिखा कि 'उस आदमी के बारे में आपकी क्या राय है जो प्रेम के समुद्र का एक बूँद पीकर मस्तमौला बन जाता है।' वायज़ीद ने लिखा कि 'आप उसके बारे में क्या कहेंगे जो अगर संसार के सभी समुद्र प्रेम की शराब से भर दिए जाएं उन्हें पी जाए और फिर भी अपनी प्यास बुझाने के लिए और अधिक के लिए चिल्लाता रहे।' फिर भी प्रेम को वह साधक और परमात्मा के बीच परदा जैसा मानता है, 'क्योंकि प्रेम के अस्तित्व में हीं द्वैत निहित है।' 'वह उसी को अमीर मानता है जिसकी कोई इच्छा न हो और परमात्मा की इच्छा ही उसकी इच्छा हो।' ज्ञान की साधना को वह अत्यन्त कठिन मानता है। . . . .'फ़ना' (आत्मा का विलयन) और 'बका' (परमात्मा में स्थिति) के सिद्धान्तों का विकास करने वाला वही था। एक जगह उसने कहा है– 'साँप जिस प्रकार केंचुल छोड़ता है उसी प्रकार से मैंने अपने 'अहं' को छोड़ कर अपनी ओर देखा और पाया कि मैं और वह एक ही हैं।' परमात्मा की एकमात्र वास्तविक सत्ता मानने के कारण उसने यह भी माना कि वही सबमें है और वही सब कुछ है।"

रिज़्वी महोदय लिखते हैं कि बायज़ीद ने भी राबेआ की भाँति निःस्वार्थ प्रेम को परम आध्यात्मिक बताते हुए यह मत प्रतिपादित किया कि ईश्वर और उसके प्रेमियों के बीच में प्रेम ही आवरण होता है। यद्यपि स्वर्ग बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है किन्तु ईश्वर ही का बनाया हुआ है, परन्तु प्रेम ईश्वर का गुण है। यह अनादि है, प्रेमी सर्जित वस्तुओं को हीन समझते हैं। मित्रता के लिए दो का होना अनिवार्य है किन्तु तौहीद में दुई का कोई स्थान नहीं। प्रेम का प्रेम में विलीन हो जाना ही अध्यात्म है। (कश्फ़ुल महजूब, पृ० १४६ के आधार पर)

यह भी बात कही जाती है (कश्फ़ पृ० ८६) कि बायज़ीद किन्ही अबू अली सिन्दी के मुरीद थे। 'सिन्द' को कैम्बरिज के विद्वान् आरबरी ने ईरान का एक स्थान बताया है, जबकि अन्य विद्वान् इसे भारत के (अब पाकिस्तान के) 'सिन्ध' को मानते हैं। प्रायः विद्वानों का मत है कि अबू यज़ीद का 'फ़ना' का सिद्धान्त, जिसने सूफ़ी आन्दोलन में, महत्त्वपूर्ण योगदान किया, भारतवर्ष की देन है।

"बायज़ीद लोक सेवा को हज से भी अधिक महत्त्व देते थे। जब तक उनकी माता जीवित रहीं, उन्होंने अपनी माता की सेवा बड़ी तत्परता से की। बायज़ीद ने 'सुबहानी' (मैं पूजनीय हूँ) का नारा लगाया और अपनी आध्यात्मिक उन्नति की उपमा हज़रत मुहम्मद की मिअराज से दी। जो सूफ़ी बायज़ीद से सहमत नहीं, वे भी बायज़ीद के सिद्धान्तों के निराकरण में अपने आपको असमर्थ पा इन्हें 'सुक्र' (प्रेमोन्माद) से प्रभावित बताते हैं।"

१५. उस्ताद अबुल क़ासिम जुनैद (मृ० ९१० ई०)

अबुल क़ासिम बिन मुहम्मद बग़दाद के सूफ़ी सन्त थे। सूफ़ी सन्त सरी सक़ती इनके मामा थे। किसी ने उनसे पूछा क्या शिष्य का रुत्बा गुरु से अधिक होता है? सक़ती का उत्तर था, "हाँ ध्यान रहे कि जुनैद अगर्चे मेरा शिष्य है मगर रुत्बे में मुझसे अधिक है।"

कहते हैं कि अल्-जुनैद ने (जून्नून) मिस्री की उपदेशावली को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया और उनके शिष्य खोरासानी शिबली ने उसका सब जगह प्रचार किया। जुनैद अपने समय के सूफ़ियों में अग्रगण्य माने जाते थे, किन्तु वे सनातनपन्थी इस्लाम एवं सूफ़ी मत में सामञ्जस्य लाने के भी पक्षपाती थे। (आ० चतुर्वेदी-सूफ़ी काव्य संग्रह)

वैसे जून-नून, अबू यज़ीद बिस्तामी, जुनैद आदि ने नफ़्स को जानने, उससे संघर्ष करने, और उसके दमन करने पर बल दिया है, किन्तु जुनैद ने तो यहाँ तक कहा है कि नफ़्स द्वारा परिचालित होने वाला व्यक्ति काफ़िर है। कहते हैं कि जुनैद का सम्मान मुल्ला और सूफ़ी, दोनों करते थे। वह अवसर के अनुकूल बात करते थे। किसी ने उनसे उनके शिष्य मंसूर हल्लाज के 'अन-अल्-हक़' कहने पर उस कथन के औचित्य के सम्बन्ध में पूछा तो उन्होंने कहा कि यदि मैं फ़क़ीर के बाने का धारण कर कहूँगा तो उसका कहना उचित है और यदि मुल्ला का बाना धारण करके कहूँगा तो उसका कहना अनुचित है।

जुनैद की मृत्यु बग़दाद में हुई और अपने गुरु मामा सक़ती के बगल में दफ़नाये गये। उनके मानने वाले जुनैदी कहलाये। दारा ने 'सफ़ीनतुल औलिया' में इनके बारे में चर्चा की है।

जुनैद 'सुक्र' (प्रेमोन्माद) के सिद्धान्त के घोर विरोधी और 'सह्व' (प्रमाद) के सिद्धान्त के समर्थक थे। "ये तसव्वुफ़ को उदार 'ख़ुल्क़' (नैतिकता) मानते थे। इनका कथन है कि इसे उदार ईश्वर, उदार काल में उदार व्यक्तियों द्वारा उदार क़ौम में उत्पन्न करता है।"

"जुनैद ने तत्कालीन विचारधारा का कि वली (सूफ़ी) नबी से श्रेष्ठ होता है, खण्डन किया और इस बात पर ज़ोर दिया कि नबी को ईश्वर के दरबार से सन्देश प्राप्त होते हैं किन्तु सूफ़ी अपनी साधना पर निर्भर होते हैं। सूफ़ियों की आध्यात्मिक उन्नति जिस स्थान पर पहुंच कर समाप्त हो जाती है, नबियों के लिए वह प्रारम्भिक स्थान मात्र होता है। ईश्वर का ज्ञान विवेक द्वारा प्राप्त होता है। जब मंसूर हल्लाज, जुनैद के पास सहायता माँगने पहुँचे तो अल-हल्लाज को फटकारते हुए जुनैद ने कहा- 'हे मंसूर के पुत्र! तुझे 'सुक्र' एवं 'सह्व' के विषय में भ्रम हो गया है। 'सह्व' साधक के आध्यात्मिक स्वास्थ्य का दलील है। 'सुक्र' प्रेम के उन्माद और आवेश का द्योतक है। दोनों में से कोई भी मनुष्य के सतत प्रयत्न के फलस्वरूप नहीं प्राप्त हो सकता। वे 'सुक्र' को बड़ी ख़तरनाक अवस्था समझते थे।"

"जुनैद आलिमों का वस्त्र धारण करते थे। उनके अनुयायी उन्हें 'सय्यदुत्तइफ़' (सूफ़ी समूह का नेता) और 'ताऊसुल उलमा' (विद्वज्जनों का मयूर) कहते थे।"

"तसव्वुफ़ में इस्लामी कट्टरपन का समावेश करने के बावजूद वे सूफ़ी संघ की बहुत सी आवश्यकताओं को न त्याग सके।. . . हुज्विरी ने जुनैद के निद्रा सम्बन्धी निम्नांकित पत्र को 'सुक्र' की अवस्था से सम्बन्धित बताते हुए आश्चर्य प्रकट किया है-

"हमारी जाग्रतावस्था हमारे और ईश्वर के सम्बन्ध की प्रतीक है। हमारी सुषुप्तावस्था हमारे लिए ईश्वर का अनुग्रह है। ईश्वर द्वारा हमारी इच्छा बिना जो कुछ हमें प्राप्त हो वह उससे श्रेष्ठ है जिसे ईश्वर हमारी प्रार्थना के फलस्वरूप हमें प्रदान करे।"

१६. सह्ल बिन अब्दुल्लाह अत्तुस्तरी (८१८ ई०-८९६-७ ई०)

ये एक प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त थे। जून्नून मिस्री इनके गुरु थे। इनके शिष्य मुहम्मद बिन सालिम ने इनके 'उपदेश सहस्र' का संग्रह किया। उनके अनुगत सह्ली या सहलिया कहलाये।' आलिमों के अनुसार तुस्तरी ने शरीअत और हक़ीक़त में समन्वय किया किन्तु हुज्विरी इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि शरीअत और हक़ीक़त एक दूसरे से कभी पृथक् न थे। बात इतनी है कि सह्ल ने अपना मत स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है। 'शरीअत' हक़ीक़त की शाखा है, 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) का ज्ञान 'हक़ीकत' और ईश्वर के आदेशों का पालन 'शरीअत' है। उनका साधना मार्ग 'नफ़्स' (अस्तित्व) के 'मुज़ाहदा' (इन्द्रिय-निग्रह) और 'रियाज़त' (तपस्या) पर अधिक ज़ोर देता है।

" 'नफ़्स' का अर्थ अस्तित्व है। इस शब्द का अर्थ रूह, वासना, उदारता, शरीर, रक्त आदि भी समझा जाता है। सूफ़ी लोग इसे समस्त दोषों का स्रोत मानते हैं। पाप, अहंकार, ईर्ष्या, लोभ, क्रोध, घृणा नफ़्स से ही उत्पन्न होते हैं। 'तोबा' (पश्चाताप एवं प्रतिज्ञा) पाप का, अन्य दोषों का निराकरण करती है। हज़रत मुहम्मद ने नफ़्स के विरुद्ध जिहाद (युद्ध) को सबसे बड़ा (अक्बर) जिहाद बताया है। सह्ल स्वयं १५ दिन में केवल एक बार भोजन करते थे। उनका कथन है कि ध्यान 'मुजाहदा' के बिना सम्भव नहीं और ईश्वर तक पहुंचने का एकमात्र साधन 'मुजाहदा' है। कुछ सूफ़ियों का मत है कि ईश्वर से मिलन, उसके फ़ज़्ल (अनुग्रह) पर निर्भर है किन्तु सह्ल के अनुसार मुजाहेदा (इन्द्रिय निग्रह) से नफ़्स की शुद्धि होती है। जो 'मुजाहेदा' के महत्त्व को नहीं समझता वह समस्त नबियों, आस्मानी ग्रन्थों और धर्म-मार्ग का शत्रु है।"

१७. रुवैम

अबू मुहम्मद रुवैम बिन यज़ीद (मृ० ९१४ ई०)

ये बग़दाद के प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त थे तथा जुनैद के शिष्य थे। विधि शास्त्र / न्याय शास्त्र के क्षेत्र में ये दा'ऊद इस्फ़हानी के अनुयायी थे। दा'ऊद इस्फ़हानी 'ज़ाहिराइट स्कूल' के संस्थापक थे।

१८. अबू सईद ख़र्राज़

अबू सईद अहमद बिन ईसा अल-ख़र्राज़ (मृ० ९०० ई०)

ये मुहम्मद बिन मंसूर अत्तूसी के शिष्य थे और जून्नून, बिश्र और सरी के साथी थे। जामी और हुज्विरी के अनुसार, ख़र्राज़ ने पहली बार 'फ़ना' और 'बक़ा' की व्याख्या की। कहा जाता है कि उन्होंने रहस्यवाद पर ४०० पुस्तकें लिखीं।

"हुज्विरी ने सूफ़ियों के विभिन्न मतों का विश्लेषण करते हुए यह मत प्रकट किया है कि बन्दे को 'फ़ना' ईश्वर के 'जलाल' (ऐश्वर्य) के दर्शन तथा उसके हृदय में ईश्वर के ऐश्वर्य के अनावरण से प्राप्त होती है। ईश्वर का 'जलाल' लोक-परलोक के विचार साधक के हृदय से मिटा देता है। वह बुद्धि और नफ़्स दोनों की ओर से 'फ़ानी' हो (मिट) जाता है। वह 'फ़ना' की ओर से भी फ़ानी हो जाता है। उस 'फ़ना' की अवस्था में उसकी ज़बान से अल्लाह का नाम निकलने लगता है। यह 'बक़ा' की अवस्था है। कुछ सूफ़ियों का मत यह भी है कि 'फ़ना' मानवी तत्त्व के अन्त को कहते हैं और 'बक़ा' का अर्थ मनुष्य का ईश्वर में विलीन हो जाना है।"

इनके अनुयायी ख़र्राज़ी/ख़र्राज़िया कहलाये। कहते हैं कि ख़र्राज़ ने 'तरीक़त' के विषय में उच्च कोटि के ग्रन्थ की रचना की।

१९. अबुल हसन अन्नूरी

अबुल हसन अहमद बिन नूरी (मृत्यु लगभग ९०७-८ ई०)

ये जुनैद के समकालीन और जुनैद के समर्थक थे। इनके अनुयायी 'नूरिया' कहलाते हैं। ये एकान्त वास के विरोधी थे। इनके अनुसार, हमारे समय में इल्म और मारिफ़त, दोनों अप्राप्य हैं।

"उनका कथन है कि तसव्वुफ़ सांसारिक आनन्द और मंगल को पूर्णतः त्याग देने का नाम है। यदि कोई मज़े को त्याग देता है और उसे इस त्याग में आनन्द आने लगता है तो फिर त्याग का कोई महत्त्व नहीं। यदि आनन्द किसी को त्याग दे तो इस प्रकार आनन्द का अन्त होता है। आनन्द का त्याग मनुष्य के प्रयत्न पर निर्भर है और आनन्द का अन्त ईश्वर के अनुग्रह पर। मनुष्य जो कुछ भी करता है वह प्रथा पर निर्भर है, ईश्वर जो कुछ करता है वह वास्तविकता पर आधारित है। सूफ़ी वह है जिसके जीवन से वह सब दुर्गन्ध निकल गई हो, जिसका सम्बन्ध मनुष्य की प्रकृति से है।"

२०. इब्राहीम ख़व्वास

अबू इस्हाक़ इब्राहीम बिन अहमद अलख़व्वास (मृ० ९०३-४ ई०)

इन्होंने तसव्वुफ़ (सूफ़ी मत) के आचार-शास्त्र पर कुछ उत्तम पुस्तकें लिखीं। कुछ लोगों के अनुसार, ये बग़दाद के निवासी तथा नूरी और जुनैद के साथी थे। 'कश्फ़ुल महजूब' में हुज्विरी ने इन्हें 'सरहंगे मुतवक्किलान' और 'सरदारे मुस्तामिलान' कहा है, और लिखते हैं "जिनका तवक्कुल (अर्थात् सांसारिक साधनों का भरोसा हटा कर सारे काम ईश्वर पर छोड़ देना) में बड़ा मर्तबा (पद) है। बकस्रत मशाइख़ (सूफ़ी लोगों) की सोहबत पाई। आपकी बकस्रत निशानियाँ, और करामतें (चमत्कार) हैं। तरीक़त (अन्तःशुद्धि/अध्यात्म) के मुआमलात में आपकी तसानीफ़ (पुस्तक) उम्दा हैं। आपका इरशाद है कि सारा इल्म दो कलमों में जमा है, एक यह कि अल्लाह तआला ने जिस चीज़ का अंदेशा दिल से उठा दिया है उसमें तकल्लुफ़ न करो, दूसरा यह कि जो कुछ तुम्हें करना है वह तुम फर फ़र्ज़ है उसे ज़ाया न करो, यहाँ तक कि दुनिया व आख़िरत में उसके मुवाफ़िक़ बन जाओ।

"मतलब यह है कि तक़रीर में तकल्लुफ़ न करो, अज़ली क़िस्मत तुम्हारे तकल्लुफ़ से बदल नहीं सकती। और उसके किसी हुक्म की बजा आवरी में कोताही न करो, क्योंकि नाफ़र्मानी तुम्हें अज़ाब में मुब्तिला कर देगी।

"आप से कुछ लोगों ने दर्याफ़्त किया कि अजाइबात (विचित्रताओं) में से आपने क्या क्या देखा? आपने फ़र्माया कि बकस्रत अजाइबात देखे हैं, लेकिन इससे ज़्यादा अजीब कुछ न था कि ख़िज़्र हज़रत अलैहिस्सलाम ने

मुझसे इजाज़त चाही कि मैं तुम्हारी मजलिस में शामिल रहूँ, मगर मैंने उसे मंज़ूर न किया। लोगों ने पूछा- इसकी क्या वजह? आपने फ़र्माया, मेरा मंज़ूर न करना इसलिए न था कि मैं उनसे बेहतर रफ़ीक़ को चाहता था बल्कि मैं डरता था कि मैं किसी ग़ैर हक़ के साथ एतमाद करके अपने तवक्कुल को ज़ाया न कर बैठूँ। कहीं ऐसा न हो कि नफ़्ल (वह नमाज जिसके पढ़ने का हुक्म न हो, मगर सबाब के लिए पढ़ी जाय) के बदले फ़र्ज़ जाता रहे। यह आपका दर्ज़ा कमाल है।"

२१. अबू बक्र शिबली (मृ० ९४५ ई०)

ये जुनैद के शिष्य थे। इनकी मृत्यु ८७ वर्ष की आयु में हुई। "शिबली असाधारण तो थे ही पर जीवनी-लेखक अत्तार ने मंसूर की सी विचारधारा वाला कह कर उनकी असाधारण श्रेष्ठता को कुछ और भी अधिक आकर्षक बना दिया है।"

"शिबली की क़िस्मत में वह न था जो मंसूर की क़िस्मत में बदा था। वह जेल में तो भेजे गए मगर शहीदों की मौत से बच गए और ख़ुद शिबली ने ही इस बात का इक़रार इस तरह किया है कि मुझे नादान (मूर्ख) समझ कर लोगों ने छोड़ दिया मगर मंसूर को दाना (बुद्धिमान्) समझ कर सूली दे दी।"

"शिबली जब जुनैद के पास पहुँचे तो कहा,- लोगों ने आपके पास गौहर होने का पता दिया है। यदि वह रूहानी गौहर आप मेरे हाथ बेचना चाहें तो बेच दें और बेचना पसंद न करें तो यों ही बिना मूल्य के मुझे अता करने की नवाज़िश करें। जुनैद बोले- यदि मैं इस मोती को बेचूँ तो तुम उसे ख़रीद नहीं सकते, क्योंकि तुममें वह ताक़त नहीं कि उसकी क़ीमत चुका सको। और जो मैं तुम्हें यों ही मुफ़्त में दे दूँ तो तुम उसका मूल्य न समझ सकोगे, क्योंकि जो चीज़ मुफ़्त मिल जाती है हर्गिज़ उसकी नज़र में उसकी कोई बकअत (महत्त्व) नहीं होती।"

हुज्विरी के अनुसार वे "अकाबिर (प्रतिष्ठित) मशाइख़ (शेखों) में से थे। और सबके नज़दीक क़ाबिले ता'रीफ़ थे। आपके हालात व मक़ालात (लेख) बयाने हक़ में मुहज्जब व पाकीज़ा हैं। इशारे लतीफ़ और क़ाबिले सताइश हैं।" (कश्फ़ुल महजूब)

२२. अबू बक्र वासिती

मुहम्मद बिन मूसा (मृ० ३२० हि० से कुछ पहले)

ये जुनैद और नूरी के साथी थे। शैख़ुल इस्लाम के अनुसार, ये 'तौहीद' (दिव्य एकत्व) के इमाम (नेता) थे। हुज्विरी के अनुसार, वासिती "मुहक़्क़िक़ीन मशाइख़ (अनुसन्धान करने वाले शेख़ों) में से थे। हक़ाइक़ (सच्चाइयों) में आपका बहुत बुलंद दर्जा था। तमाम मशाइख़ के नज़दीक आप लायक़े तारीफ और हज़रत जुनैद के क़दीम मसाज़ों में थे। आपके इज़हार और बयान में ऐसी गहराई होती थी कि असहाबे ग़ौर व फ़िक्र की फ़हम से बालातर होती थी। आपने किसी शहर में मुस्तक़िल अक़ामत अख़्तियार नहीं की। जब आप शहरे मर्व में तशरीफ़ लाये तो वहाँ के लोग आपकी लताफ़ते तबअ और नेक सीरती के गर्वीदा हो गए।" (क़श्फ़ुल महजूब)

२३. अबू सईद अबुल ख़ैर (९६७-१०४९ ई०)

ये एक प्रख्यात शेख़ थे तथा इन्होंने रहस्यवादी चतुस्पदियां लिखी हैं। कहते हैं कि ये इब्न सीना (Avicenna) के निजी सम्पर्क में आये थे।

हिस्ट्री ऑफ़ सूफ़ीज़्म इन इण्डिया (II, पृ० २५५) में रिज़्वी लिखते हैं कि शाह वली उल्लाह का विश्वास है कि पैग़म्बर मुहम्मद और उनके साथियों से तसव्वुफ़ की शुरुआत हुई। वह अपने दूसरे परिवर्तन में बग़दाद के जुनैद के साथ प्रविष्ट हुआ। तीसरा तसव्वुफ़ का युग-परिवर्तन शेख़ अबू सईद अबुल ख़ैर और शेख़ अब्दुल हसन ख़रक़ानी के साथ हुआ और चौथा युग-परिवर्तन महान् शेख़ मुहीउद्दीन बिन अरबी से कुछ पूर्व हुआ।

रिज़्वी ने (वहीं, पृ० ४६१ पर) अबू सईद और इब्न सीना के विवाद के अन्तिम प्रकटन पर दोनों के वचन इस रूप में उद्धृत किये हैं- अबू सईद- "Whatever he (Avicenna) knows (rationally), we Sufies perceive (intuitivelly)"

इब्न सीना, "Whatever the (अबू सईद) perceives intuitivelly), we (philosophers) know (rationally)"

२४. शेख़ अहमद अल-ग़ज़्ज़ाली (मृ० ५१७ हि०)

ये सुख्यात इमाम अल-ग़ज़्ज़ाली के भाई थे। इन्होंने धर्म-दर्शन सम्बन्धी कुछ पुस्तकें लिखीं। इनमें 'रिसाले सवानेह' प्रधान है।

२५. अबुल क़ासिम बिन अली बिन अब्दुल्लाह अल-गुरगानी (मृ० ४५९ हि०)

ये 'कश्फ़ुल महजूब' के लेखक हुज्विरी के समकालीन थे। हुज्विरी ने इनके साथ अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध की चर्चा की है। हुज्विरी के अनुसार, ये "अपने वक़्त और ज़माना में बेनज़ीर व बेअदील थे। आपका इब्तदाई हाल बहुत अच्छा था। आपकी मुसाफ़रत सख़्त और बाशर्त थी। लोगों के दिल आपकी तरफ़ माइल थे। तमाम तुलबा (विद्यार्थी लोग) आपसे अक़ीदत रखते थे और मुरीदों के वक़्ए कश्फ़ में एक क़िस्म का निशान थे।. . . आप लिसानुल वक़्त (अपने समय के प्रतिनिधि) थे।. . . एक दिन मैं शेख़ के रूबरू हाज़िर था और अपने अहवाल व नमूद को शुमार कर रहा था ताकि अपनी कैफ़ियत आपसे बयान करूं, क्योंकि आप ही वक़्त के नाक़िद (आलोचक) थे। आपने मुझ पर शफ़क़त (कृपा) फ़र्मा कर उन्हें सुना और उसे मेरे बचपन के ग़ुरूर और जवानी की आग पर महमूल (आरोपित) फ़र्माया और उसी नतीजा में इस कैफ़ियत की मौजूदगी क़रार दी, चूंकि यह शेख़ अपने इब्तदाए-हाल में इस कूचे से गुज़र चुके थे इसलिए मेरे बारे में उन्होंने इतना... इनकार बरता लेकिन वह मेरी दिली कैफ़ियत को समझ गये। फ़र्माने लगे, अय वालिद के दोस्त! तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मेरा यह इनकार ना तुम्हारे लिए है न तुम्हारे हाल के लिए, क्योंकि हाल का बदलने वाला मुहाल के महल में आता है बल्कि मेरा यह इनकार मुहव्विले अहवाल अल्लाह तआला के हुज़ूर में है। यह बात तमाम तुलबा के लिए आम है सिर्फ़ तुम्हारे लिए ही नहीं है। जब मैंने यह सुना तो मैं अज़ ख़ुद रफ़्क हो गया। उन्होंने मेरी बातनी हालत को मुलाहिज़ा फ़र्मा कर कहा, अय फ़र्ज़ुंद! आदमी को इस तरीक़त से इससे ज़्यादा निस्बत नहीं होती कि जब उसे तरीक़त की तरफ़ लगाएं तो उसके गुमान को फेर दिया जाए और जब वह गुमान से फिर जाए तो फिर उस पर ख़याली तामीर की राह बंद कर दी जाए लिहाज़ा नफ़ी व इस्बात और उसका वजूद व अदम दोनों ख़याली हैं। आदमी किसी तरह ख़याली बंदिश से बाहर नहीं निकल सकता। उसे चाहिए कि वह हक़ की

बंदगी अख्तियार करे और अपने दिल से तमाम निस्बतों को निकाल फेंके। सिर्फ़ बंदगी और फ़र्माबर्दार की निस्बत को बरक़रार रखे। उसके सिवा और भी बकस्रत अस्रार की बातें हुईं जिनके तज़किरे में अस्ल मौजू ग़लत मुबहस हो जायेगा।

२६. शेख़ मुहीउद्दीन अब्दुल क़ादिर जीलानी (१०७७, ७८-११६६ ई०)

ये बग़दाद के सर्वाधिक सम्मानित सूफ़ियों में से थे। ये क़ादिरी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। दारा शिकोह इस सम्प्रदाय से अपने को सम्बद्ध बताता है। जीलानी जीलान (फारस) के रहने वाले थे। सत्रह वर्ष की आयु में बग़दाद चले गये। ११२७ ई० में उन्होंने आध्यात्मिक जीवन के बारे में प्रचार करना आरम्भ किया। कहते हैं कि क़ादिरी-सम्प्रदाय सनातन-पन्थी इस्लाम से निकट सम्बन्ध बनाये हुए रहा, इसलिए मुसलमानों में उसका अधिक स्वागत हुआ। इनके अनेक नाम लोगों में प्रचलित थे- पीर दस्तगीर या पीरे पीराँ, गौसुस्समदानी, गौसुल आज़म, महबूबे सुभानी, मीराँ मुहैउद्दीन, हसनुल हुसैनी आदि। "क़ादिरी सम्प्रदाय में प्रचलित एक कहानी से उनके महत्त्व पर प्रकाश पड़ता है। कहा जाता है कि पैग़म्बर की पुत्री फ़ातिमा ने स्वप्न में देखा कि उसके पिता के घर से एक आदमी हाथ में एक बड़ा मशाल लिये हुए निकला जिसका प्रकाश पूर्व से पश्चिम तक सर्वत्र फैला हुआ था। उसने अपने पिता से इसकी चर्चा की। उसके पति हज़रत अली भी वहीं बैठे हुए थे। हज़रत मुहम्मद ने बतलाया कि इसका मतलब यह है कि अली के बाद एक आदमी आने वाला है, जिसकी पवित्रता मशाल जैसी होगी और जो सभी सन्तों का प्रधान होगा। अली ने इसे मानने से इन्कार किया। उन्होंने कहा कि प्रधान तो वे ही हैं। पैग़म्बर ने कहा कि नहीं, जो आने वाला है वह सभी सन्तों के कन्धों पर पैर रखेगा और सब पर शासन करेगा। अपनी गर्दन पर जो उसका पैर नहीं रखेगा वह अपनी गर्दन पर थैले ढोयेगा। अली ने फिर नहीं माना। पैग़म्बर ने उसी समय एक बच्चे की सृष्टि की। उस कमरे में ऊँचे पर कुछ फल रखे हुए थे। पैग़म्बर ने अली से उस बच्चे के लिए उतारने के लिए कहा। अली वहाँ पहुँच नहीं सके तब पैग़म्बर ने उनकी गर्दन पर बच्चे को रख दिया जिसमें कि वह फल स्वयं उतार ले। जैसे ही वह अली के कन्धे पर चढ़ा पैग़म्बर बोल उठे, 'देखो जिसकी चर्चा मैं कर रहा था वह तुम्हारे कन्धे पर है।' अबुल क़ादिर ही वह शिशु थे।" (रा०पू० तिवारी, सूफ़ीमत- सा० और सा०, पृ० ४७८)

२७. अबू उस्मान अल-मग़रिबी (११२६-११९८ ई०)

इनका नाम है- अबू मद्यन शो'ऐव बिन अल-हुसैन अल-अंदलुसी। ये मदैनिया सम्प्रदाय के संस्थापक थे। इन्होंने जीवन के आरम्भ में आजीविका के रूप में कपड़े की बुनाई सीखी, लेकिन आगे की पढ़ाई के लिए ये दक्षिण अफ्रीका चले गये। इन्होंने धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षा पूरी की। मक्का की यात्रा में ये ग़ौसुल आज़म शेख़ अब्दुल क़ादिर से मिले। अन्त में, ये बिजया (Bougie) में रहने लगे और मग़रिब (पश्चिम) में बहुत प्रसिद्ध हुए। उनके उपदेशों में गहरी मानवता और ईश्वर के प्रति विश्वास का स्थान था।

२८. शेख़ मुहीनुद्दीन इब्न अल-अरबी (११६५-१२४० ई०)

इनका जन्म स्पेन में हुआ था। अन्त में ये दमिश्क में बस गये। कहते हैं कि इनका 'वहदतुल वुजूद' का सिद्धान्त सूफ़ीमत तथा इस्लामी दर्शन में एक महत्त्व का स्थान रखता है। ये बहुत बड़े विचारक थे। ये 'शेख़े अकबर' कहे जाते हैं। इन्होंने अपने उक्त सिद्धान्त की संगति क़ुरआन और हदीसों के सहारे इस्लाम के साथ बैठाई थी।

२९. शेख़ नज्मुद्दीन कुब्रा (मृ० १२२१ ई०)

कहते हैं कि इनका मानना था कि जिन्होंने आध्यात्मिक प्रगति की ओर सामान्य मार्ग को पार किया उन्होंने अल्लाह की ओर यात्रा को चुना।

३०. शेख़ फ़रीदुद्दीन अत्तार (११५७-१२३० ई०)

"रूमी कहा करते थे कि डेढ़ सौ वर्ष उपरान्त मन्सूर का आत्मिक प्रकाश अत्तार की आत्मा में प्रकाशित हुआ है।" इन्होंने ११४ पुस्तकें लिखीं, जिनमें से ३० पाई जाती हैं। ब्राउन के अनुसार, "यदि वह और भी कम लिखते तो उनका और भी अधिक नाम होता। इनकी पन्दनामा, मन्तक़ुलतीर और तज़्किरातुल औलिया नामक रचनाएं बहुत प्रसिद्ध हैं और उनका कई एक भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है।"

मन्तक़ुलतीर में अत्तार ने आत्मा को परमेश्वर की खोज में व्यस्त दिखलाया है। सूफ़ी यात्री की उपमा एक पक्षी से देकर ईश्वर को सीमुर्ग माना है। पक्षीगण एकत्रित होकर अपने पथ प्रदर्शक हुमा की अध्यक्षता में ईश्वरीय

खोज का विचार करते हैं। प्रत्येक अपनी इन्द्रिय जनित कठिनाइयों और बन्धनों को उसके सामने रखता है और हुमा उनका समाधान करता है।"

अत्तार का जन्म नीशाँपुर में हुआ था। ये अबू तालिब मुहम्मद के नाम से प्रसिद्ध थे। "कहते हैं कि किसी ने एक सूफ़ी साधक से पूछा कि जलालुद्दीन रूमी और फ़रीदुद्दीन अत्तार में कौन सूफ़ी साधना के रहस्यों का जानकार है तो सूफ़ी साधक ने बतलाया कि दोनों ही पूर्णता को प्राप्त थे लेकिन फ़रीदुद्दीन एक चील (ईगल) की नाईं पलक मारते ही वहाँ उड़ कर पहुंच गये जबकि रूमी धीरे-धीरे आयासपूर्वक वहाँ पहुँच सके।"

३१. मौलाना जलालुद्दीन रूमी (१२०७-१२७३ ई०)

रूम के निवासी होने के कारण ये रूमी कहलाये। ईरान के सूफ़ी कवियों में इनका स्थान सबसे ऊँचा है। इनकी मसनवी को 'फ़ारसी भाषा का क़ुरआन' कहते हैं। इनका दूसरा ग्रन्थ है 'दीवान शम्सतबरेज़।' इनकी कविता की प्रशंसा, निकल्सन के शब्दों में, "मसनवी में धार्मिक गीतों के सभी गुण वर्तमान हैं। पर्वत के गान, गुलाब पुष्प के रंग तथा सुगन्ध, जंगल की हलचल इत्यादि से पद ओत-प्रोत हो रहे हैं। ईश्वर की व्यापकता सभी में दिखलाई गई है। यही नहीं बरन् इसमें और भी अनेक विशेषताएँ हैं। रंग, रूप और गंध प्रियतम के दर्पण के समान हैं। सांसारिक प्रेम और उस स्थान की यात्रा, जहाँ उपवन में खिले हुए गुलाब पुष्प कभी मुर्झाते नहीं है, केवल उसी प्रियतम के लिए लिखे गये हैं।"

"एक बहुत बड़ी नदी है, जिसकी धार प्रशान्त है और जो बहुत ही गहरी है। भिन्न-भिन्न और अनोखे प्राकृतिक सौन्दर्य से परिवेष्टित स्थानों से बहती हुई, यह अनन्त सागर की ओर अग्रसर होती है। दूसरी गम्भीर गर्जन के साथ फेन उगलती हुई और अठखेलियां करती हुई पहाड़ियों में विलीन हो जाती है।"

रूमी के जीवन में सबसे बड़ी घटना शम्सुद्दीन तबरीज़ी के साथ इनका परिचय है।

३२. ख़्वाजा मुई'नुद्दीन चिश्ती (११४२-१२३६ ई०)

इनका जन्म सीस्तान (अफ़गानिस्तान) में हुआ। बहुत लोग इन्हें भारत के श्रेष्ठ सूफ़ी सन्त मानते हैं। ये ख़ुरासान, बग़दाद, दिल्ली होते हुए अजमेर

आये। कहा जाता है कि ये दिल्ली में आने से पहले लाहौर में ठहरे थे और दातागंज बख़्श के मक़बरे के पास बैठ कर ध्यान-चिन्तन किया था। इन्हें मानने वाले लाखों लोग अजमेर की यात्रा करते हैं। अकबर आदि मुग़ल बादशाह इनके मकबरे पर आकर चादर चढ़ाया करते थे। इनका चिश्ती सम्प्रदाय बहुत लोकप्रिय हुआ।

३३. ख़्वाजा बहाउद्दीन नक़्शबंद (१३२७-१३८८ ई०)

ये नक़्शबंद सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। इनका जन्म बुख़ारा में हुआ था। 'रशहात' के अनुसार बहाउद्दीन नक़्शबंद एक बड़े विचारक थे और उन्होंने इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में बहुत सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला है। इसी में उनका कृतित्व है। उसके अनुसार वे इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक नहीं थे। बहाउद्दीन तरह-तरह के 'नक़्श' (चित्र) बनाते। ये चित्र आध्यात्मिक तत्त्वों से सम्बन्धित थे। उस प्रकार की आकृतियों में बहाउद्दीन रंग भरा करते, इसलिए उनके अनुयायी 'नक़्शबंदी' कहलाये।

३४. ख़्वाजा अहरार (१४०३-१४८९ ई०)

ख़्वाजा नासिरुद्दीन उबैदुल्लाह एक महान् नक़्शबंदी सूफ़ी थे। बहुत समय तक इन्होंने समरक़ंद में निवास किया। दारा ने अपनी रचनाओं 'हसनातुल आरिफ़ीन' तथा मज्म'उल्बहरैन में इनके उपदेश को उद्धृत किया है। मुग़ल बादशाह बाबर इनके उपदेशों से बहुत प्रभावित था।

३५. अब्दुर्रहमान जामी (१४१४-१४९२ ई०)

मुल्ला नूरुद्दीन अब्दुर्रहमान जामी फ़ारसी के अन्तिम महान् कवि थे। इनकी रचना 'नफ़हात अल-उन्स' एक जीवनी-सम्बन्धी कोश है, जिसमें ईरानी तथा मध्य-एशिया के सूफियों, विशेष कर नक़्शबंदियों की प्रामाणिक तथा विश्वसनीय जीवनी है। जामी एक ही साथ कवि, विचारक और साधक थे। ख़ुरासान के 'जाम' नगर के निवासी होने के कारण ये 'जामी' कहलाये। उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे। उनके ग्रन्थों में सात मसनवियाँ, गीतों के तीन दीवान आदि हैं। इनके अतिरिक्त धर्मशास्त्र, रहस्यवाद, अरबी व्याकरण और छन्द आदि के सम्बन्ध में उन्होंने कई ग्रन्थ लिखे।

३६. शाह मीर / मियाँ मीर (१५५०-१६३५ ई०)

शेख़ मीर मुहम्मद (मियाँ जीव) दारा शिकोह के आध्यात्मिक गुरु थे। दारा ने 'सकीनतुल औलिया' नाम से इनकी जीवनी लिखी है। इनका जन्म सीस्तान में हुआ। ये अकबर के शासन के अन्तिम दिनों में लाहौर आये तथा जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल तक जीवित रहे। दारा ने इन्हें 'दूसरा जुनैद' कहा है। (इनके सम्बन्ध में इस ग्रन्थ में अन्यत्र भी चर्चा है।)

३७. मियाँ बारी

ये दारा शिकोह के गुरुओं में से थे।

३८. मुल्ला शाह / लिसानुल्लाह (मृ० १६६१-२)

ये बदख़्शां से १६१४ ई० में लाहौर आये और मियाँ मीर के शिष्य हुए। ये मियाँ मीर की मृत्यु के बाद कश्मीर चले गये और वहाँ दारा शिकोह और उनकी बहन जहाँआरा द्वारा बनवाये 'मठ' में निवास किया। दारा ने 'सिर्रे अक्बर' की भूमिका में, इनके बारे में ये वाक्य लिखे हैं- "इसके पश्चात् जब यह निर्द्वन्द्व भिक्षुक मुहम्मद दारा शिकोह सन् १०५० हिज़री में स्वर्गोपम कश्मीर गया था तो उसे ईश्वर की अनुकम्पा और अनन्त अनुग्रह से सिद्धों में सिद्ध, ज्ञानियों में वरेण्य, गुरुओं के गुरु, स्थविरों के स्थविर, शास्ताओं के शास्ता, एकेश्वरवादी, महात्मा मुल्लाशाह (जिन्हें परमेश्वर का संरक्षण प्राप्त हो) के शिष्यत्व का गौरव प्राप्त हुआ।"

३९. शाह मुहम्मद दिलरुबा

ये भी दारा के गुरुओं में थे। इन्हें दारा ने आध्यात्मिक अनुभव के बारे में पत्र लिखे थे।

४०. शेख़ तय्यब सरहिन्दी

इनके बारे में दारा ने हसनातुल आरिफ़ीन में अपर्याप्त सूचना दी है।

४१. बाबा लाल बैरागी

इनके प्रति दारा के मन की विशेष आस्था व्यक्त हुई है। दारा के साथ इनके प्रश्नोत्तर प्रसिद्ध हैं। (प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका में भी चर्चा है।)

शब्दानुक्रमणी
तथा
नामानुक्रमणी

शब्दानुक्रमणी

अ-उ-म/८
अकन (गगन?)/१५
अक़लीम (हफ़्त)/१७ (सप्तद्वीप)
अकासबानी/१० (आकाशवाणी)
अकाबिर मुहाजिर/१२
अजपा/३
अज्वे महापुरस/२०
अतल/२०
अनंत/११
अनसार/१२
अनाद परवाह/२२
अनासिर/१, २
अन्तःकरन/२
अपान/६
अबुल अर्वाह/२ (परमात्मा)
अमछरा/२०
अमा/१
अंबिया/१०, १२ (सिद्ध लोग)
अर्शेअक्बर/१
अलीम/११
अवतार (मज़हरे अतम)/११
अवसन/७
अवस्थान/१, ७, २१
अश्रये मुबश्शरः/१२
असन/११
असहाबे एज़ाम (भू०)
अंहकार/२
अह्ले इस्लाम/११, १६
अह्ले किताब/१०
अह्ले क़ुरआन/१०
अह्ले दोज़ख़/१८
अह्ले बेद/१०
अह्ले शर'अ/१, १५
अह्ले सूफ़ियः/१२
अह्ले हिन्द/१, २, ५, १८,
आख़िरत/१०, १९
आदमी/११ (मनुष्य)
आलमे कबीर/२०
आलमे बर्ज़ख़/१८
आलमे मिसाल/७
आलमे सग़ीर/२०
आवाज़/८
आहत/८
इंजील/१०
इश्क़ (माया)/१, २
इस्माय अल्लाह तआला/११
इस्मुल हक़/११
इस्मे आज़म/८
इस्राफ़ील/४
उंछरस समुंदर/१७
उत्तारद/१५
उदान/६
उन्सुरेआज़म/१, २, २० (आकाश)
ओम नम/३

औलियाय कामिल/१०,१२
औलियाय ख़ुदा/९
औलियाय सुन्नत वज्जमाअत/१०
क़तारे शुतरान/२२
क़मर/१५
क़यामत/१९
क़यामते कुब्रा/१, १९, २१
कल्पबरछ/२०
क़ादिर/११ (समर्थ)
कामिलान/१०
किताबे आस्मानी/११
किर्मे पील/२ (कोशकीट)
काल/२०
कुर्सी/१५, १७
कुल/८,१३
कैलास/१७
कोह (हफ़्त)/१७
खंदा पर्ली/२१ (खंड प्रलय)
ख़ल्क/१६
खीर समुन्दर/१७
ख़ूबाने जिन्नियात/११ (परी)
ग़ैबुल ग़ैब/११
घृत समुंदर/१७
चराग़/९
चितन/५
चित/११
चित्ताकाश/१
चिद् आकास/१
चेतन/११
जबरूत/७, २१
जबूर/१०
जम/२०
जमाल/४, ९
ज़मीन/१६
जलाल/४, ९
जागरत/७
ज़ाते बहत/११
ज़ाते मुतलक़/९, ११
ज़ायकः/२, ९
जिब्रील/२, ४, ११, २२
जिहात/१४
ज़ीत/९
जीवन्मुक्त/२०
जीवात्मा/१
जुन सरूप/९
ज़ुहरा/१५
ज़ुहल/१५
तजीह/१२
तम (इफ़ना)/४
तलातल/२०
तसव्वुफ़ (भू०)/७
ताबि'ईन/१२
तामस/२
तिरगुन/४
तिरदेवी/४
तिरमूरत/४
तुरिया/७
तौरेत/१०
दस समुंदर/१७
दिह दिशा/१४
दीदनेखुदायतआला/१०
देवता/११ (फ़रिश्ता)
देवी/१ (पृथिवी)
द्रश्ता/११ (द्रष्टा)
'धुन'/२
नछत्र (हफ़्त)/१२

नछरा/११
नफ़सुर्रहमान/१, ८
नबी/११ (महाशुद्ध)
नबूव्वत/१२
नबूव्वते तस्बीही/१२
नरक/१७ (दोज़ख़, जहन्नुम)
नहुम/१५ (महाकाश)
नासूत/६, २१
निरगुन/११
निरंजन/११
नूर/९, १०
नूर ज़ात/९
नूरे ख़ुदा/९
नूह/१२
परजांत/२०
परम आत्मा/५ (अबुलअर्वाह)
पातल/२०
पारजात्र/१७
पारबती/४
पैगम्बर/१०, ११, १२, १८, २२
प्रान/६
फ़ुक़राय हिन्द/४, ५, ७, ८, ९, ११
बकल्प/२
बतल/२०
बरस्पत/१५
बरहमांद/१३, १७, १९, २०, २१
बरुन/२०
बशिस्त/२ (वसिष्ठ)
बसीर/११ (द्रष्टा)
बाइसे ईज़ादे आलम (भू०)
बासिर/२, ९
बिशुन/४ (विष्णु)
बीनायने मिल्लत/१०
बेकुंठ/१८ (वैकुण्ठ)
बेख़बरी/१९
बेद/१, ८, १०, ११
बेदमुख/१९
बेनिहायतीए अदवार/२२
बेहोशी/१९
ब्रह्मा/४, २१
भूताकाश/१
मकदा/१७
मज़हरे अतम (भू०)/११
मज्म 'उल् बहरैन (भू०)/२२
मन अकास/१, १७
मनुख्य/११ (मनुष्य)
मलकूत/७, २१
महतल/२०
महाअकास/८ (उंसुरे आज़म)
महातल/२
मुहक्क़िक़ाने अहले हिन्द/१, ८, १७, २०, २२
महासुध//११ (नबी)
महापर्ली (०पर्लै)/१९, २१
महापुरस/२०
महेस/४
माया/१, २ (इश्क़)
मिअराज/२२
मियाने अहले इस्लाम/८
मिर्रीख़/१५
मीकाईल/४
मुक्त/१८, १९, २०
मुतखय्यिलः/२
मुतफ़क्किरः/२
मुवक्किले इफ़्ना/४
मुवह्हिदाने इस्लाम/१४

मुवहहिदाने हिन्द/१, २, ३, ७, ८, १०, १३, १४, १७, १८, १९, २०, २१, २२
मुश्तरी/१५
मुहम्मद (भू०)
रज (इबक़ा)/४
रसातल/२०
रसूले ख़ुदा/९
राछस/११
राजस/२
रिखी (वली)/११
रिज़्वाने अकबर/२०
रूयत/१०
रूह/५, २० (आत्मा)
रूह कुल्ली/५
रूह जूजई/५
रूहे आज़म/१, ४, ५, ९
लछमी/४
लामिस:/२
लाहूत/७
लोकपाल/२०
लोन समुंदर/१७
वक्ता/११
वली/११ (ऋषी)
वह्य/११ (आकाशवाणी)
वाहिम:/२
विलायत/१
विलायते तंजीही/१२
विलायते तस्बीही/१२
व्यान/६
व्यास/२०
शग़्ल/३
शग़्ले पास अनफ़ास/२
शज़रे मुबारक/९
शबे मिअराज/२२
शम्स/१५
शशजिहत/१४
शाम्मअ/२
शीश/९
संकल्प/२
सत परकिरत/१५
सत४, ११
सदा परकास/९
सनीचर/१५
सपन/७
सपन परकास/९
सप्त ताल/१६
सप्त कुलाचल/१७
सप्त पुट/१६
सप्त दीप/१७
सप्त समुंदर/१७
सबद/८
समर्थ/११
समान/६
समीअ/११ (श्रोता)
समूपत/१७
सरसती/८
सरा समुंदर/१७
सर्वदा मुक्त/२०
सवाद जल/१७
साछातकार/१०
सातक/२
सित्ता बाक़िया/१२
सिफ़त/४
सुखूपत/७, २१
सुतल/२०
सुध/५

सुत्री/१०
सुमेरु/१७
सुलतानुल अज़कार/८, २०
सूछम सरीर/१८, २०
सूफ़ियः/ (भू०) २, ३, ४, ७, ८, ९, २०
स्रोता/११
स्वर्ग/१७
हक़ सुब्हानहुत्तआला/९, २०
हक़ीक़तुल हक़ायक़ (भू०)/७
हक़ीक़ते मुहम्मदी/१, २
हज़रते ज़ान/१९, २०, २१
हज़रते रसूल/१०
हज़रते वजूद/२, ५
हज़रते वाजिबुल वजूद/२, ११
हदीस/११, २२
हवास (पञ्च)/२
हस्से मुश्तरक़/२
हिमकूत/१७
हिमवन/१७
हिरन्गर्भ/१
हुअल्लाह/३

•

नामानुक्रमणी

अबुल क़ासिम जुनैद बग़दादी/७, १२
अबुल क़ासिम गुरगानी/१२
अबुल ख़ैर/१२
अबुल हसन नूरी/१२
अबू बक्र/१२
अबू बक्र वासिती/९, १२
अबू बक्र शिब्ली/१२
अबू मदीनुल मग़रिबी/१२
अबू सईद/१२
अबू सईद ख़र्राज़/१२
अली/१२
आयशा/१०
इब्राहीम अदहम/१२
इब्राहीम ख़वास/१२
अुहमद ग़ज़्ज़ाली/१२
उमर/१२
उवैस करनी/१२
उस्मान/१२
ख़्वाज़ा अब्दुल्ला अन्सारी/१२
ख़्वाज़ा बहाउद्दीन नक़्शबंद/१२
ख़्वाज़ा मुईनुद्दीन चिश्ती/१२
जुन्नूने मिस्री/१२
दारा शिकोह (भू०)
नज्मुद्दीन कुब्रा/१२
फ़ुज़ैल अयाज़/१२
बाबा लाल (वैरागी) (भू०)/१२
बायजीद (बिस्तामी)/१२
मारूफ़ कर्ख़ी/१२
मियां बारी/१२
मुल्ला शाह/१२
मुहम्मद माशूक़ तूसी/१२
मूसा/१२
मौलाना अब्दुर्रहमान जामी/१२
मौलाना रूम/७, १२
बिस्र हाफ़ी/१२
व्यास/२०
रुवेम/१२
शाहमीर/१२
शाह मुहम्मद दिलरुबा
शेख़ अहमद जाम/१२
शेख़ तय्यब सरहिन्दी/१२
शेख़ फ़रीदुद्दीन अत्तार/१२
शेख़ मुहीउद्दीन अब्दुर क़ादिर जीलानी/१२
शेख़ मुहीउद्दीन इब्नुल अरबी/१२
शेख़ुल इस्लाम/७, १२
शेख़ सा'दुद्दीन हम्वी/२०
सहल बिन अब्दुलाह अत्तुस्तरी/१२
सिरियुस्सकती/१२
सूफ़ी साफ़ी/२०
हज़रत नूह/१२
हज़रत मुहम्मद (भू०)
हसन/१२
हुसैन/१२